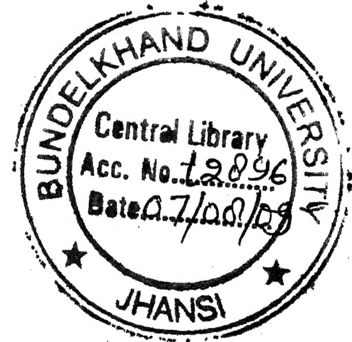
बुन्देलखण्ड क्षेत्र में दलितों की शैक्षणिक स्थिति का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय-झाँसी

की
समाज विज्ञान संकाय
में
समाजशास्त्र विषय के अन्तर्गत
डाक्टर ऑफ फिलॉसफी उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध





2005

निर्देशक
डा0 स्वामी प्रसाद
अध्यक्ष-समाजशास्त्र विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हमीरपुर

गवेषिका
अम्बेश कुमारी
एम0ए0 (समाजशास्त्र)

मो. : 9415170209
दूरभाष : 05282—222367 (ऑफिस)
05282—231232 (आवास)

डॉ0 स्वामी प्रसाद
एम.ए., पी.—एच.डी., पी.जी.डी.जे.
सी.सी.आई.बी., सी.सी.आई.टी.



समाजशास्त्र विभाग
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
हमीरपुर (उ0प्र0) 210301

प्रमाण—पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **अम्बेश कुमारी** ने समाजशास्त्र विषय में **पी—एच.डी.** की उपाधि **"बुन्देलखण्ड क्षेत्र में दलितों की शैक्षणिक स्थिति का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन"** हेतु मेरे निर्देशन में बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी के पत्रांक—बु0वि0/प्रशा0/शोध/2003/11036—38 दिनाँक 14.12.2003 के द्वारा पंजीकृत हुई थी।

अम्बेश कुमारी ने मेरे निर्देशन में आर्डीनेन्स 6 द्वारा वांछित अवधि तक शोध केन्द्र में उपस्थिति रही है। इन्होंने शोध के सभी चरणों को अत्यन्त संतोषजनक रूप में परिश्रम पूर्वक सम्पन्न किया है।

मैं इस शोध प्रबन्ध को **समाजशास्त्र विषय** में **पी—एच.डी.** की उपाधि हेतु प्रस्तुत करने की संस्तुति करता हूँ।

दिनाँक :....................................

(डॉ0 स्वामी प्रसाद)
शोध निर्देशक

घोषणा

मैं घोषणा करती हूँ कि बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी के अन्तर्गत **समाजशास्त्र विषय** में डॉक्टर ऑफ फिलासफी की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध **"बुन्देलखण्ड क्षेत्र में दलितों की शैक्षणिक स्थिति का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन"** मेरा मौलिक कार्य हैं। मेरे अभिज्ञान में प्रस्तुत शोध का अल्पांश अथवा पूर्णांश किसी भी विश्वविद्यालय में **डाक्टर ऑफ फिलासफी** अथवा अन्य किसी भी उपाधि हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है।

AKumari

दिनांक : ....

(अम्बेश कुमारी)
शोधार्थिनी

आभार

मुझ जैसी अल्पज्ञ एवं अनुभवहीन शोधार्थिनी के लिए शोध जैसे गम्भीर्य सारस्वत अनुष्ठान को पूर्ण कर पाना मेरी सामर्थ्य से परे था, किन्तु मेरे लिए प्रणाम्य एवं आवन्दनीय तथा शोध विद्या में निष्णात डा0 स्वामी प्रसाद, विभागाध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर की प्रज्ञा वेदी में मेरी अन्वेषणात्मक अध्यवसाय की साधना पूर्ण हुई। आदरणीय डा0 स्वामी प्रसाद जी की मैं सदैव ऋणी रहूँगी जिनके सद्प्रयासों प्रेरणा तथा प्रोत्साहन युक्त निर्देशन में यह शोध प्रबन्ध पूरा हो सका है।

परम श्रद्धेय डा0 स्वामी प्रसाद जी मेरे लिए मात्र शोध निर्देशक ही नहीं अपितु वे मेरे शैक्षणिक प्रगति पथ के मार्ग प्रस्तोता भी हैं जिनकी अनुशीलनात्मक आराधना करके मैंने इस गवेषणात्मक आयोजन को पूरा किया है। ऐसे में इनके शोध सहयोग के लिए **"तेरा तुझको अर्पण क्या लागे मेरा"** के रूप में अशेष श्रृद्धा अर्पित करती हूँ।

कृषि रसायन जैसे प्रगतिशील विषय के महारथी डा0 जे0एन0 सिंह, रीडर ब्रह्मानन्द महाविद्यालय राठ, के प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनकी शुभकामनाओं एवं सहयोग से यह शोध यज्ञ आदि से अन्त को प्राप्त कर सका है। डा0 रमेश चन्द्र प्राचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, महोबा तथा प्रो0 एस0पी0 गुप्ता प्रचार्य राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर की भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने शोध का प्रारंभिक पथ प्रदान किया तथा सतत सहयोग प्रदान करते रहे।

डा0 डी0एन0 सिंह, प्राध्यापक-राजनीति विज्ञान, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर तथा डा0 ए0के0 सैनी, प्राध्यापक, रसायन विज्ञान, राजकीय महिला महाविद्यालय, अलीगंज-लखनऊ के प्रति भी मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनके सहयोग ने मेरी कलम की कोर को धार प्रदान की।

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी में अपनी अनुपम कार्यशैली के पर्याय श्री मनीराम वर्मा जी की मैं विनयावत हूँ जिन्होंने मेरे लिए इस दुरूह कार्य को पूरा करने में अविस्मरिणीय सहयोग किया।

मैं अपने पूज्य श्वसुर श्री रामनाथ विशारद, पूर्व अध्यापक एवं प्रधान बसौठ, ज्येष्ठ श्री टी0पी0 वर्मा, ओ0एन0जी0सी0 अहमदाबाद, चाचा श्री रघुपति महान प्रधानाचार्य, गोहाण्ड, ननद श्रीमती ज्ञानेश वर्मा, भाई, डा0 अवधेश कुमार, औद्योगिक विकास प्राधिकरण नोएडा, श्रीमती माधुरी देवी, प्रधानाचार्या माध्यमिक विद्यालय (हाईस्कूल) छतरपुर के प्रति नतशीश हूँ जिनकी वात्सल्यमयी छाँव तथा सतत प्रेरणा से इस दुरुह लक्ष्य को प्राप्त करने में सकारात्मक भूमिका रही है।

मैं अपने प्रणयी डा0 महेश प्रताप जी के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने **'गृह कारज नाना जंजाला'** से मुक्त रखकर इस महत कार्य में सहयोग दिया, मैं अपनी सन्तति मृत्युन्जय प्रताप और आँचल के प्रति भी धन्यवाद ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने मातृत्व स्नेह के आकस्मिक अभाव को सहज रूप से व्यतीत कर लिया।

श्री विजय विक्रम सैनी, प्रभारी पुस्तकालय, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, हमीरपुर के प्रति भी विनयावत हूँ जिनका पुस्तकीय सहयोग समय-समय पर मुझे प्राप्त होता रहा है। शोध कार्य के अध्ययन क्षेत्र के सर्वेक्षणात्मक अनुदाय के लिए मैं उन दलित परिवारों के मुखियाओं तथा उनके

परिवारीजनों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिनके उपयोगी विचारों से यह प्रज्ञा प्रयोजन पूरा हो सका है।

मैं निदेशक उच्च शिक्षा उ0प्र0 इलाहाबाद, जिला विद्यालय निरीक्षक, हमीरपुर, बेसिक शिक्षा अधिकारी, हमीरपुर के प्रति भी आभार ज्ञापित करती हूँ जिन्होंने सन्दर्भित सूचनाएं उपलब्ध कराने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

शोध प्रबन्ध के टंकण मुद्रण, रूप सज्जा तथा आवरण सज्जा के लिए वीनस कम्प्यूटर ग्राफिक्स, मेहेरपुरी, हमीरपुर (उ0प्र0) बधाई के पात्र हैं। जिनके योगदान से मेरा यह अभीष्ट पूरा हुआ। इन सबके अतिरिक्त मैं उन सभी जाने-अनजाने सुधी जनों की हृदय से अभारी हूँ जिन्होंने मुझे यथा संभव मदद दी।

दिनाँक :

AKumari

(अम्बेश कुमारी)
शोधार्थनी

अनुक्रम

तालिका सूची

अध्याय—1

प्रस्तावना

- भूमिका
- दलित समाज : एक परिचय
- उत्तर प्रदेश में दलित जातियाँ : जनसंख्यात्मक परिप्रेक्ष्य
- साहित्य का पुनरावलोकन
- अध्ययन की समस्या
- अध्ययन के उद्देश्य
- उपकल्पनाएं
- शोध अध्ययन की उपयोगिता

प्रस्तावना

भूमिका

शिक्षा का एक महत्वपूर्ण सामाजिक उद्‌देश्य है–अवसर की समता प्रदान करना, जिससे पिछड़े तथा दलित वर्ग के व्यक्ति शिक्षा के द्वारा अपनी स्थिति सुधार सकें। जो भी समाज न्याय को अपना आदर्श मानता है और आम आदमी की दशा सुधारने तथा समस्त शिक्षा पाने योग्य व्यक्तियों को शिक्षा देने को उत्सुक है उसे यह व्यवस्था करनी होती है कि जनता के समस्त वर्गों को अवसर की अधिकाधिक समता प्राप्त होती जाये। एक समता–मूलक तथा मानवतामूलक समाज, जिसमें निर्बल वर्ग तथा शोषण की स्थिति कम से कम हो, बनाने का यही एक सुनिश्चित साधन शिक्षा है।

प्राचीन काल में कार्यानुसार वर्ण व्यवस्था का प्रादुर्भाव हुआ, यह व्यवस्था केवल कार्य विभाजन पर आधारित थी किन्तु जनसंख्या विस्फोट औद्योगीकरण एवं नगरीकरण की तीव्र होती प्रक्रिया के पश्चात् कार्य विभाजन के सिद्धान्त में अनवरत परिवर्तन परिलक्षित हो रहे है। जन्म के आधार पर जातियों के निर्माण की परम्परा, सभ्यता के विकासोपरान्त आधुनिक युग में भी कुछ जातियाँ और जनजातियाँ, सामान्य जातियों के समान शैक्षणिक दृष्टि से निम्न स्तर पर है।

देश को स्वतन्त्रता मिलने के पश्चात, समाजवादी व्यवस्था को स्वीकार करने के उद्‌देश्य से अनुसूचित जाति अर्थात दलितों और आदिवासियों को शिक्षित करने हेतु महत्वपूर्ण प्रयास किये गये। संविधान प्रारुप समिति के अध्यक्ष डा0 भीमराव अम्बेडकर द्वारा संविधान की धारा 46 के अनुसार अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जनजातियों के शैक्षणिक एवं आर्थिक विकास हेतु विशेष प्रयास करने की व्यवस्था की गयी।

हम शनैःशनैः वैदिक काल से लेकर आधुनिक काल और अब तक का लम्बा सफर तय कर आए हैं परन्तु अभी तक रूढ़िवादी प्राचीन परम्पराओं को अपने से दूर नहीं कर पाये न तो इसमें अपेक्षित परिवर्तन मध्यकाल में आया न ही आधुनिक काल में, जबकि इस अन्तराल में अनेक महान सामाजिक चिन्तनवादियों का उदय हुआ, फिर भी इस समस्या को जिस सीमा तक दूर करना चाहिए था, दूर नहीं कर पाए, अपवादों को छोड़कर चिन्तावादी परिवर्तन करने की दिशा में कमोवेश असफल ही रहे।

स्वतंत्रता के अर्द्ध शताब्दी के पश्चात् आधुनिक भारत में दलित समाज या तथाकथित अश्पृश्यों की स्थिति में सुधार अवश्य हुए लेकिन अपेक्षानुरूप नहीं, यदि इस स्थिति का चिन्तन किया जाये तो ऐसे प्रश्न उठेंगे कि वे कौंन से कारण हैं जिनके प्रभाव स्वरूप दलित समाज की स्थिति में अपेक्षानुरूप परिवर्तन नहीं हुए तो संभवतः दलित समाज में व्याप्त के परम्पराएं (जो दलित समाज के बहुआयामी विकास में बाधक हैं) हैं जिनका त्याग वे नहीं कर पाए हैं तब ऐसे कारणों में अशिक्षा और जागरूकता का अभाव ही महत्वपूर्ण कारणों के रूप में उभरेंगे।

भारत की 72.22 प्रतिशत जनसंख्या (74.17 करोड) ग्रामीण क्षेत्रों में अधिवासित है। भारत में गाँव की कुल संख्या 580781 है।[1] संचार के अत्याधुनिक संसाधनों की उपलब्धता के बावजूद ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा के प्रचार–प्रसार की कमी है। आज भी ऐसे क्षेत्र हैं जहां भौगोलिक परिस्थितियों और संसाधनों की सुलभता की कमी के कारण शिक्षा की ढांचागत व्यवस्था और व्यापकता का अभाव है यही कारण है कि उन्हीं क्षेत्रों में पुरानी परम्पराएं अपने मूर्त रूप में बरकरार है जो दलित समाज के शैक्षणिक उन्नयन में निर्यायक तथ्य के रूप में परिलक्षित हो रही है।

---

[1] घोस, डॉ0 प्रशान्त कुमार, जनगणना एवं जनसंख्या (2004), इलाहाबाद, पृ0सं0 14

समाज एवं राष्ट्र की शैक्षिक प्रगति के लिए अनिवार्य है कि समाज के सभी वर्गों के बालक–बालिकाओं को शिक्षित किया जाए। व्यवहार में ऐसा नहीं है।[1] स्वतंत्र भारत में शिक्षा का जो प्रचार प्रसार हुआ वह सामाजिक किन्तु आर्थिक दृष्टि से उच्च एवं मध्यम वर्ग में ही हुआ, समाज के वृहत भाग दलित समाज आज भी शिक्षा के प्रसार प्रक्रिया में पिछड़ा हुआ है। समाज के एक वर्ग में शिक्षा के अल्प प्रसार को गम्भीर समस्या माना जा रहा है। शिक्षा के प्रसार के दृष्टिकोण से पिछड़े हुए वर्ग को 'दुर्बल वर्ग' अथवा 'दलित वर्ग' के रूप में माना जाता है।

भारत के संविधान निर्माताओं ने संविधान निर्माण के समय देश के कमजोर अथवा दलित वर्ग का विशेष ध्यान रखा और उनके विकास और उत्थान के लिए संविधान में अनेक प्रावधान किए। संवैधानिक दृष्टि से दलित वर्ग के अन्तर्गत अनुसूचित जातियां, अनुसूचित जन जातियाँ तथा कुछ अन्य पिछड़े हुए समूह आते हैं। इनमें समाज के साधनहीन वर्ग को सम्मिलित किया गया, भारतीय संविधान भ्रातत्व एवं समानता पर जोर देता है। अतः संविधान–निर्माताओं ने चिन्तन किया कि यदि समानता को एक वास्तविकता प्रदान करनी है तो समाज के इन दलित, दुर्बल और कमजोर वर्गों को ऊँचा उठाना होगा, और अन्य उच्च वर्गों एवं सवर्ण हिन्दुओं की भांति ही उन्हें विकास की सुविधांए प्रदान करनी होगी। यद्यपि संविधान के अनुच्छेद 46 में इस संदर्भ में इस प्रकार उल्लेख किया गया है–"राज्य जनता के दुर्बलतर अंगों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से रक्षां करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषण से उनकी रक्षा करेगा।"[2]

---

[1] महाजन, डॉ0 धर्मवीर, भारत में समाज (2003), नई दिल्ली, पृ0सं0–139

[2] जैन, डा पुखराज, विश्व के प्रमुख संविधान (2203), पृ0सं0 103

दलित समाज : एक परिचय

प्रत्येक समाज में प्रमुख रूप से दो वर्ग पाए जाते हैं एक सम्पन्न वर्ग जिसे पूँजीपति वर्ग, अभिजात वर्ग सम्भ्रान्तजन या उच्च वर्ग के नाम से जाना जाता है और दूसरा गरीब वर्ग, जिसे श्रमिक वर्ग, दुर्बल वर्ग, दलित वर्ग, कमजोर वर्ग या पिछड़े वर्ग के नाम से सम्बोधित किया जाता है।" भारतीय सन्दर्भ में कमजोर वर्ग एक ऐसा वर्ग है जो सदियों से सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टि से शोषित एवं उपेक्षित रहा है देश की 40 प्रतिशत जनसंख्या इस श्रेणी में आती हैं।"[1]

भारत के संविधान में कमजोर वर्ग, दुर्बल वर्ग या दलित वर्ग शब्द का जिस प्रकार से प्रयोग किया गया है उससे तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इसके अन्तर्गत अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के अतिरिक्त भी कुछ जातियों को सम्मिलित किया गया है किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि वे कौंन–कौंन सी होंगी।

एम0डी0 देसाई, जी, पार्थ सारथी, जी0डी0 रामराव, वी0एस0 मिन्हास एवं योगेश अटल जैसे अर्थशास्त्रियों एवं समाजशास्त्रियों ने दलित समाज को परिभाषित करने के लिए मुख्य रूप से आर्थिक सामाजिक मापदण्ड को आधार माना है।

इन विद्वानों ने कमजोर, दलित या दुर्बल वर्ग के अन्तर्गत निम्नांकित विशेषताओं वाले व्यक्तियों को सम्मिलित किया है–

1. वे व्यक्ति जो अपने जीवन की न्यूनतम मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा न कर सकें। भोजन, वस्त्र, आवास तथा चिकित्सा की

---

[1] गुप्ता, डॉ0 एम0एल0 शर्मा, डॉ0 डी0डी0, भारतीय समाज (2004) आगरा, पृ0सं0–73

सुविधाएवं जुटाने में असमर्थ हों और उनकी आय "निर्धनता रेखा" से बहुत नीचे हो।

2. वे व्यक्ति जो मुख्यतया दैनिक मजदूरी पर आश्रित हों और वह भी अनियमित एवं ऋतुओं के परिवर्तन पर आश्रित हों।

3. वे व्यक्ति जिनके उत्पादन में सक्रिय सहयोग प्रदान करने के उपरान्त भी निरन्तर श्रम का शोषण किया जाता रहा हो और जो अपनी दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ऋण ग्रस्त हों।

4. वे व्यक्ति जिनके पास इतनी लागत पूँजी भी नहीं है कि वे कच्चे माल तथा अन्य उत्पादित वस्तुओं को खरीद सकें।

5. लघु तथा सीमान्त कृषण जो सिंचाई की सुविधाओं से वंचित हों।

6. वे व्यक्ति जो मानवीय ऊर्जा (जिसमें परिवार के सदस्य ही कार्य करें) तथा पशु ऊर्जा के सहारे ही जीवन यापन करें।

उपर्युक्त सभी मापदण्डों के आधार पर कमजोर वर्ग के अन्तर्गत समाज के उस वर्ग को सम्मिलित किया जाता है जो सामाजिक, आर्थिक सुविधाओं से वंचित, शोषित एवं शैक्षणिक रूप से पिछड़ा हुआ है।

"दलित वर्ग (शूद्र जाति) की रचना आर्यों द्वारा ऋगवेद के अन्तिम चरण में की गई।"[1] ब्राह्मण के मूल ग्रन्थ में शूद्रों (दास) को निम्नतम स्थान प्रदान किया गया, वे प्रजातीय और सांस्कृतिक दृष्टि से आर्यों से भिन्न थे। जहां तक उनके धर्म का प्रश्न है वे आर्यों के बिल्कुल विपरीत थे।

काम्बले के अनुसार वे न केवल आर्यों के देवताओं का विरोध करते थे, बल्कि बलि भी नहीं देते थे और न ही पुरोहितों को किसी प्रकार भेंट देते थे।

आर्यों ने दासों के लिए अन्यवृत, अंश, मृहर्वक शब्दों का प्रयोग किया। इन्हें सामाजिक विशेषाधिकारों तथा धार्मिक एवं शैक्षणिक अधिकारों की दृष्टि से

---

[1] गुप्ता, डॉ0 एम0एल0, शर्मा डॉ0डी0डी0, भारतीय समाज मुद्दे एवं समस्याएं आगरा, पृ0सं0–77

निम्नतम स्थान प्रदान किया गया। ये न तो यज्ञ कर सकते थे और न ही किसी प्रकार की कोई बलि दे सकते थे। इनको घृषित, अपवित्र तथा अशुद्ध प्राणी माना जाता था।"

प्रो0 जी0एस0 धुरिये के अनुसार जहां तक धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन का सम्बन्ध था, वैदिक युग में केवल प्रथम तीन व्यवस्थाओं को मान्यता प्रदान थी। शूद्रों को आर्यों की धार्मिक प्रथाओं का पालन करने से व्यवस्थिति ढंग से रोक दिया गया था। अस्पृश्य होने का विचार सम्भवतः सूत्र काल में विकसित हुआ। अश्पृश्यता के पीछे अपवित्रता की धारणा है। पवित्रता की धारणा के सम्बन्ध में धुरिये ने स्पष्ट किया है कि 800 ई0 पू0 न केवल घृणित तथा पतित "चाण्डालों में बल्कि समाज की चतुर्थ व्यवस्था शूद्रों, दासों में भी सांस्कृतिक पवित्रता एवं इसका कार्य रूप प्रचलन में था।"[1]

"प्रो0 एच0जे0 हट्टन का विचार है कि इन वाह्य जातियों की स्थिति का जन्म थोड़ा प्रजातीय, थोड़ा धार्मिक तथा कुछ सामाजिक रिवाजों का परिणाम है।"[2]

इनकी निम्न आर्थिक स्थिति से भी यह ज्ञात होता है कि समाज के संस्तरण में उनकी स्थिति निम्न थी। ऐसे उदाहरण नहीं मिलते हैं जिनसे यह ज्ञात होता हो कि शूद्रों के पास पशुधन या धन सम्पत्ति हो। ये भूमिहीन खेतिहर मजदूर या घरेलू नौकरों की तरह काम करते थे।

एक सूत्र मं स्पष्ट किया गया है कि शूद्रों (दलितों) को अपना जीवन निर्वहन केवल उच्च वर्गों की सेवा करके करना पड़ता है।

"अनुसूचित जाति" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1935 में साइमन कमीशन द्वारा किया गया था। इस शब्द का प्रयोग अश्पृश्य लोगों के लिए किया गया।[3]

---

[1] धुरिये, जी0एस0, जाति वर्ग, और व्यवस्था (1956),, नई दिल्ली, पृ0सं0–56
[2] हट्टन प्रो0 एच0जे0, कास्ट इन इण्डिया (1959) नई दिल्ली, पृ0सं0–105
[3] गुप्ता, डॉ0 एम0एल0, शर्मा, डॉ0 डी0डी0, पूर्वोक्त, पृ0सं0–77

डा0 अम्बेडकर के अनुसार आदिकालीन भारत में इन्हें "भग्न पुरूष" या "वाह्य जाति" माना जाता था। अंग्रेजों के द्वारा इन्हें "दलित वर्ग" कहा जाता था। 1931 की जनगणना में उन्हें "बाहरी जाति के रूप में सम्बोधित किया गया।"

महात्मा गांधी ने इन्हें 'हरिजन' के नाम से पुकारा। ब्रिटिश शासन काल में अछूतों या अश्पृश्यों को दलित वर्ग के नाम से पुकारा गया। अश्पृश्य जातियों के नामकरण के सम्बन्ध में शुरू से काफी विवाद रहा है। इन्हें अछूत, दलित, बाहरी जातियां, हरिजन एवं अनुसूचित जाति आदि नामों से सम्बोधित किया जाता रहा है। इनकी आर्थिक स्थिति के अत्यन्त दयनीय होने के कारण इनके लिए 'अछूत' शब्द के स्थान पर "दलित वर्ग" शब्द का प्रयोग किया गया।

आर्य समाज की मान्यता थी कि यह वर्ग अछूत न होकर 'दलित' है क्योंकि समाज ने इन्हें दबाकर और सभी प्रकार के अधिकारों से वंचित रखा गया है। इनकी निम्न दशा के लिए ये स्वयं उत्तरदायी नहीं हैं, बल्कि समाज उत्तरदायी है। इस शब्द के प्रयोग का कारण यह था कि इन जातियों का भारतीय सामाजिक संचरना में कोई सम्मान युक्त स्थान नहीं था।

सन् 1935 के विधान में इन लोगों को कुछ विशेष सुविधाएं प्रदान करने की दृष्टि से एक अनुसूची तैयार की गयी जिसमें विभिन्न अस्पृश्य जातियों को सम्मिलित किया गया। इस अनुसूची के आधार पर वैधानिक दृष्टिकोण से इन जातियों के लिए "अनुसूचित जाति" शब्द का प्रयोग किया गया। इन्हीं लोगों को दलित माना जाता रहा है।

अनुसूचित जातियों की सूची में कुछ प्रमुख जातियाँ हैं–चुहड़ा, भंगी, चमार, डोम, पासी, रैगर, मोची, राजबंसी, दोसड़, शानन, घियान, पेरेया तथा कोरी।

अनुसूचित जातियों को ऐसी जातियों के आधार पर परिभाषित किया गया है जो घृणित पेशों के द्वारा अपनी आजीविका अर्जित करती हैं परन्तु अस्पृश्यता

के निर्धारण का यह सर्वमान्य आधार नहीं हैं। इसका कारण है कि अनेक ऐसी अन्य जातियाँ भी हैं जो घृणित व्यवसायों में लगी हई हैं किन्तु फिर भी उन्हें संवैधानिक रूप से अनुसूचित जाति नहीं माना जाता। हिन्दू समाज में कुछ व्यवसायों या कार्यों को पवित्र एवं कुछ को अपवित्र समझा जाता रहा है। यहां मनुष्य या पशु पक्षी के शरीर से निकले हुए पदार्थों को अपवित्र माना गया है। ऐसी दशा में इन पदार्थों से सम्बन्धित व्यवसाय में लगी जातियों को अपवित्र समझा गया और इन्हें अश्पृश्य कहा गया। अस्पृष्यता समाज की एक ऐसी व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत अस्पृश्य समझी जाने वाली जातियों के व्यक्ति सवर्ण हिन्दुओं को स्पर्श नहीं कर सकते।

अस्पृश्यता का तात्पर्य जो छूने योग्य नहीं हैं अस्पृश्यता एक ऐसी धारणा है जिसके अनुसार एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति को छूने, देखने, छाया पड़ने मात्र से अपवित्र हो जाता है सवर्ण हिन्दुओं को अपवित्र होने से बचाने के लिए अस्पृश्य लोगों के रहने के लिए अलग से व्यवस्था की गयी और उनके सम्पर्क से बचने के अनेकों उपाय किये गये। अस्पृश्यता के अन्तर्गत वे जातीय समूह आते हं जिनके छूने से अन्य व्यक्ति अपवित्र हो जाएं और जिन्हें पुनः पवित्र होने के लिए कुछ विशेष संस्कार करने पड़ें।

डा0 के0एन0 शर्मा के अनुसार– "अस्पृश्य जातियाँ वे हैं जिनके स्पर्श से एक व्यक्ति अपवित्र हो जाए और उसे पवित्र होने के लिए कुछ विशेष कृत्य करने पड़ें।"[1]

एच0जे0 हट्टन ने उन लोगों को अस्पृश्य माना है[2] जो–

1. उच्च स्थिति के ब्राह्मणों की सेवा प्राप्त करने के अयोग्य हों।
2. सवर्ण हिन्दुओं की सेवा करने वाले नाइयों, कहारों तथा दर्जियों की सेवा पाने के अयोग्य हों।

---

[1] शर्मा, डा0 के0एन0, भारती समाज और संस्कृति, पृ0सं0–262
[2] हट्टन, सच0जे0, कास्ट इन इण्डिया, पूर्वोक्त, पृ0सं0–195

3. हिन्दू मन्दिरों में प्रवेश प्राप्त करने के अयोग्य हों।

4. सार्वजनिक सुविधाओं (पाठशाला, सड़क, कुऑ) को उपयोग में लाने के अयोग्य हों।

5. घृणित पेशे से पृथक होने के अयोग्य हों।

सारे देश में अस्पृश्यों के प्रति एक तरह का व्यवहार नहीं पाया जाता और न ही देश के विभिन्न भागों में अस्पृश्यों के सामाजिक स्तर में समानता पाई जाती है। हट्टन द्वारा दिये गये उपर्युक्त आधार भी अन्तिम नहीं हैं।

डा0 डी0एन0 मजूमदार के अनुसार–"अस्पृश्य जातियाँ वे हैं जो विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक निर्योग्यताओं से पीड़ित हैं जिनमें से बहुत सी निर्योग्यताएं उच्च जातियों द्वारा परम्परागत रूप से निर्धारित और सामाजिक रूप से लागू की गई है।"[1]

के0एम0 पणिक्कर के मतानुसार– "यह मान लेना सर्वथा अनुचित होगा कि अस्पृश्यता समाप्त हो जाने की घोषणा कर देने से ही अस्पृश्यों की सामाजिक निर्योग्यताएं समाप्त हो गई हैं।"

सामाजिक और धार्मिक निर्योग्यताओं के कारण प्राचीन काल के ही दलितों को सामाजिक क्रियाकलापों में भाग लेने की स्वतंत्रता नहीं थी जिसके परिणाम स्वरूप उनमें शोषण के प्रति मूक रहने की प्रवृत्ति का विकास हुआ।[2]

लेकिन वर्तमान में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन आए हैं उनमें एक प्रमुख परिवर्तन है दलितों पर सदियों से लादी गयी सामाजिक एवं धार्मिक निर्योग्यताओं की वैधानिक रूप से समाप्ति। शहरीकरण, औद्योगीकरण एवं तीव्र होती वैश्वीकरण या सामूहिक रूप से अपने निम्न सामाजिक स्तर तथा आर्थिक एवं राजनैतिक पिछड़ेपन के लिए जागृत किया है। उक्त सामाजिक, आर्थिक,

---

[1] मजूमदार, डॉ0 डी0एन0, रेसजे एण्ड कल्चर इण्डिया, जयपुर, पृ0सं0–336
[2] पाणिक्कर के0एम0, हिन्दू सोसायटी एक्ट कास रोड्स, पृ0सं0–27, 28

राजनैतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तनों से उनकी जीवन शैली में परिवर्तन आया है।

दलितों की दशा सुधारने में डा0 भीमराव अम्बेडकर का योगदान महत्वपूर्ण है जिनके द्वारा संविधान में किए गए विशेष प्रावधानों के फलस्वरूप इन जातियों को स्वतंत्रता, समानता एवं संरक्षण मिला है मध्य युग में प्रमुख सन्तों ने अपने उपदेशों द्वारा समानता, सहिष्णुता, दया एवं प्रेम का संदेश जनसामान्य तक पहुंचाया।

संत रविदास स्वयं एक अछूत संत थे जिनकी प्रतिभा, ज्ञान एवं उपदेशों के कारण ऊँची जाति के लोग उनके शिष्य बने। समाज सुधार एवं पुनर्जागरण आन्दोलन के दौरान प्रमुख समाज सुधारकों राजाराम मोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि ने इन जातियों की समस्याओं की ओर जनसामान्य का ध्यान आकृष्ट किया तथा अपने द्वारा स्थापित समाज सुधारक संगठनों में बिना किसी भेदभाव के इन जातियों को शामिल किया। ब्रिटिश शासन के दौरान कुछ वैधानिक प्रावधान करके दलितों को सुविधाएं प्रदान की गयी। इन प्रयासों, संवैधानिक प्रावधानों, कल्याण कार्यक्रमों एवं योजनाओं से सदियों से पीड़ित, उपेक्षित एवं शोषित दलित वर्ग की सामाजिक–आर्थिक दशा में सुधार आया है एवं इन जातियों के व्यक्तिों ने उच्च पद प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की है।

उत्तर प्रदेश में दलित जातियाँ : जनसंख्यात्मक परिप्रेक्ष्य

उत्तर प्रदेश के सभी 70 जनपदों में दलित समाज के लोग निवास करते हैं, सम्पूर्ण भारत के दलितों में लगभग 450 जातियाँ एवं 45 अनुसूचीबद्ध समूह शामिल हैं।[1]

[1] सिंह, के0ए0, पीपुल्स आफ इण्डिया (1993) आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, पृ0सं0 01

देश की जनसंख्या (2001) में उत्तर प्रदेश का प्रथम स्थान है, कुल जनसंख्या का 16.17 प्रतिशत भाग इस प्रदेश में अधिवासित है। देश की सामान्य जनसंख्या में प्रथम स्थान पर रहने वाला यह प्रदेश दलितों की जनसंख्या की दृष्टि से प्रथम स्थान है। इस प्रदेश में दलितों की कुल जनसंख्या का 22.3 प्रतिशत निवास करता है।[1]

उत्तर प्रदेश शासन द्वारा प्रदेश में रहने वाली निम्नलिखित जातियों को दलित वर्ग में सम्मिलित किया है–

तालिका संख्या–1.1

दलित जातियाँ (अनुसूचित जातियाँ)[2]

क्र0सं0	जाति का नाम	क्र0सं0	जाति का नाम	क्र0सं0	जाति का नाम
1	अगरिया	24	चमार, धुसिया, झुसिया, चाटव, चरमी	47	खटिक
2	बादी	25	बेटो	48	कोल
3	बधिक	26	दवगर	49	कोखा
4	बहेलिया	27	धांगर	50	लाल बेगी
5	बैगा	28	धानुक	51	मजहबी
6	बैसवार	29	टकार	52	मुसहर
7	बजनिया	30	धोबी	53	नट
8	बाजगी	31	डोम	54	पंखा
9	बलहर	32	डोमर	55	परहिया
10	बलई	33	दुसाध	56	पासी, तरमाली

[1] घोष, डॉ0 प्रशान्त कुमार, पूर्वोक्त, (2004), इलाहाबाद, पृ0सं0–20
[2] सूची, निदेशालय हरिजन तथा समाज कल्याण, उ0प्र0 शासन, लखनऊ, पृ0सं0–

11	वाल्मीकी	34	धरसी	57	पतरी
12	बंगाली	35	घसिया	58	रावत
13	वनमानुष	36	गुआल	59	सहरिया
14	बंसफोर	37	हबूड़ा	60	कोरी *
15	बरवार	38	हरी	61	सनोरिया
16	बसोर	39	हेला	62	सासिया
17	बावरिया	40	कलाबाज	63	शिल्पकार
18	बेलदार	41	कंजड	64	तुरैहा
19	बेडिया	42	कपरिया	65	मुझवार
20	भांतू	43	करवल	66	गोंड़ **
21	भुइयां	44	खैरहा		
22	भुइयार	45	खरोट		
23	बौरिया	46	खरवार, बनवासी को छोड़कर		

स्रोत–समाज कल्याण विभाग उत्तर प्रदेश शासन

* आगरा, मेरठ रूहेलखण्ड डिवीजन को छोड़कर राज्य भर में।

** बुन्देलखण्ड डिवीजन तथा जनपद मिर्जापुर के कैमूर पर्वत श्रेणी के दक्षिण मे।

तालिका संख्या–1.2

बुन्देलखण्ड के जनपदों की जनसंख्या की स्थिति 2001 के अनुसार (ग्रामीण एवं नगरीय)

जनपद	कुल जनसंख्या	ग्रामीण जनसंख्या	नगरीय जनसंख्या	उ0प्र0 की जनसंख्या में जनपद की जनसंख्या का प्रतिशत
जालौन	1454452	113926	340526	0.9
झाँसी	1744931	1033171	711760	1.0
ललितपुर	977734	835790	141944	0.6
हमीरपुर	1043724	869916	173808	0.6
महोबा	708447	553552	154895	0.4
बाँदा	1537334	1293316	244018	0.9
चित्रकूट	766225	689665	76560	0.5

स्रोत–सेंसस ऑफ इण्डिया–2001

तालिका संख्या–1.2 में बुन्देलखण्ड क्षेत्र (उत्तर प्रदेश) के अन्तर्गत आने वाले जनपदों–जालौन, झाँसी, ललितपुर,हमीरपुर, महोबा, बाँदा और चित्रकूट की कुल जनसंख्या तथा ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या की स्थिति स्पष्ट की गयी है। इन जनपदों में सर्वाधिक जनसंख्या वाला जनपद झाँसी जिसकी जनसंख्या 1744931 है। तथा सबसे कम जनसंख्या महोबा जनपद की 708447 है। महोबा जनपद हमीरपुर से अलग नवसृजित जनपद है। यह जनपद 1991 की जनगणना में हमीरपुर में सम्मिलित था। ग्रामीण जनसंख्या वाला सबसे बड़ा जनपद बाँदा (1293316) है। तथा सबसे कम ग्रामीण जनसंख्या वाला जनपद महोबा (553552) है। नगरीय जनसंख्या की दृष्टि से सबसे बड़ा जनपद झाँसी है

तथा छोटा जनपद चित्रकूट है। चित्रकूट बाँदा से अलग कर बनाया गया नया जनपद है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र का प्रदेश की जनसंख्या 4.9 प्रतिशत है।

तालिका संख्या–1.3

बुन्देलखण्ड में लिंगानुसार जनसंख्या एवं लिंगानुपात (2001 के अनुसार)

क्रमांक	जनपद	कुल जनसंख्या	पुरूष	महिला	लिंगानुपात
1	जालौन	1454452	786641	667811	849
2	झाँसी	1744931	932818	812113	871
3	ललितपुर	977734	519413	458321	882
4	हमीरपुर	1043724	563801	479923	851
5	महोबा	708447	379691	328756	866
6	बाँदा	1537334	826544	710790	860
7	चित्रकूट	766225	409178	357047	873

स्रोत–सेंसस ऑफ इण्डिया 2001

तालिका संख्या–1.3 में बुन्देलखण्ड में लिंगानुसार जनसंख्या, 2001 की जनगणना के अनुसार प्रदर्शित की गयी है। जनगणना 2001 के अनुसार सर्वाधिक पुरूष जनसंख्या झाँसी (932818) की है तथा सबसे कम पुरूष जनसंख्या महोबा (379691) जनपद की है यहीं स्थिति महिला जनसंख्या की भी है। लिंगानुपात की दृष्टि से सर्वाधिक अन्तर जालौन जनपद में है इस जनपद में 1000 पुरूषों पर 849 महिलाओं का अनुपात है। बुन्देलखण्ड क जनपदों में लिंगानुपात में सर्वाधिक कम अन्तर ललितपुर जनपद में है इस जनपद में 1000 पुरूषों में 882 महिलाओं का अनुपात है।

तालिका सं0–1.4

बुन्देलखण्ड में अनुसूचित जाति की जनसंख्या ग्रामीण एवं नगरीय आधार पर

क्रमांक	जनपद	अनुसूचित जाति की जनसंख्या	ग्रामीण	नगरीय	कुल जनसंख्या में प्रतिशत
1	जालौन	393307	319139	74168	27.0
2	झाँसी	489763	329975	159788	28.1
3	ललितपुर	243788	223230	20558	24.9
4	हमीरपुर	237902	200889	37013	22.8
5	महोबा	182614	151786	30828	25.8
6	बाँदा	320226	280988	39238	20.8
7	चित्रकूट	201839	187802	14037	26.3

स्रोत सेंसस ऑफ इण्डिया 2001

तालिका संख्या–1.4 में वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार बुन्देलखण्ड के विभिन्न जनपदों में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या प्रदर्शित की गयी है इन जनपदों में सबसे अधिक जनसंख्या (अनुसूचित जाति की) जनपद झाँसी 489763 में है तथा सबसे कम अनुसूचित जातियों की जनसंख्या महोबा जनपद की 182614 है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र के विभिन्न जनपदों में उनकी जनसंख्या की दृष्टि से सर्वाधिक प्रतिशतांक 28.1 झाँसी का तथा सबसे कम प्रतिशतांक बाँदा जनपद का 20.8 है।

बुन्देलखण्ड की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति की जनसंख्या का प्रतिशतांक 21.6 है। जबकि उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या का 21.1 प्रतिशत अनुसूचित जातियों की जनसंख्या है। इस क्रम में यह स्पष्ट होता है कि प्रदेश

की जनसंख्या में बुन्देलखण्ड की अनुसूचित जातियों का प्रतिशतांक महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

तालिका संख्या–1.5

बुन्देलखण्ड में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या (पुरूष एवं महिला) एवं लिंगानुपात

क्रमांक	जनपद	अनुसूचित जाति की जनसंख्या	पुरूष	महिला	लिंगानुपात
1	जालौन	393307	214871	178436	830
2	झाँसी	489763	261406	228357	874
3	ललितपुर	243788	128821	114967	892
4	हमीरपुर	237902	129427	10875	838
5	महोबा	182614	97674	84940	870
6	बाँदा	320226	172542	147684	856
7	चित्रकूट	201839	106811	95028	890

स्रोत–सेंसस ऑफ इण्डिया 2001

तालिका संख्या–1.5 में अनुसूचित जाति की पुरूष एवं महिला जनसंख्या को प्रदर्शित किया गया है। 2001 की जनगणना के अनुसार सबसे कम लिंगानुपात (अनुसूचित जाति) अन्तर ललितपुर जनपद का 1000 : 892 है तथा सबसे अधिक अन्तर हमीरपुर जनपद का 1000 : 838 का है इस जनपद में अनुसूचित जाति के 1000 पुरूषों पर 838 महिलाओं का अनुपात है संभवतः सामान्य जातियों की भांति इस जनपद के अनुसूचित जातियों में भी कन्या जन्म के प्रति अरूचि है।

साहित्य का पुनरावलोकन

1850 में ब्रह्म समाज के नेतृत्व में दलित जातियों की शिक्षा की ओर गम्भीरता से ध्यान दिया गया, साथ ही 1870 में प्रार्थना समाज द्वारा अस्पृश्ययों की शिक्षा के लिए रात्रिकालीन विद्यालय प्रारम्भ किया गया। आर्य समाज थियोसफिकल सोसायटी ऑफ इण्डिया ने भी इस दिशा में उल्लेखनीय कार्य किया।

स्वतंत्र भारत में संवैधानिक नीतियों के अनुपालन में, सरकार द्वारा राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर अस्पृश्य जातियों के शैक्षणिक विकास के लिए महत्वपूर्ण प्रयास किये गये किन्तु वैधानिक सुरक्षा और कल्याणकारी योजनाओं के बावजूद वांछनीय परिणाम प्राप्त नहीं हुए। प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के सन्दर्भ में जिन शोध अध्ययनों का अध्ययन किया गया उनमें पिम्पली (1980) द्वारा किया पंजाब के अनुसूचित जाति के शैक्षणिक जीवन, सामाजिक दृष्टिकोण, व्यावसायिक अभिप्रेरणा से सम्बन्धित अध्ययन, कोहन (1961) द्वारा 'चमार' जाति के सदस्यों की बदलती परिस्थितियों का अध्ययन, उषा राव (1981) द्वारा भारत में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों की शैक्षणिक परिस्थिति का अध्ययन, विश्वनाथ और नर सिंह रेड्डी (1985) द्वारा अनुसूचित जातियों की शैक्षणिक उपलब्धियों का अध्ययन, ए0के0 वकील (1985) द्वारा अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण के सम्बन्ध में किया गया अध्ययन, आर0के0 सिंन्हा (1986) द्वारा अनुसूचित जातियों (जाटव, बाल्मीकी, धोबी और खटिकों) की निर्योग्यताओं का अध्ययन।

इन अध्ययनों के अतिरिक्त गोविन्द सिंह (1990), रामगोपाल सिंह (1993), एन0एन0 सिंह (1996), विनय चन्द्र मिश्रा (1991), विनीता श्रीवास्तव (1972), के0पी0 सिंह (1972), नरूला उमानन्दा (1967), बी0आर0नन्दा (1976), पर्वथम्मा (1984), के0डी0गंग्रोडे (1974), बी0कुप्पूस्वामी (1956), जी0एस0 धुरिये (1950), गुन्नार मिर्डल, (1971), एस0एम0 दुबे (1974), ओ0एम0 लिंच (1969), एस0एस0

अनन्त (1992), ए0मठ (1975), सच्चिदानन्द (1980), डा0 पूरणमल (1999), जी0पी0 वर्मा (1980), शिशिर कुमार (1985), आर0एस0 खरे आदि के अध्ययन महत्वपूर्ण हैं।

कुछ समाज वैज्ञानिकों द्वारा दलित समाजों से सम्बन्धित देश के विभिन्न भागों में अध्ययन किए गए। दलित जातियाँ जिन्हें उस समय "डिप्रेस्ड क्लासेज नाम से सम्बोधित किया जाता था, राजनीतिक शक्ति के रूप में 1930 में डा0 बी0आर0 अम्बेडकर के नेतृत्व में उभर कर सामने आई, जो हिन्दूवाद एवं ब्राह्मणवाद के कट्टर विरोधी थे। उन्होंने यह महसूस किया कि दलित जातियां अपनी निर्योग्यताओं से छुटकारा केवल हिन्दुओं के समान अधिकार प्राप्त होने पर ही कर सकती है।" डा0 अम्बेडकर इन जातियों को मुख्यतः राजनीतिक शक्ति प्रदान करने के पक्ष थे। यही कारण था कि पूना पैक्ट में इन जातियों की जनसंख्या के अनुपात में स्थान आरक्षित रखने का प्रावधान किया गया।"[1]

भारत में अन्य सामाजिक समुदायों की तुलना में दलित समाज पर शिक्षा शास्त्र के अन्तर्गत बहुत कम अध्ययन हुए है। सर्वप्रथम एक दलित जाति 'चमार' पर विस्तृत अध्ययन समाजशास्त्र विषय के अन्तर्गत 1920 में 'ब्रिग' द्वारा किया गया। इस अध्ययन में उत्तर प्रदेश के चमार जाति के लोगों के जीवन विश्वासों एवं व्यवहारों पर गहराई से अध्ययन किया गया। इस अध्ययन से यह निष्कर्ष निकला कि ईसाई मिशनरियों ने उत्तर प्रदेश के 'चमार' जाति के लोगों को समाज में एक सन्तोषजनक स्थान दिलाने एवं धार्मिक क्रियाकलापों में सहभागिता का अवसर प्रदान किया।

इसी प्रकार एक अन्य अध्ययन स्टेफन फुच द्वारा 1949 में "चिल्ड्रेन ऑफ हरि" शीर्षक से किया गया जिसमें मध्य प्रदेश के निमाड़ जनपद की बलाई जाति के जीवन के समस्त पक्षों की गहनतम एवं विस्तृत जानकारी दी गई।

---

[1] चन्द्रमौल, बी0बी0आर0, अम्बेडकर : मैन एण्ड हिज विजन, (1991) नई दिल्ली।

दलित जाति के दो समुदायों बाल्मीकी एवं रामगरियो को लेकर सब्बरवाल ने पंजाब में एक अध्ययन 1972 में किया जिसका उद्देश्य उन सामाजिक प्रक्रियाओं को, जो एक वर्ग या प्रस्थिति समूह से परिसंचरण के लिए उत्तरदायी है एवं एक अप्रतिबन्धित व्यवस्था, जिसमें कोई व्यक्ति समूह अपनी स्थिति निर्धारित कर सके, प्रगट करना था।

'महार' द्वारा सम्पादित "द अन्टचेब्ल्स इन कम्पटरेरी इंण्डिया" एक महत्वपूर्ण संकलन है जो दलित समाज से सम्बन्धित अध्ययन उपलब्ध कराता है इसमें ग्रामीण समुदायों में अस्पृश्यों की भूमिका, धार्मिक सुधार, अस्पृश्यता उन्मूलन के सरकारी प्रयास और प्रस्थिति परिवर्तन में सामाजिक–मनोवैज्ञानिक कारकों का विस्तृत विवेचन किया गया है।

आन्ध्र प्रदेश में दलित जातियों पर एक समाजशास्त्रीय अध्ययन "सब्बासायूलू" द्वारा किया गया। इसमें स्पष्ट किया गया कि शिक्षा, सम्पत्ति एवं जातीय श्रेष्ठता आरक्षण, उच्च शिक्षा एवं आर्थिक सम्पन्नता के कारण दलित लोग उच्च पद प्राप्त कर पाने में सफल हुये हैं।

अध्ययन की समस्या

यद्यपि दलित जातियों ने शैक्षणिक दृष्टि से सम्पूर्ण देश में कमोवेश प्रगति की है फिर भी उनको समाज में उच्च जातियों के समकक्ष स्थान अभी भी प्राप्त नहीं हैं इन समुदायों के सदस्य इस आधार पर हीन भावना से ग्रस्त हैं कि उत्पत्ति क्रम में उनका स्थान सबसे निम्न है एवं इसी निम्न उत्पत्ति के कारण उच्च जाति के सदस्य उन्हें समाज में समान दर्जा देने को अन्तर्मन तैयार नहीं हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि उच्च व्यावसायिक स्तर प्राप्त कर लेने के बावजूद दलित जातियों के सदस्यों के साथ अभी भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से अस्पृश्यता एवं अपमान जनक व्यवहार किया जाता है।

उच्च जातियों के सदस्य प्रायः यह महसूस करते हैं कि दलित जातियों के सदस्य अयोग्य एवं असमर्थ हैं एवं बुद्धि व ज्ञान में पिछड़े हुए हैं लेकिन आरक्षण के कारण उच्च पद प्राप्त कर लेने मं सफल रहे हैं। यह निष्कर्ष या धारणा कमोवेश देश के सभी प्रान्तों में दलित जातियों के अधिकारियों के प्रति इस प्रकार के सवर्ण रूझान को दर्शाता है।

दुःखद पहलू यह है कि सामाजिक–आर्थिक दृष्टि से विकसित दलित जातियों के सदस्य अपने समुदाय की अपेक्षा उच्च जातियों के अधिक निकट आना चाहते हैं तथा अपनी जाति का नाम तक बताने में संकोच करते हैं।

दलित जातियों की सामाजिक–आर्थिक स्थिति को सुधारने में शिक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारक हैं यही वजह है कि दलित जातियों का नेतृत्व करने वाले दलितों के मध्य शिक्षा के प्रचार–प्रसार पर जोर देते हैं।

शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्‌देश्य है–अवसर की समता प्रदान करना, जिससे पिछड़े तथा दलित वर्गों के व्यक्ति शिक्षा द्वारा स्थिति सुधार सकें। जो भी समाज सामाजिक न्याय को अपना आदर्श मानता है और आम आदमी की हालत सुधारने तथा समस्त शिक्षा पाने वाले व्यक्तियों को शिक्षा देने को उत्सुक है उसे यह व्यवस्था करनी ही होगी कि जनता के सब वर्गों को अवसर की अधिकाधिक समान्ता प्राप्त होती जाये। एक समता मूलक तथा मानवतामूलक समाज, जिसमें कमजोर का शोषण कम से कम हो, बनाने का यही एक सुनिश्चित साधन शिक्षा है।

शिक्षा का अधिकार एक सार्वभौमिक मानव अधिकार है। इस दृष्टि से शिक्षा एक मौलिक अधिकार है और व्यक्ति को इस अधिकार से जाति, रंग, प्रजाति आदि के आधार पर वंचित नहीं किया जाना चाहिए। व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक उन्नति के लिए अधिक से अधिक व्यक्तियों को अधिक तथा उत्तम शिक्षा की आवश्यकता है शिक्षा ही वह सीढ़ी है जिस पर चढ़कर व्यक्ति

अपने आर्थिक एवं सामाजिक स्तर को ऊँचा उठा सकता है। साथ ही साथ मानव अधिकारों की प्राप्ति का भी एक महत्वपूर्ण साधन है। समाज की शक्ति का आधार भी शिक्षा है क्योंकि शैक्षिक अवसरों की समता आर्थिक विकास से जुड़ी हुई है। केवल शैक्षिक अवसरों को बढ़ा देने से कार्य नहीं चलता बल्कि उसके समान वितरण से ही वास्तविकता या सामाजिक न्याय को प्राप्त किया जा सकता है। राष्ट्रीय विकास के मार्ग में असमानता या विषमता एवं भेदभाव महत्वपूर्ण अवरोधक है।

उत्तर भारत के उत्तर प्रदेश के एक भाग बुन्देलखण्ड को जहां अपने शौर्य के लिए विख्यात माना जाता है वहीं यह भू–भाग प्रदेश के अन्य भागों की तुलना में अत्यन्त पिछड़ा हुआ है। बुन्देलखण्ड भू–भाग का ही एक जनपद 'हमीरपुर' है जिसे बुन्देलखण्ड के प्रवेश द्वार के नाम से जाना जाता है। जनपद हमीरपुर का राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन में अपना विशिष्ट स्थान एवं योगदान रहा है। इस जनपद में सभी जातियों एवं धर्मों के लोग आपसी सद्भाव के साथ अधिवासित हैं। जनपद की सम्पूर्ण जनसंख्या में दलित जातियां का अपना महत्वपूर्ण प्रतिशतांक है। दलित जातियों का राजनीतिक क्षेत्र में अपना निर्णायक महत्व होता रहा है। जनपद में शैक्षणिक संस्थाओं की उपलब्धता सामान्य स्तर की है फिर भी प्राथमिक से लेकर उच्च स्तर तक की शिक्षा ग्रहण करने की सुविधाएं सभी वर्गों के लिए उपलब्ध है जिनमें उच्च, पिछड़ी एवं दलित जातियों के लिए शिक्षण के द्वार खुले हुए हैं। किन्तु उच्च और पिछड़ी जातियों की तुलना में दलित समाज के लोगों में शिक्षा प्राप्त करने की अभिरूचि कम प्रतीत होती है जिससे उनमें शैक्षणिक उन्नयन की स्थिति विचार एवं चिन्तन का विषय है जबकि शासकीय स्तर दलित जातियों को प्राप्त होने वाली सुविधाएं अन्य जनपदों की भांति इस जनपद को भी सामान्य रूप से उपलब्ध हैं। "प्रस्तुत शोध

प्रबन्ध का विषय एवं समस्या" बुन्देलखण्ड क्षेत्र में दलित समाज की शैक्षणिक स्थिति का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन।

अध्ययन के उद्देश्य

श्रीमती यंग ने लिखा है–"सामाजिक शोध एक वैज्ञानिक योजना है जिसका उद्देश्य तार्किक तथा क्रमबद्ध पद्धतियों के द्वारा नवीन तथ्यों का अन्वेषण अथवा पुराने तथ्यों की पुनःर्परीक्षा, व्याख्याओं तथा उनको संचालित करने वाले स्वाभाविक नियमों का विश्लेषण करना है।"[1]

सी0ए0मोसर–की मान्यता है कि "सामाजिक शोध एक व्यवस्थित अनुसंधान है जिसका उद्देश्य सामाजिक घटनाओं या समस्याओं के सम्बन्ध में नवीन ज्ञान की प्राप्ति है।"[2]

इन अवधारणाओं के आधार पर शोध के उद्देश्यों को मोटे तौर पर दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. सैद्धान्तिक अथवा ज्ञान सम्बन्धी उद्देश्य
2. व्यवहारिक एवं प्रयोगवादी उद्देश्य

नवीन तथ्यों के विषय में अनुसंधान कर तथा पुराने तथ्यों की पुनः परीक्षा कर सामाजिक घटनाओं के सम्बन्ध में हमारे ज्ञान को गतिशील एवं प्रगतिशील बनाए रखना सामाजिक शोध का एक महत्वपूर्ण सैद्धान्तिक उद्देश्य है।

सामाजिक शोध सामाजिक जीवन के सम्बन्ध में हमारे ज्ञान का एक महत्वपूर्ण शोध है। वह ज्ञान हमें सामाजिक समस्याओं के हल करने एवं सामाजिक जीवन को अधिक प्रगतिशील बनाने के लिए आवश्यक योजना बनाने में मद्द कर सकता है।

---

[1] मुखर्जी, डॉ0 आर0एन0–सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी (1997) दिल्ली, पृ0सं0–2
[2] मुखर्जी, डॉ0 आर0एन0–पूर्वोक्त पृं0सं0–34

जहां तक प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के उद्देश्य का प्रश्न है वह यह जानाना है कि दलित समाज में शैक्षणिक उन्नयन कि स्थिति क्या है?

वैसे दलित समाज से सम्बन्धित अध्ययनों में 'लिंच' द्वारा आगरा की जाटव जाति जो मुख्यतः चमड़े का व्यवसाय करती है के ऊपर सामाजिक स्थिति से सम्बन्धित अध्ययन 1968 में किया गया।

उत्तर प्रदेश के ही आजमगढ़ जनपद के दलित जाति के अभिजनों पर 'ए स्टडी ऑफ हरिजन इलिट' (1987) नामक अध्ययन रामाश्रय राय द्वारा किया गया।

इसी प्रकार एस0एस0 सिंह द्वारा वाराणसी जनपद के दलित जाति के अभिजनों, दलित जाति के सामान्य सदस्यों एवं उच्च जाति के सदस्यों द्वारा तुलनात्मक अध्ययन इमरजिंग हरिजन इलिटः ए स्टडी ऑफ देअर आइडेंटिटी (1987) के रूप में किया गया।

जहां तक उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड भू–भाग के दलित समाज से सम्बन्धित अध्ययन का प्रश्न है तो समाजशास्त्र विषय के अन्तर्गत डॉ0 जे0पी0 माग द्वारा कोल महिलाओं की राजनीतिक सहभागिता (1988) सम्बन्धित शोध अध्ययन किए गये।

इसी प्रकार सहरिया जाति की महिलाओं में राजनैतिक संचेतना सम्बन्धित अध्ययन नीलम राणा (1998) द्वारा किया गया।

किन्तु दलित समाज में शैक्षणिक उन्नयन की स्थिति सम्बन्धित शोध कार्य 'समाजशास्त्र' विषय के अन्तर्गत प्रकाश में नहीं आए वह भी बुन्देलखण्ड भू–भाग के सन्दर्भ में।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में बुन्देलखण्ड–भू–भाग के हमीरपुर जनपद के दलितों की शैक्षणिक स्थिति का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन का मुख्य उद्देश्य बुन्देलखण्ड भू–भाग के जनपद हमीरपुर में दलित समाज में शैक्षणिक उन्नयन की वर्ष 1995 से 2000 तक की स्थिति का अध्ययन किया गया है इस अध्ययन में निम्नांकित बिन्दुओं पर शोध कार्य किया गया है जिसके निम्नांकित उद्देश्य रहे हैं–

1. दलित समाज में शैक्षणिक स्थिति का अध्ययन करना।
2. दलित समाज में शैक्षणिक विकास के सम्बन्ध में जागरूकता का अध्ययन करना।
3. दलित समाज के अभिभावकों का अपने बच्चों के शैक्षणिक विकास के प्रति दृष्टिकोण।
4. दलित समाज में पुरूष एवं स्त्रियों की शैक्षणिक स्थिति का अध्ययन।
5. दलित समाज के शैक्षणिक उन्नयन में समाजार्थिक कारकों की भूमिका।
6. दलित समाज के शैक्षणिक विकास में शासकीय योजनाओं की स्थिति का विश्लेषणात्मक अध्ययन।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के उद्देश्य अर्न्तविषयी होंगे जिसके अन्तर्गत आर्थिक यन्त्र, शिक्षाशास्त्र, मनोविज्ञान तथा राजनीतिक क्रिया विषयों पर पड़ने वाले प्रभावों का मिश्रित मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

उपकल्पनाएं

प्रस्तुत अध्ययन को संगठित और सुव्यवस्थित करने के लिए उपकल्पना का निर्माण करना आवश्यक था, इसलिए दलित समाज के शैक्षणिक स्थिति के विश्लेषणात्मक अध्ययन की दृष्टि से, दलित समाज के शैक्षणिक विकास में प्रभाव डालने वाले कारकों, शिक्षा के प्रति अभिभावकों के दृष्टिकोण को जानने के लिए प्रस्तुत अध्ययन की उपकल्पनाएं इस प्रकार से हैं–

1. दलित समाज के शैक्षणिक उन्नयन में आर्थिक कारण प्रभावी भूमिका निभाते हैं।
2. दलित समाज के शैक्षणिक विकास में संरक्षकों का अशिक्षित होना एक अहम कारक है।
3. दलितों के शैक्षणिक उन्नयन में उनके समाज में व्याप्त परम्परायें यदि महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।
4. दलितों में पुरूषों की तुलना में स्त्रियों की शिक्षा पर कम ध्यान दिया जाता है।
5. दलितों में शैक्षणिक विकास क्रम अवरूद्ध होने से उच्च शिक्षा संस्थाओं में दलितों का प्रतिशतांक प्राथमिक शिक्षा संस्थानों की तुलना में कम हो जाता है।
6. जागरूकता तथा प्रचार–प्रसार की कमी से दलितों का शैक्षणिक उन्नयन प्रभावित होता है।

शोध अध्ययन की उपयोगिता

वर्तमान समय में, भारतीय जनसंख्या में, दलित जातियों का प्रतिशतांक महत्वपूर्ण स्थान रखता हैं। संवैधानिक सुरक्षा और सुविधाओं की उपलब्धता से दलित जातियों के लोगों में जागरूकता, अधिकारों को पाने का उत्साह तथा धार्मिक संसाधनों के अधिकृत बनने के प्रयासों में दिनों–दिन वृद्धि होती जा रही है। इन सभी को पाने के लिए मुख्य आधार 'शिक्षा' को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ने से दलित जातियों के लोग उच्च शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं तथा उच्च पदों को प्राप्त कर रहे है।

प्रत्येक राष्ट्र की जनसंख्या में नवयुवकों का स्थान उल्लेखनीय एवं महत्वपूर्ण होता है चाहे वे किसी भी जाति या वर्ग के हों। इन्हीं युवकों में से अधिकांश युवक विभिन्न शिक्षा संस्थानों में छात्र के रूप में प्रवेश लेते हैं। शिक्षोपरान्त इनका जीवन राष्ट्रीय दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण होता है क्योंकि अर्जित प्रस्थिति प्राप्त करने तथा विभिन्न क्षेत्रों में सेवानिवृत्त होने वाले व्यक्तियों के स्थान पर एवं अनेक नवीन स्थानों पर इन्हीं छात्रों का चयन किया जाता है। राष्ट्र का वर्तमान एवं भविष्य बहुत बड़ी सीमा तक इन्हीं कुशलताओं, क्षमताओं, अपेक्षाओं एवं अभिवृत्तियों से भरा होता है। सम्पूर्ण राष्ट्र का सामाजिक सांस्कृतिक, शैक्षणिक, मनोवैज्ञानिक एवं आर्थिक विकास भी बहुत कुछ इन्हीं पर निर्भर होता है।

जिस समाज में शिक्षा का ढाँचा पिरामिडनुमा हो और अनेक स्तरों में बढ़ा हो उस समाज में शिक्षा का सबसे निचला स्तर (नींव) होती है। इसलिए कहा जा सकता है कि ऐसे समाज में साक्षरता न केवल विकास का महत्वपूर्ण इनपुट होती है बल्कि उस समाज को सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया से वह बहुत गहरे स्तर तक जुड़ी होती हैं। इस सन्दर्भ में राष्ट्रीय विकास में असन्तुलन और असमानता को देखते हुए शिक्षा के भौगोलिक खाके का और उसमें क्षेत्रीय भिन्नता का महत्व बढ़ जाता है यही कारण है कि शैक्षणिक प्रसार में भिन्नता का सटीक विश्लेषण हम तब तक नहीं कर सकते, जब तक विकास–प्रक्रिया के साथ इस व्यवस्था की परस्पर निर्भरता के दो तरफा सम्बन्ध को न ज्ञात कर लिया जाए। भारत में एक छोर से दूसरे छोर तक शैक्षिक अवसर के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया का स्वरूप और उसका स्तर सामाजिक–आर्थिक स्थितियों से काफी समानता रखता है और उसमें भौगोलिक दृष्टि से काफी भिन्नता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मानव पूँजी निर्माण तथा मानव संसाधन के विकास की दृष्टि से कुछ क्षेत्रों को कुछ अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक लाभ हुआ है।

तीसरी दुनिया के देशों में शैक्षिक विकास की एक विशेषता यह भी है कि काफी लम्बे समय तक इनमें क्षेत्रीय असमानता बनी रही है। इसके दो कारण रहे हैं–

प्रथम शिक्षा में उपनिवेशवादी विद्रूपताओं का बरकरार रहना जिनको दूर नहीं किया गया।

दूसरा कारण विकास अस्थिर रहा है तथा इसके लिए अपनाई गई रणीनीति की अपनी सीमाएं भी रही हैं।

भयानक असमानता के लगातार बने रहने के कारण तीसरी दुनिया के तमाम देशों को सिर्फ साक्षरता का सामान्य स्तर ही सुधारने में दिक्कतों का सामना नहीं करना पड़ रहा है बल्कि अपनी विकास नीति बनाते समय अंतर्क्षेत्रीय समानता के उद्देश्य को प्राथमिकता देने में भी इन देशों को कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है। 'समता' और 'संवृद्धि' की मांग के बीच कोई अन्तर्विरोध नहीं है। बिना 'सम्वृद्धि' के 'समता' का अर्थ एक 'स्थिर मलकुण्ड' के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा जिसमें परेशानी, अज्ञान दकियानूसी विचार, अंधविश्वासों का समान बंटवारा ही मुमकिन होगा। लेकिन बिना समता के 'संवृद्धि' आने पर सामाजिक ढाँचे का सन्तुलन बिगड़ जाता है। इसके चलते संवृद्धि में अवरोध पैदा होता है। यदि सामाजिक स्तर पर दोनों की साथ–साथ चिन्ता की जाये तो दोनों से एक साथ निपटा जा सकता है। दोनों एक दूसरे की मदद कर सकते हैं।

अनेक नवस्वाधीन देशों की सामाजिक–आर्थिक संरचना में निहित असमानताओं और विकृतियों की जड़ें उनकी ऐतिहासिक प्रक्रिया और विशेष कर उनकी औपनिवेशिक विरासत में देखी जा सकती हैं। मानव सभ्यता के प्रारम्भ से ही दो तरफा कार्य कारण सम्बन्ध के माध्यम से शिक्षा और विकास परस्पर घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित रहे हैं। विभिन्न समूहों के शैक्षिक स्तरों की असमानताएं

उनके सामाजिक–आर्थिक विकास के स्तर के सम्बन्ध में यह तथ्य विशेष रूप से सत्य है जो शैक्षिक विकास की एक अनिवार्य आवश्यकता है। जबकि आज के विकसित देशों में औद्योगिक क्रान्ति ने ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न की, कि शिक्षित श्रम शक्ति की आवश्यकता ने वहां धीरे–धीरे और अस्थिर गति से साक्षरता का सार्वजनिकरण कर दिया है औपनिवेशिक साम्राज्यों में उसी से जुड़ी हुई अल्प विकास की प्रक्रिया आम जनता के लिए साक्षरता के स्तर की असमानताओं और निरक्षरता की निरन्तरता का कारण बन गई।

औपनिवेशिक शासन की आवश्यकताओं ने इन देशों के विकास को अवरूद्ध किया है कृषि में प्रौद्योगिकी विकास की राह में रोड़े अटकाए, आत्मनिर्भर वाले औद्योगिक क्षेत्रों का उदय नहीं होने दिया और प्राथमिक से द्वैतीयक क्षेत्र में श्रम शक्ति के अंतर्क्षेपक स्थानान्तरण में गम्भीर बाधाएं उत्पन्न कर दीं, या अधिक से अधिक, अपविकास को प्रोत्साहन दिया। जबकि हस्त उद्योग पर आधारित द्वितीयक क्षेत्रक के बिखराव ने प्रौद्योगिक रूप से जुड़ी प्राथमिक गतिविधियों पर आवश्यकता से अधिक बोझ डाला, औपनिवेशिक प्रशासन की आवश्यकताएं एवं विस्तारित तृतीयक क्षेत्रक के द्वारा पूरी की जाती रही जो श्रम से असंबद्ध था और श्रम के प्रति उसका दृष्टिकोण अपमान सूचक था। सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियाँ, जो औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप श्रम और शिक्षा में अन्तर को कम करती थीं, इस तरह तीसरी दुनिया में उदित नहीं होने दी गयी।

हम प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उस सामाजिक–आर्थिक सन्दर्भ को सामने रखते हैं जिसमें शैक्षिक व्यवस्था की वर्तमान असमानताएं भारतीय क्षितिज पर उदित हुई। एक ही क्षेत्र में और अलग–अलग क्षेत्रों में आपस में असमानताओं के निम्न पक्ष इस सन्दर्भ में ध्यानागत हैं–

- अनुसूचित जातियों (दलितों) एवं अन्य के मध्य

- पुरूषों एवं महिलाओं के मध्य
- ग्रामीण एवं नगरीय बस्तियों के मध्य
- विकसित एवं कम विकसित क्षेत्रों के मध्य

जहां तक उत्तर प्रदेश के बुन्देलखण्ड क्षेत्र के दलित अर्थात अनुसूचित जातियों के शैक्षणिक स्थिति का प्रश्न है इस भू–भाग पर अवस्थित हमीरपुर जनपद में शैक्षणिक स्थिति सामान्य जातियों की तुलना में निम्न हैं। जबकि शिक्षा के अवसर सामान्य जातियों की तुलना में दलितों को भी समान रूप से उपलब्ध है साथ ही विभिन्न प्रकार की संवैधानिक सुविधा राज्य प्रशासन द्वारा उपलब्ध करायी जाती हैं। किन्तु प्राथमिक स्तर पर दलित जातियों के छात्रों का पंजीकरण का प्रतिशतांक उच्च शिक्षा के स्तर तक जाते–जाते कम हो जाता है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन की सैद्धान्तिक और व्यवहारिक दोनों ही प्रकार की उपयोगिता है। सैद्धान्तिक दृष्टि से यह अध्ययन दलित समाज के शैक्षणिक विकास के वर्तमान प्रतिमानों का विश्लेषण करता है।

वहीं दलित समाज के लोगों में शिक्षा के प्रति सजगता और अभिभावकों में अपनी सन्तति को शिक्षा दिलाने के प्रति रूझान के व्यावहारिक पक्ष को उद्घाटित करता है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के निष्कर्ष और सुझाव, इस भू–भाग के दलित समाज के छात्रों को प्रोत्साहित करने हेतु बनाई जाने वाली योजनाओं को सफलतापूर्वक संचालित करने एवं अपेक्षित परिणामों के लिए उपयोगी होंगे।

तालिका संख्या–1.6

जनपद हमीरपुर की जनसंख्या की स्थिति 2001 के अनुसार

कुल जनसंख्या 2001 के अनुसार	क्षेत्रीय आधार पर		लिंगानुसार		अनुसूचित जाति की जनसंख्या					
	ग्रामीण	नगरीय	पुरूष	महिला	कुल जनसंख्या	ग्रामीण	नगरीय	पुरूष	महिला	लिंगानुपात अनुसूचित जाति
1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11
1043724	869916	173808	563801	479923	237902	200889	37013	129427	108475	838

स्रोत–सेंसस ऑफ इण्डिया 2001

तालिका संख्या–1.6 में जनपद हमीरपुर की कुल जनसंख्या के साथ अनुसूचित जाति की जनसंख्या को ग्रामीण–नगरीय, पुरूष–महिला तथा लिंगानुपात का प्रदर्शित किया गया है। हमीरपुर जनपद की कुल जनसंख्या में पुरूष–महिला का लिंगानुपात 1000 : 851 है।[1] जबकि अनुसूचित जाति में लिंगानुपात 1000 : 838 है।

****

[1] सेंसस ऑफ इण्डिया, 2001

अध्याय–2

अध्ययन पद्धति एवं यन्त्र

- अध्ययन क्षेत्र
- अध्ययन पद्धति
- न्यादर्श संकलन
- प्राथमिक एवं द्वैतीयक तथ्य
- वर्गीकरण, सारणीयन एवं विश्लेषण

अध्ययन पद्धति एवं यन्त्र

जिस प्रकार विधाता की सर्वोत्तम सृष्टि मेधावी मानव है, उसी प्रकार मानव की सर्वोत्तम सृष्टि–मानव समाज एवं उसकी विचित्र घटनाएं। यह मानव बुद्धिजीवी है जिज्ञासा से भरपूर ज्ञानपिपासु हैं। इसलिए यह सच ही कहा गया है कि मानव प्रकृति का सबसे आश्चर्यजनक भाग है। यह बुद्धिजीवी, ज्ञान पिपासु मानव केवल प्रकृति का ही नहीं स्वयं अपना अध्ययन करता है। आकाश, धरती, पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, नदी और समुद्र का अध्ययन उसके सम्मुख अनेक आश्चर्यजनक अनुभवों को उपस्थित करता है और उसके ज्ञान विज्ञान के भण्डार को भरता रहता है परन्तु स्वयं अपना, अपने समाज का, अपने व्यवहारों का या फिर सामाजिक घटनाओं का अध्ययन मानव के लिए और भी रोचक अत्यन्त आश्चर्यजनक अभुनवों से भरपूर और अनेक अनोखेपन से समृद्ध होता है। परन्तु यह अध्ययन मनमाने ढंग से नहीं अपितु निरीक्षण, परीक्षण एवं प्रयोग पर आधारित वैज्ञानिक पद्धति के द्वारा किए जाने पर ही सत्य को ढूँढ़ा जा सकता है।

पद्धति का तत्पर्य उस प्रणाली से है जिसे कि एक वैज्ञानिक अपनी अध्ययन वस्तु के सम्बन्ध में तथ्ययुक्त निष्कर्ष निकालने का कोई संक्षिप्त मार्ग नहीं है। इसके लिए निरीक्षण, परीक्षण, वर्गीकरण, प्रयोग, तुलना तथा निष्कर्षीकरण के कठिन मार्ग को अपनाना पड़ता है। किसी भी शोध में अनुसंधान प्रक्रिया का विशेष महत्व होता है अनुसंधान का महत्व इस बात में निहित होता है कि वे बौद्धिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से जिज्ञासा शान्त करने में सहायक हो सके। अनुसंधान एक ऐसी ज:टिल प्रक्रिया है जिसका आधार वैज्ञानिक पद्धति

होता है।[1] क्रमबद्ध अध्ययन विज्ञान की आत्मा होती है। वैज्ञानिक पद्धति में क्रमबद्धता को वरीयता दी जाती है।

श्रीमती पी0वी0 यंग ने वैज्ञानिक पद्धति के चार प्रमुख चरण बताएं हैं।[2]

1. समस्या से सम्बन्धित उपकल्पना का निर्माण।
2. उपकल्पना परीक्षण के लिए तथ्यों का अवलोकन
3. परीक्षण एवं लेखन योग्य तथ्यों का वर्गीकरण।
4. विश्लेषण से नियमों का समान्यीकरण करना।

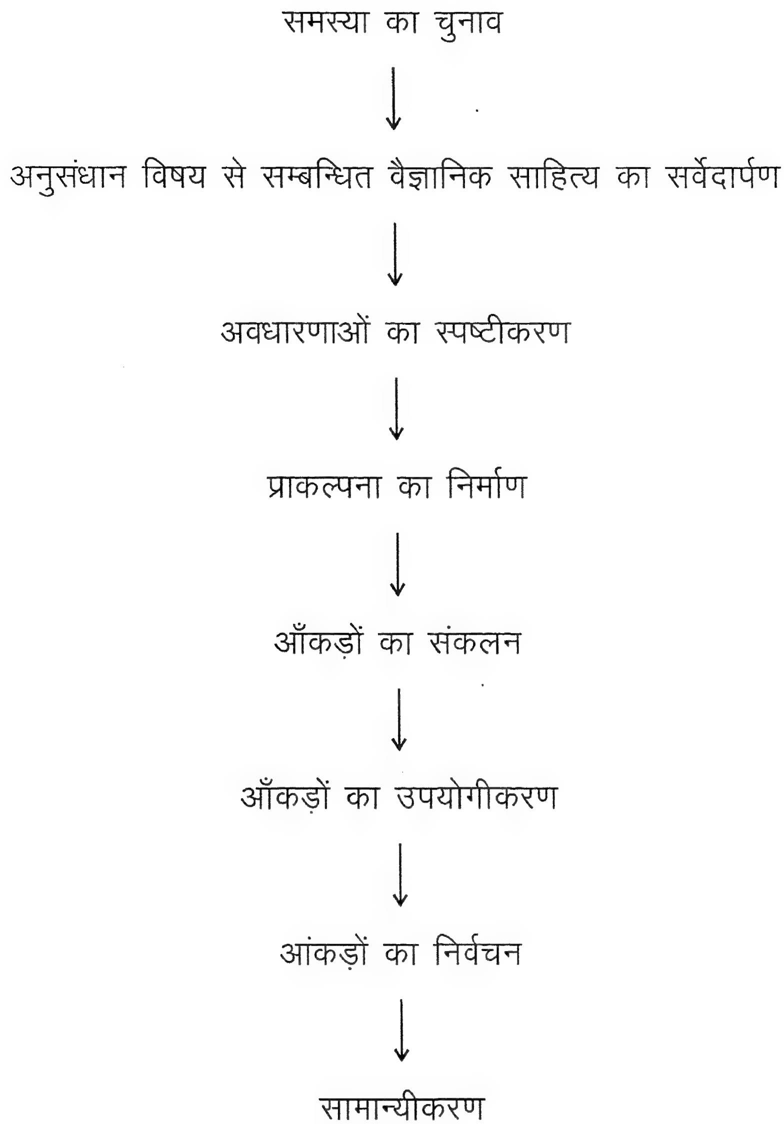
इस दृष्टि से अनुसंधान एक सुनियोजित प्रक्रिया है जो प्रायः पद्धति शास्त्र के रूप में जानी जाती है। कुछ विद्वानों ने इसे विज्ञान के साथ ही विकसित प्रक्रिया माना है। कुछ विद्वान इसे स्वयं विज्ञान मानते है। उनका तर्क है कि पद्धति शास्त्र अविभाज्य होता है इसका खण्ड–खण्ड विभाजन संभव नहीं है इसलिए यह स्वतः एक सम्पूर्ण विज्ञान है यह कारणता में विश्वास करता है। किसी घटना या समस्या में किसी कारण का होना निश्चित होता है। इन्हीं कार्य कारण के विश्लेषण में पद्धति शास्त्र रूचि लेता है।

हरिश्चन्द्र श्रीवास्तव (1977) ने कहा है कि अनुसंधान चाहे जिस कोटि का हो उसके निम्नांकित सोपान होते हैं–

---

[1] मुखर्जी आर0एन0 सामाजिक शोध एवं सांख्यिकी, दिल्ली पृ0सं0–105–06

[2] गुप्ता एवं शर्मा, एम0एमल0सी एवं सामाजिक सर्वेक्षण शोध एवं सांख्यिकी आगरा, पृ0सं0–15



यह सभी सोपान पद्धतिशास्त्र के ही अंग हैं किसी शोध को सही परिप्रेक्ष्य में जाँचने एवं परीक्षण के लिए हमें पद्धतिशास्त्र का प्रयोग करना पड़ता है।

किसी शोध का प्रारम्भिक चरण समस्या का चयन है। समस्याओं में से समस्या का चयन स्वयं समस्या होती हैं इस सम्बन्ध में डॉ0 श्यामधर सिंह

(1986) ने अपने अध्ययन में कहा है कि समस्याओं का चयन समस्या समाधान का आरम्भिक बिन्दु स्पष्ट रूप से एक विशेष समस्या का समाधान बनता है। इस दृष्टि से समस्या का चयन ही शोध प्रारुप का निर्धारण करता है।

शोध प्रारुप के सम्बन्ध में ए0एल0 एफाक का कथन है कि उद्देश्य की प्राप्ति के पूर्व ही उद्देश्य का निर्धारण का करके शोध कार्य की जो रूपरेखा बना ली जाती है, वही शोध प्रारुप है।[1]

इसे अनुसंधान प्रारुप या अनुसंधान का प्रायोजित प्रारूप कहा जाता है। समाज में घटित होने वाली प्रत्येक घटना को अध्ययन हेतु तभी चुना जाता है जब उसका कोई बौद्धिक अथवा व्यावहारिक उपयोग हो। समस्या के चयन में ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि वह किसी प्रकार के समाजोपयोगी सिद्धान्त से जुड़ी है? क्या वह सम्पूर्ण व्याप्त सिद्धान्त के किसी उपांग को प्रमाणित करने में सहायक है? अथवा मध्य अभिसीमा सिद्धान्त की श्रृखला में वृद्धि कर रहा है। इन तथ्यों को ध्यान में रखकर सामाजिक अनुसंधान के क्षेत्र में समस्या का चयन समयोपयोगी होता है। इस दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन बुन्देलखण्ड क्षेत्र में "दलितों की शैक्षणिक स्थित का अध्ययन करेगा वहीं शिक्षा के प्रति उनकी अभिरूचि एवं उससे जुड़ी विभिन्न समस्याओं का मूल्यांकन करने में सहायक होगा।

अध्ययन क्षेत्र

लुण्डवर्ग ने लिखा है कि इससे बढ़कर अपव्ययी व निष्फल अथवा अनुभवहीन अनुसंधानकर्ता का लक्षण और कुछ नहीं हो सकता कि आँकड़ों का उत्साहपूर्वक संकलन इस सिद्धान्त के आधार पर करना आरम्भ कर दिया जाए कि यदि केवल पर्याप्त तथा विभिन्न प्रकार के आंकड़ों को एकत्रित कर लिया

[1] बोगार्ड्स, ई0एस0 सोशियोलॉजी पृ0सं0–43

जाए तो उसके परिणामों के आधार पर किसी भी या समस्त प्रश्नों को उत्तर दिया जा सकता है।[1]

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध के लिए अध्ययन क्षेत्र के रूप में जनपद हमीरपुर को चुना गया है। वर्ष 1823 में स्वतंत्र जनपद के रूप में हमीरपुर की स्थापना हुई। जनपद हमीरपुर का मुख्यालय यमुना व बेतवा नदी के मध्य में स्थित हमीरपुर नगर में है जो प्रदेश की राजधानी लखनऊ से 140 किलोमीटर दूरी पर तथा कानपुर महानगर से 68 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। 11 फरवरी 1995 को इस जनपद से तहसील महोबा, चरखारी व कुलपहाड़ को पृथक कर नए जनपद महोबा का सृजन किया गया सम्प्रति जनपद हमीरपुर में मौदहा, राठ, सरीला एवं हमीरपुर तहसीलें हैं।[2]

हमीरपुर तहसील में कुरारा एवं सुमेरपुर विकास खण्ड मौदहा में मौदहा एवं विकास खण्ड तथा राठ में राठ सरीला एवं गोहाण्ड विकास खण्ड हैं। इस प्रकार पूरे जनपद में कुल सात विकास खण्ड हैं।[3]

हमीरपुर के उत्तर में कानपुर व फतेहपुर जनपद, दक्षिण में महोबा, पूर्व में बाँदा तथा पश्चिम में जालौन एवं झाँसी जनपदों की सीमाएं हैं। इस जनपद का अक्षाँसीय विस्तार 25°-5° से 26°-7° उत्तर एवं देशान्तरीय विस्तार 79-17° से 8°-5° पूर्व है। 30 सितम्बर 1997 से हमीरपुर जनपद नवसृजित चित्रकूटधाम मण्डल के अन्तर्गत हैं। इसकी मध्यवर्ती भौगोलिक स्थिति के कारण इसे बुन्देलखण्ड का प्रवेश द्वार भी कहा जाता है।

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार हमीरपुर जनपद की जनसंख्या 1042374 है। जनपद का जनसंख्या घनत्व 241 व्यक्ति प्रति वर्ग कि0मी0 हैं इसमें पुरूषों की संख्या 562911 तथा महिलाओं की संख्या 479463 हैं। जनपद

---

[1] मुखर्जी, आरएन0, पूर्वोक्त पृ0स0–21
[2] जनपद हमीरपुर गजेटियर, राजकीय प्रकाशन इलाहाबाद।
[3] साँख्यकी पत्रिका जनपद हमीरपुर (2002)

में प्रति 100 पुरूषों में 852 महिलाएं हैं। इस जनपद का भौगोलिक क्षेत्रफल 4121 वर्ग किमी0 है।[1]

हमीरपुर जनपद की साक्षरता दर 58.10 है जिसमें पुरूष साक्षरता दर 72.76 तथा महिला साक्षरता दर 40.65 है।[2] इस जनपद में ग्राम पंचायतों की संख्या 314 है। इसमें 61 न्याय पंचायतें हैं जिनके अन्तर्गत 647 ग्राम आते हैं। जिनमें 511 आबाद ग्राम हैं तथा 136 गैर आबाद ग्राम हैं।[3]

इस जनपद की प्रमुख फसलें–गेहूँ चना, ज्वार, मटर, मसूर, लाही, अलसी, अरहर आदि है। इस जनपद में दो प्रमुख नदियाँ यमुना और बेतवा होने के कारण खनिज व्यवसाय महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिसकी मौरंग, बालू दूरस्थ स्थानों में भेजी जाती है। जिसमें बाहुबलियों का वर्चस्व होता है शासकीय आधार पर मौरंग और बालू के पट्टे आरक्षण क्रम में किए जाते हैं किनतु व्यवसाय में संलग्नता प्रमुख रूप से बाहुबलियों का होता है क्योंकि व्यवसाय में धन इन्हीं लोगों द्वारा लगाया जाता है जिन लागों के नाम पट्टे होते हैं, उन्हें नाम मात्र का लाभांश मिल जाता है अथवा 'प्रभाव' के चलते वे चुप रहने में ही अपना हित समझते हैं उन्हें किसी प्रकार का लाभ प्राप्त नहीं होता है।

जनपद के औद्योगिक क्षेत्र भरुआ सुमेरपुर में साबुन (सुपर रिन, बिम–हिन्दुस्तान लीवर लिमिटेड) सीमेण्ट, स्टील, आक्सीजन गैस, आयल एवं दाल मिलें स्थापित हैं जिनका उत्पादन दूरस्थ क्षेत्रों में भेजा जाता है।

बुन्देलखण्ड के इस भू–भाग का प्रमुख लोक गीत बुन्देलखण्डी है तथा लोकनृत्यों में राई और दीवाली नृत्य महत्वपूर्ण है।

शिक्षा के क्षेत्र में इस जनपद की प्रगति उतनी तीव्र नहीं हो सकी जितनी होनी चाहिए वर्तमान में इस जनपद में उच्च शिक्षा हेतु महाविद्यालयों की

---

[1] जिला विकास पुस्तिका 2003–2004, जनपद हमीरपुर, सूचना एवं जनसख्या विभाग उ0प्र0, हमीरपुर।
[2] भारत की जनगणना, उत्तर प्रदेश एवं उत्तरांचल (2001) पृ0सं0 87, आगरा पृ0सं0–20
[3] जिला विकास पुस्तिका 2003–2004, जनपद हमीरपुर, सूचनार्थ एंव जनसम्पर्क विभाग उ0प्र0, हमीरपुर।

स्थापनाएं हुई जिनमें पुरूष वर्ग के लिए 04 तथा महिला वर्ग के लिए 02 महाविद्यालय हैं। तकनीकी शिक्षा के लिए मात्र 02 आई0टी0आई0 संचालित हैं। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की संख्या 53 है, बालिका माध्यमिक विद्यालयों की संख्या 03, जूनियर बेसिक स्कूल 821 परिषदीय, जू0बे0स्कूल 701 हैं सीनियर बेसिक स्कूल 255 (परिषदीय) है।

इसके अतिरिक्त पर्याप्त संख्या में प्राथमिक एवं माध्यमिक स्तर के विद्यालय संचालित हैं जिनमें कुछ को शासन स्तर पर मान्यता प्राप्त है। और कुछ विद्यालय चलते तो खुद के नाम पर है किन्तु उनके छात्र किसी मान्यता प्राप्त विद्यालयों में पंजीकृत होते हैं।

तालिका संख्या–2.1

जनपद हमीरपुर में विद्यालयों की स्थिति

क्रमांक	विद्यालय	संख्या
1	महाविद्यालय–पुरूष	03
	महाविद्यालय–महिला	01
2	आई0टी0आई0–पुरूष	01
	आई0टी0आई–महिला	01
3.	उच्चतर माध्यमिक विद्यालय	53
4.	बालिका माध्यमिक विद्यालय	03
5.	जूनियर बेसिक स्कूल–परिषदीय	821
	जूनियर बेसिक स्कूल	701
6.	सीनियर बेसिक स्कूल	255

*स्रोत–जिला विकास पुस्तिका, हमीरपुर

अध्ययन पद्धति

अध्ययन के निष्कर्ष हेतु तथ्यों के संकलन के लिए द्वैतीयक तथ्यों के साथ ही साक्षात्कार, प्रविधि इस प्रकार से दोनों ही प्रविधियों का प्रयोग किया गया है। चयनित अध्ययन क्षेत्र में अवस्थित प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्चशिक्षा संस्थानों से निर्धारित अध्ययनगत वर्षों के छात्र–छात्राओं की पंजीकृत संख्या को उनके केन्द्रीय नियंत्रक कार्यालयों से सूची प्राप्त की गयी है तथा तथ्यों का व्यवस्थित रूप से संकलन किया गया है।

इसके साथ ही साक्षात्कार प्रविधि के माध्यम से दलित परिवारों के मुखियाओं से यह जानना आवश्यक था कि आखिर दलित छात्र–छात्राओं द्वारा बीच में ही अध्ययन छोड़ देने के क्या कारण हैं, विस्तार से सूचना प्राप्त की गयी है। इसके लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। इसके लिए शोधार्थिनी द्वारा समग्र के प्रतिनिधित्व को बनाए रखना आवश्यक समझा गया जिसके लिए शोधार्थिनी ने ग्रामीण तथा नगरीय दलित परिवारों के मुखियाओं का साक्षात्कार, साक्षात्कार अनुसूची प्रविधि के माध्यम से करके तथ्य संकलित किए।

अध्ययन हेतु चयनित जनपद हमीरपुर की कृषित, भूमि, जनसंख्या, शिक्षा व्यवस्था, व्यवसाय, परिवार संरचना, स्वास्थ्य सेवाएं, यातायात तथा संचार के संसाधनों से सम्बन्धित आंकड़ों को एकत्र कर उनका विश्लेषण करने का प्रयास किया गया है। प्राथमिक आंकड़ों का संग्रहण पूर्णतया क्षेत्रीय सर्वेक्षण पर आधारित है जबकि द्वैतीयक आंकड़ों के संग्रहण में जनगणना पुस्तिका, क्षेत्रीय उच्च शिक्षा अधिकारी जिला विद्यालय निरीक्षक, बेसिक शिक्षा अधिकारी, जनपद गजेटियर आदि से प्राप्त दस्तावेजों एवं अभिलेखों का सहारा लिया गया है।

विद्यालयों में अध्ययनरत दलित छात्रों की वास्तविक संख्या हेतु सम्बन्धित विभागों से उनकी सूचना प्राप्त कर पाना कठिन कार्य था क्योंकि संख्या का

सत्यापन विद्यालयों तथा उनके सम्बन्धित विभागों में उपलब्ध दस्तावेजों से ही सम्भव था जिसके लिए अनेकों बार में संख्या का सत्यापन किया गया तथा अधिकारियों एवं शिक्षकों से सम्पर्क किया गया।

तथ्य संकलन के दौरान ऐसा प्रतीत हुआ कि मात्र छात्र–छात्राओं की संख्या जो विद्यालयों में पंजीकृत हैं उनका विश्लेषण करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि दलित परिवारों के मुख्यिा शैक्षणिक उन्नयन के सम्बन्ध में क्या दृष्टिकोण रखते हैं यह जानना भी आवश्यक समझा गया इसके लिए उन (मुखिया) का दृष्टिकोण जानने के लिए प्रत्यक्ष अवलोकन प्रविधि का सहारा लिया गया इसके लिए एक साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से 200 परिवारों (दलित) के मुखियाओं का साक्षात्कार किया गया साथ ही दैनन्दिनी में उनके द्वारा दी गयी महत्वपूर्ण जानकारियों को क्रमवार अंकित किया गया। शोध कार्य में यह दैनन्दिनी अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रतीत हुई। वास्तव में दलित समाज में शैक्षणिक परिवेश की समग्र झाँकी दैनन्दिनी में अंकित तथ्यों से प्राप्त हुई जो साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त होना सम्भव नहीं थी।

अर्द्ध सहभागी अवलोकन के क्रम में दलित समाज के मध्य शैक्षणिक उन्नयन के क्षेत्र में कार्य करने वाले सामाजिक कार्यकर्ताओं, संस्थानों तथा दलित समाज के उन लोगों से जो शैक्षणिक उन्नयन को उचित मानते हैं, तथा इस हेतु जागरूकता का प्रचार प्रसार कर रहे है, से समय–समय पर सम्पर्क कर गहन विचार विमर्श किया गया।

दलित समाज की स्थिति के सम्बन्ध में परिवार के मुखिया के दृष्टिकोण को जानने के लिए साक्षात्कार के समय भी आने वाले अवरोधों, शैक्षणिक अभिरूचि आदि के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी निरन्तर प्राप्त की जाती रही है। चयनित अध्ययन क्षेत्र के विद्यालयों, महाविद्यालयां में शोधार्थिनी द्वारा दलित छात्रों से सम्पर्क करने का अवसर प्राप्त हुआ जिससे इन छात्रों में शैक्षणिक

उद्देश्य सफलताओं ज्ञानार्जन की अभिरूचि सम्बन्धी मनोभावों को जानने का अवसर प्राप्त हुआ जो शोध निष्कर्ष प्राप्त करने में महत्वपूर्ण तथ्य साबित हुए।

दलित समाज के परिवार के 'मुखिया' से शोध हेतु संकलित किये जाने वाले तथ्यों के लिए बनायी गयी साक्षात्कार अनुसूची को अन्तिम रूप देने से पूर्व उसका अध्ययन क्षेत्र के कुछ उत्तरदाताओं से साक्षात्कार करके पूर्व परीक्षण किया गया। प्राथमिक तथ्यों को संकलित करने के लिए प्रयुक्त साक्षात्कार अनुसूची में मुक्त प्रकार के विकल्पहीन तथा पूर्व निर्धारित विकल्प वाले दोनों प्रकार के प्रश्न आवश्यकतानुसार रखे गये। तथ्यों के संकलनार्थ प्रयुक्त साक्षात्कार अनुसूची को इस शोध प्रबन्ध में परिशिष्ट के रूप में दिया गया है।

न्यादर्श संकलन

किसी भी शोध में समग्र सामग्री को कम करके नहीं आँका जा सकता है वे शोध के अन्तरंग भाग है लेकिन साथ ही वे स्रोत भी समान रूप में महत्वपूर्ण हैं जहां से एक शोधार्थी समस्या के विश्वसनीय अध्ययन के लिए सूचनाएं संकलित करता है।[1] विश्वसनीय स्रोतों से समंकों या न्यादर्श का संकलन शोध अध्ययन का महत्वपूर्ण चरण होता है जिसमें अध्ययन विषय से सम्बन्धित न्यादर्श संकलन हेतु गजेटियर, शिक्षा विभाग द्वारा प्रकाशित आँकड़े समाज कल्याण विभाग द्वारा प्रकाशित योजनाओं की विस्तृत–जानकारियां, जनगणना पुस्तिका आदि का सहारा लिया गया है।

किसी भी शोध कार्य के लिए न्यादर्श का संकलन प्राथमिक तथ्यों हेतु प्रश्नावली, अनुसूची, साक्षात्कार, निरीक्षण पद्धति तथा द्वैतीयक तथ्यों हेतु प्रकाशित रिपोर्ट, रिकार्ड, पत्र पत्रिकाओं की रिपोर्टस आदि के माध्यम से किया जाता है। सही सूचना प्राप्त करने के लिए चयनित क्षेत्र के अधिवासितों से

---

[1] गुडे एंव हॉट–मेंथड्स ऑफ सोशल रिसर्च (1972) न्यूयार्क पृ0सं0–362

सम्पर्क तथा मेल–मिलाप बढ़ाना आवश्यक हो जाता है ताकि वे किसी तथ्य को न छिपाकर स्पष्ट एवं यर्थाथ सूचनाएं देने के लिए तैयार हो जाएं। साथ ही यह भी आवश्यक है कि न्यादर्श संकलन करते समय अध्ययनोपयोगी तथ्यों की उपेक्षा न हो। प्रस्तुत अध्ययन में मुख्य रूप से वर्ष 1995 से 2000 तक की दलित समाज में शैक्षणिक उन्नयन की स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन करने के लिए द्वैतीयक स्रोतों–सम्बन्धित शिक्षा विभाग, विद्यालयों, राष्ट्रीय सूचना विज्ञान केन्द्र, समाज कल्याण विभाग से तथा दलित समाज में परिवारों के मुखियाओं का शैक्षणिक उन्नयन से सम्बन्धित दृष्टिकोण को जानने के लिए साक्षात्कार अनुसूची का उपयोग किया गया जिसमें शोध से सम्बन्धित तथ्यों को ज्ञात करने के लिए आवश्यक प्रश्नों को समाविष्ट किया गया।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में शोधार्थिनी द्वारा अध्ययन विषय से सन्दर्भित जनपद हमीरपुर में संचालित प्राथमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा महाविद्यालयों में पजीकृत दलित छात्रों की वर्षागत स्थिति का तुलनात्मक अध्ययन के लिए वर्षानुसार पंजीकृत छात्रों की सूची संकलित की गयी। अभिभावकों का दृष्टिकोण जानने के लिए शोधार्थिनी द्वारा साक्षात्कार प्रविधि के अन्तर्गत साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया।

साक्षात्कार अनुसूची से प्राप्त तथ्यों तथा पंजीकृत छात्रों की वर्षानुसार (1995–2000) सूची को तुलनात्मक अध्ययन के लिए वर्गीकरण एवं सारणीयन का प्रयोग किया गया। अभिभावकों के दृष्टिकोण को जानने हेतु 220 अनुसूचियों का प्रयोग किया गया। वर्गीकरण के समय 203 अनुसूचियों को पूर्णरूप से भरा हुआ पाया गया। अध्ययन को सुगम बनाने की दृष्टि से 203 अनुसूचियों में से 200 अनुसूचियों का ही तथ्यों के संकलन हेतु उपयोग किया गया, ऐसा इसलिए उचित समझा गया कि प्रतिशतांक ज्ञात करने में सरलता तथा सुगमता बनी रहे।

प्राथमिक एवं द्वैतीयक तथ्य

वास्तविक सूचना या तथ्यों के बिना सामाजिक अनुसंधान या शोध वास्तव में एक अपंग प्राणी की भाँति है।[1] अनुसंधान या शोध की सफलता इसी बात पर निर्भर रहती है कि एक शोधार्थी अपने अध्ययन विषय के सम्बन्ध में कितने वास्तविक निर्भर योग्य सूचनाओं एवं तथ्यों को एकत्रित करने में सफल होता है।

सामाजिक शोध में विभिन्न प्रकार की सूचनाओं या न्यादर्शों की आवश्यकता होती है इन्हें सैद्धान्तिक रूप में दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

1. प्राथमिक तथ्य
2. द्वैतीयक तथ्य

प्राथमिक तथ्य वे मौलिक आँकड़े होते हैं जिन्हे निरीक्षण के समय शोधार्थिनी ने अपनी डायरी में अंकित किया है जो इस शोध के लिए अत्यन्त उपयोगी थे, प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में जिन प्राथमिक तथ्यों का उपयोग किया गया है वे दलित समाज के परिवारों के मुखियाओं का शैक्षणिक उन्नयन के सम्बन्ध में दृष्टिकोण के आधार पर संग्रहीत तथ्य प्राथमिक है जिसके अन्तर्गत दलित परिवारों की स्थिति, परिवार में शैक्षणिक परिवेश की स्थिति, शिक्षा के प्रति जागरूकता, आर्थिक स्थिति का विश्लेषण, छात्रवृत्ति के उपयोग की प्रवृत्ति सम्बन्धी तथ्य एकत्रित किए गये। इन तथ्यों के बिना शोध का उद्देश्य पूर्ण होता प्रतीत नहीं हो रहा था। इसके लिए शोधार्थिनी को दलित समाज के परिवारों में बार–बार जाकर सम्पर्क करना पड़ा कई बार परिवार के मुखिया प्रश्नों के जवाब के प्रति उदासीन दिखे किन्तु शोध की यर्थाथता तथा वस्तुनिष्ठता बनाए रखने के लिए शोधार्थिनी द्वारा धैर्य के साथ तथ्यों का संकलन किया गया। प्रायः दलित समाज के लोग दिन में अपने कार्य स्थल पर

---

[1] मुखर्जी, आर०एन०–पूर्वोक्त–पृ०सं० 100

चले जाते थे और देर शाम को लौटते थे ऐसी स्थिति में शोधार्थिनी द्वारा प्रातःकाल और सांयकाल अध्ययन क्षेत्र के उत्तरदाताओं से सम्पर्ककर प्राथमिक तथ्य संकलित किये गये।

दलित समाज के परिवारों के मुखियाओं से सम्पर्क करना शोधार्थिनी ने इसलिए उचित समझा क्योंकि ये वे व्यक्ति थे जो कि अध्ययन विषय या समस्या के समबन्ध में ज्ञान रखते हैं अथवा दीर्घ समय से उनके घनिष्ठ सम्पर्क में हैं।

प्रसिद्ध विद्वान श्री थामर के अनुसार "ऐसे व्यक्ति न केवल विद्यमान अवस्थाओं को बताने की योग्यता रखते हैं अपितु एक सामाजिक प्रक्रिया में अन्तर्निहित महत्वपूर्ण चरण व निरीक्षण योग्य सुझावों के सम्बन्ध में भी संकेत कर सकते हैं।[1] प्राथमिक तथ्यों के एक स्रोत प्रत्यक्ष निरीक्षण का उपयोग भी इस शोध प्रबन्ध में किया गया, जिसके अन्तर्गत शोधार्थिनी ने अध्ययन क्षेत्र के विभिन्न विद्यालयों में अध्ययन समय पर जाकर दलित छात्रों की अध्ययन अभिरूचि, वातावरण एवं उपस्थिति आदि के सम्बन्ध में समय-समय पर जानकारी प्राप्त की।

किसी भी शोध में जितना महत्व प्राथमिक तथ्यों का होता है वह सर्वविदित है किन्तु द्वैतीयक तथ्यों के बिना शोध की वैज्ञानिकता प्रश्न चिहिन्त हो जाती है, ये वे आँकड़े, तथ्य या सूचनाएं होती हैं जो शोधार्थी को प्रकाशित, अप्रकाशित रिपोर्टों, सांख्यिकी, पाण्डुलिपि, डायरी, पत्र आदि के माध्यम से प्राप्त होते हैं।

द्वैतीयक स्रोतों से प्राप्त सूचनाएं अध्ययन विषय के सम्बन्ध में अनेक ऐसी प्राथमिक व गहन जानकारी को प्रस्तुत करती है तथा उस विषय को ऐसी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि का निर्माण करती है कि उसे जाने बिना नवीन शोध कार्य को सफलतापूर्वक उसके लक्ष्य तक पहुँचाना अत्यधिक कठिन होता है।

---

[1] पामर, वी0एम0, फीलड स्टडीज इन सोसियोलॉजी (1982) पृ0सं0–57

इस सम्बन्ध में श्री लुण्डवर्ग का सुझाव है कि "प्रस्तावित अनुसंधान को आरम्भ करने से पूर्व उसमें सम्बन्धित समस्त प्रलेखीय स्रोतों का सदैव सावधानीपूर्वक सर्वेक्षण कर लेना चाहिए, एक ही कार्य को दोबारा करने की गलती करने, अध्ययन पद्धति के सम्बन्ध में सुझाव प्राप्त करने, त्रुटियों से बचने, कठिनाइयों से अवगत होने आदि के लिए यह काम महत्वपूर्ण है। साथ ही यदि हम अपने परिणामों की तुलना अन्य अनुसंधानकर्ताओं के परिणामों के साथ करना चाहते हैं तो भी हमें प्रलेखीय स्रोतों के माध्यम से उनके द्वारा अपनाई गई पद्धतियों से परिचित होना आवश्यक होगा।[1]

प्रस्तुत शोध में द्वैतीयक स्रोतों की उपयोगिता अत्यन्त महत्वपूर्ण हो जाती है तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से आवश्यक तथ्यों के प्रमुख स्रोत द्वैतीयक स्रोत ही हैं इसके लिए प्राथमिक माध्यमिक एवं उच्च–शिक्षा संस्थानों में वर्ष 1995 से 2000 तक के विभिन्न स्तरों में दलित समाज के छात्रों के पंजीकृत होने की स्थिति इन्हीं संस्थानों तथा सम्बन्धित विभागों से ही संभव हो सकी है जिसके लिए शोधार्थिनी ने बेसिक शिक्षा अधिकारी कार्यालय, जिला विद्यालय निरीक्षक कार्यालय तथा महाविद्यालय के अप्रकाशित दस्तावेजों के अध्ययन से सम्बन्धित आँकड़े संग्रहीत किए।

इसके साथ ही छात्रवृत्ति वितरण तथा शासन से चलाई जा रही दलित समाज के शैक्षणिक उन्नयन की योजनाओं की विस्तृत जानकारी समाज कल्याण विभाग, हरिजन कल्याण विभाग तथा जिला सांख्यिकी अधिकारी के कार्यालय से वहां उपलब्ध प्रकाशित एवं अप्रकशित आंकड़े, रिपोर्ट आदि से शोध सम्बन्धी तथ्य एकत्रित किए गये तथा तथ्यों के सत्यापन तथा वास्तविकता की जांच के लिए जिला राष्ट्रीय सूचना विभाग केन्द्र के दस्तावेजों तथा कम्प्यूटरों में

---

[1] लुण्डवर्ग, सोशल रिसर्च, पृ0सं0–33

अभिरक्षित आंकड़ों से मिलान के पश्चात उनका उपयोग प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में किया गया।

अध्ययन क्षेत्र के परिचय, जनसंख्या, दलितों की साक्षरता दर तथा विभिन्न वर्षों में साक्षरता की स्थिति के लिए जिला गजेटियर जनगणना पुस्तिका तथा जनपद में शिक्षा संस्थानों की संख्या के लिए जिला सांख्यिकी पुस्तिका से द्वैतीयक तथ्य प्राप्त किये गये। राष्ट्रीय स्तर की पत्रिकाओं, समाचार पत्रों यूनिसेफ की रिपोर्ट्स कल्याण मंत्रालय से समय–समय पर प्रकाशित होने वाली रिपोर्ट्स का अध्ययन शोधार्थिनी द्वारा किया गया तथा शोध अध्ययन में आवश्यक तथ्यों का द्वैतीयक तथ्य के रूप में उपयोग किया गया।

वर्गीकरण, सारणीयन तथा विश्लेषण

शोध की निरन्तर विकसित होती पद्धतियों में सांख्यकीय विज्ञान का महत्व बढ़ता ही जा रहा है। साधारण व्यक्ति भी अपने दैनिक जीवन में इसका किसी न किसी रूप में प्रयोग करते हैं। सांख्यिकीय विज्ञान का मुख्य कार्य किसी भी विषय के सांग्यि्यकीय तथ्यों को एकत्रित करना और इन तथ्यों को क्रम से प्रदर्शित करना है जिससे विषय का विश्लेषण वैज्ञानिक रीति से किया जा सके। इस विश्लेषण के लिए तथ्यों का वर्गीकरण पहला चरण है। जब हम तथ्यों को उनमें पाई जाने वाली समानता या विभिन्नता के आधार पर विभिन्न श्रेणीयों में व्यवस्थित रूप से विभाजित करते हैं तो इस प्रक्रिया को वर्गीकरण कहा जाता है।

सरल शब्दों में वर्गीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा संग्रहित तथ्यों को उनकी समानता व असमानता के आधार पर विभिन्न श्रेणियों मे श्रेणीबद्ध किया जाता है।

श्री एल्हान्स के अनुसार "सादृश्यताओं व समानताओं के अनुसार तथ्यों को समूह एवं वर्गों में व्यवस्थित करने की प्रक्रिया परिभाषिक दृष्टि से वर्गीकरण कहलाती है।[1]

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में प्राथमिक एवं द्वैतीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों को उनकी समानता असमानता एवं क्रमानुसार विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया गया है।

प्राथमिक तथ्यों के रूप में अनुसूची के माध्यम से प्राप्त 200 व्यक्तियों के दृष्टिकोणों को व्यवस्थित क्रम में प्रस्तुत किया गया है। इसी प्रकार द्वैतीयक स्रोतों से प्राप्त वर्ष 1995 से 2001 के मध्य विभिन्न स्तरों पर शिक्षा प्राप्त करने हेतु दलित समाज के छात्र–छात्राओं की सूचनाओं का विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत करके प्रस्तुत किया गया है विद्यालयों की संख्या को वर्गीकरण के माध्यम से प्रस्तुत किया है।

वर्गीकरण की प्रक्रिया के माध्यम से तुलनात्मक अध्ययन में सरलता हुई है।

जिस प्रकार एक मकान के निर्माण में पत्थरों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार शोध रूपी भवन के निर्माण में समंकों की आवश्यकता होती है लेकिन जिस प्रकार पत्थरों के ढ़ेर को मकान नहीं कहा जा सकता उसी प्रकार से समंकों के संकलन से ही शोध कार्य पूरा नहीं होता जब तक कि उन्हें व्यवस्थित न कर दिया जाए। इस अवधारणा का प्रयोग प्रस्तुत अध्ययन में किया गया है।

वर्गीकरण की प्रक्रिया के पश्चात सामग्री को और भी स्पष्ट तथा बोधगम्य करने के लिए तथ्यों का सारणीयन किया जाता है। वास्तव में सारणीयन, वर्गीकरण के पश्चात विश्लेषण कार्य में अगला कदम होता है। इसके माध्यम से

---

[1] एलहान्स, डी0एन0 फाउण्डेशन आफ स्टेटिसटिक्स, पृ0सं0 56

तथ्यों में सरलता और स्पष्टता आती है और गणनात्मक तथ्य अधिक व्यवस्थित होकर प्रदर्शन योग्य बन जाते हैं।

डा0 जे0सी0 चतुर्वेदी ने लिखा है कि "दो दिशाओं में पढ़ा जा सके इस रूप में कुछ पंक्तियों तथा स्तम्भों में तथ्यों को एक क्रमबद्ध तौर पर व्यवस्थित करने की प्रक्रिया को सारणीयन कहा जाता है।"[1]

श्री घोष एवं चौधरी के अनुसार "सारणीयन द्वारा गणनात्मक तथ्यों का इस भाँति व्यवस्थित एवं वैज्ञानिक प्रदर्शन करना है कि विचारणीय समस्या हल हो जाए।"[2] शोध विशेषज्ञों के इन दृष्टिकोणों का प्रयोग प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में किया गया है। जिससे तथ्यों का तुलनात्मक प्रदर्शन सरल एवं सुगम हो सका है।

समंकों के सारणीयन पश्चात् तथ्यों के विश्लेषण व व्याख्या की आधारभूत आवश्यकता होती है। यदि ऐसा न किया गया तो संकलित तथ्य अर्थहीन ही बने रहते और उनसे अध्ययन का कोई भी परिणाम निकालना शोधार्थिनी के लिए सम्भव नहीं हो सकता। यही कारण है कि श्रीमती यंग ने "वैज्ञानिक विश्लेषण को शोध का रचनात्मक पक्ष कहा है।"[3]

तथ्यों के उचित विश्लेषण के बिना अध्ययन विषय की वास्तविक व्याख्या संभव नहीं है और तथ्य युक्त व्याख्या के बिना शोध कार्य का कोई परिणाम निकल ही नहीं सकता है।

श्रीमती यंग के अनुसार "क्रमबद्ध विश्लेषण का कार्य एक ठोस बौद्धिक भवन का, विचार के एक संगठन का निर्माण करना है जो कि एकत्रित तथ्यों को

---

[1] चतुर्वेदी, डॉ0जे0सी0, मैथमेटिकल स्टेटिसाटिक्स (1954), पृ0सं0–43
[2] घोष एम0के0, चौधरी, एस0सी0, स्टैटिसटिक्स, थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस (1950) पृ0सं0 94
[3] यंग, श्रीमती पी0वी0, पूर्वोक्ट, पृ0सं0–309

उनके उचित स्थान तथा सम्बन्धों में प्रतिस्थापित करने में सहायक होगा ताकि उनसे सामान्य निष्कर्षों को निकाला जा सकें।"[1]

विश्लेषण व व्याख्या के आधार पर ही वास्तविक वैज्ञानिक नियमों को प्रतिपादित किया जा सकता है। पुराने सिद्धान्तों की परीक्षा करने, नवीन सिद्धान्तों या नियमों को प्रतिपादित करने अथवा पुराने सिद्धान्तों को गलत प्रमाणित करने के लिए एकत्रित तथ्यों का विश्लेषण एवं व्याख्या आवश्यक है। स्वयं तथ्य मूक होते हैं, वे कुछ नहीं कहते, पर उनका क्रमबद्ध विश्लेषण एवं व्याख्या करके उन्हें मुखरित किया जा सकता है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन में प्राथमिक एवं द्वैतीयक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों को वर्गीकरण, सारणीयन के पश्चात् उनका विश्लेषण शैक्षणिक स्थिति, शैक्षणिक जागरूकता तथा आर्थिक एवं शैक्षणिक सह सम्बन्धों की स्थिति के आधार पर सारणी देते हुए किया गया है।

विश्लेषण एवं व्याख्या शोध प्रबन्ध की महत्वपूर्ण अवस्था है शोध प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण के माध्यम से ही शोधार्थी शोध से सम्बन्धित सभी समंको एवं सूचनाओं को व्यवस्थित रूप से जनसामान्य के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। शोधार्थिनी द्वारा शोध प्रबन्ध के प्रस्तुतीकरण पर पर्याप्त ध्यान दिया गया है क्योंकि यही सम्पूर्ण शोध की आत्मा है और उसका अन्तिम उद्देश्य भी।

****

[1] यंग, श्रीमती पी0वी0, पूर्वोक्त पृ0सं0–310

अध्याय—3

बुन्देलखण्ड के दलित समाज का विवरणात्मक परिचय

- अनुसूचित जातियाँ
- अनुसूचित जातियों (दलितों) की समस्याएं
- अस्पृश्यता की समस्या
- अस्पृश्यो की निर्योग्यताएं
    - धार्मिक निर्योग्यताएं
    - सामाजिक निर्योग्यताएं
    - राजनीतिक निर्योग्यताएं
    - आर्थिक निर्योग्यताएं

दलित समाज का विवरणात्मक परिचय

पूर्व अध्यायों में प्रस्तावना एवं अध्ययन पद्धति की विवेचना की गई है। प्रस्तुत अध्याय में दलित समाज का परिचय और उसकी समस्याओं और सम्बन्धित प्राविधानों का उल्लेख किया गया है।

भारतीय समाज का बुनियादी ढाँचा, लोकतांत्रिक नहीं रहा है। यह जन्मजात असमानता पर आधारित अनेक जातियों उप–जातियों में बंटा हुआ है। भारतीय समाज चार वर्णों में विभाजित है–[1]

1. ब्राह्मण या पुरोहित वर्ग
2. क्षत्रिय या सैनिक वर्ग
3. वैश्य अथवा व्यापारिक वर्ग
4. शूद्र अथवा शिल्पकार

इनमें शूद्र, हरिजन अर्थात दलित सबसे नीचे हैं। निःसन्देह भारत में जाति व्यवस्था अति प्राचीन संस्था है यह प्रथा भारत में अपनी दृढ़ता के साथ केवल ब्राह्मण जाति में प्रचलित है, जो हिन्दू समाज की संरचना में सर्वोच्च स्थान पर है। गैर–ब्राह्मण जातियों ने तो केवल इस प्रथा का अनुसरण किया है। भारत में जाति प्रथा का अर्थ है कि समाज को कृत्रिम हिस्सों में विभाजित करना, जो रीति–रिवाजों और शादी व्यवहार की भिन्नताओं से बँधे हों। सजातीय विवाह एक मात्र इसका लक्षण है जो जाति प्रथा की विशेषता है।

'हरिजन' शब्द हीनता का द्योतक है जबकि दलित शब्द में इस प्रकार की भावना का प्रायः समावेश नहीं दिखाई पड़ता। इसमें आत्म सम्मान के साथ जीने और अपने अधिकारों को पान की प्रबल भावना दिखाई पड़ती है। "'दलित' शब्द

---

[1] मौर्य, कामता प्रसाद, हरिजन बनाम दलित, हम दलित पत्रिका (मासिक) नई दिल्ली (अक्टूबर 2003) पृष्ठ संख्या–03

का प्रयोग केवल अछूतों के लिए किया गया था।"[1] इसमें आदिवासी तथा जरायमपेशा लोग शामिल नहीं थे। इसके तहत कुछ ही जातियाँ शामिल हो सकीं। इससे उनकी जनसंख्या में कमी देखी गई। पिछड़े वर्ग के प्रतिनिधियों की मान्यता थी कि दलित वर्ग नामक श्रेणी में उस शब्द के सीमित अर्थ के अनुसार केवल अछूतों को ही शामिल न किया जाए अपितु शैक्षणिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों को भी शामिल किया जाए लेकिन यह संभव नहीं हो सका, यदि इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया जाता तो दलित वर्ग के लोगों की संख्या में वृद्धि हो जाती। लेकिन उन्हें (अछूतों) अथवा सवर्ण हिन्दुओं से कोई समर्थन नहीं मिला। हिन्दू ऐसे किसी भी प्रयास के विरूद्ध थे जिसका उद्देश्य दलित वर्गों की संख्या में वृद्धि करना हो। अछूत भी यह नहीं चाहते रहे हैं कि उनकी श्रेणी में किसी ऐसे वर्ग को शामिल किया जाए जो वास्तव में अछूत न हो। यह जातिवाद की समस्या सैद्धान्तिक और व्यावहारिक रूप से विकराल है। जब तक भारत में जाति प्रथा विद्यमान है तब तक हिन्दुओं में अन्तर्जातीय विवाह और वाहय लोगों से शायद ही समागम हो सके। यदि हिन्दू पृथ्वी के अन्य क्षेत्रों में भी जाएं तो भारतीय जात–पात की समस्या उत्पन्न होने की संभावनाएं बढ़ जायेगी।

डा० राधाकृष्णन ने कहा है "यदि सभी वर्गों के लोग अपने–अपने निश्चित कर्तव्य करते रहें, तो वे उच्चतम अमिट आनन्द की अनुभूति कर सकते हैं।[2]

जाति व्यवस्था के जनक मनु ने जिस सहिंता (मनुस्मृति) की रचना की है वह असमानता और अन्याय पर आधारित है।

वर्ण व्यवस्था के आधार पर हिन्दू समाज सैकड़ों जातियों में विभाजित हुआ है।

---

[1] मौर्य, कामता प्रसाद, पूर्वोक्त, पृ०सं०–04

[2] राधाकृष्णन, डॉ, ईस्टर्न रिलीजन्स एण्ड वेस्टर्न थॉट (1949), लन्दन पृ०सं०–13

वर्तमान में नयी जनगणना 2001 के अनुसार 4626 जातियाँ और उपजातियाँ है।[1]

भारतीय जाति–व्यवस्था अपनी तरह की एक विचित्र एवं रोचक संस्था है। धर्म की सीमाओं के बाहर हिन्दुओं का जो कुछ भी अपनापन है उसकी अनोखी अभिव्यक्ति जाति व्यवस्था है। वास्तव में यह संस्था हिन्दू जीवन पद्धति को दूसरों से इतना पृथक कर देती हैं कि सैंकड़ों भारतीय एवं विदेशी विद्वानों का ध्यान इस संस्था की ओर आकर्षित हुआ हैं। "जाति व्यवस्था मुख्यतः जन्म के आधार पर सामाजिक संस्तरण और खण्ड विभाजन की एक गतिशील व्यवस्था है जो खाने–पीने, विवाह, व्यवसाय और सामाजिक सहवासों के सम्बन्ध में अनेक या कुछ प्रतिबन्धों को अपने सदस्यों पर लागू करती हैं।"[2]

जाति व्यवस्था भारतीय समाज पर एक कलंक है जो नागरिकों में असमानता एवं भेदभाव पैदा करती है। निम्न एवं अस्पृश्य जातियों के लोग भय की स्थिति में जी रहे हैं। इन जातियों के सदस्य यदि सामाजिक अयोग्यताओं, धार्मिक भेदभाव और राजनीतिक दमन के विरूद्ध आवाज उठाते हैं तो उसे सामाजिक व्यवस्था का उल्लंघन समझा जाता है।[3]

अस्पृश्य जाति के लोगों को निम्न स्तर का नागरिक माना जाता है देश के अनेक भागों में मानव से कम तथा जानवरों से भी बदतर समझा जाता है। आज धर्म निरपेक्षतावाद, लोकतंत्र और लोगों में समाजवादी एवं वैज्ञानिक विचारों के प्रसारित होने के बावजूद भी जातिवाद एक जीवन–पद्धति बना हुआ है।

प्रसिद्ध समाजशास्त्री एम0एन0 श्रीनिवास ने स्पष्ट किया है–शिक्षित भारतीयों में यह सुविस्तृत धारणा है कि जाति अन्तिम सांस ले रही है और नगरों में रहने वाले उच्च शिक्षा प्राप्त उच्च वर्गों के लोग इसके बन्धन से मुक्त हैं।

---

[1] सशंस–2001
[2] दलित लिवरेशन टुडे (मासिक) लखनऊ, दिसम्बर 1995, पृ0सं0 15
[3] जाटव, डी0आर0, भारतीय समाज एवं संविधान (1992), समता साहित्य सदन जयपुर पृ0सं0 45

परन्तु यह दोनों धारणाएं गलत है। ये लोग भोजन सम्बन्धी प्रतिबन्धों का चाहे अनुसरण न करते हों, जाति एवं धर्म के बाहर विवाह करते हों परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे जाति बन्धनों से पूर्णतः मुक्त हैं।[1]

अनुसूचित जातियाँ

'शिडयूल्ड कास्ट' शब्द का हिन्दी रूपान्तर अनुसूचित जाति है। अनुसूचित जाति एक संवैधानिक शब्द है, क्योंकि संविधान में इसे पूर्ण वैधानिकता प्रदान की गई है। संविधान के अनुच्छेद 341 (1) में कहा गया है कि "राष्ट्रपति किसी राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में और जहां वह राज्य है वहां उसके राज्यपाल से परामर्श करने के पश्चात् लोक अधिसूचना द्वारा, उन जातियों, मूलवंशों या जन–जातियों अथवा जातियों, मूलवंशों या जन जातियों के भागों या उनमें के यूथों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा, जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए यथास्थिति, उस राज्य या संघ राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में 'दलित' समझा जायेगा।"

इसी प्रकार अनुच्छेद 341 (2) में स्पष्ट किया गया है कि संसद, विधि द्वारा किसी जाति, मूलवंश या जनजाति को अथवा उसके किसी भाग को खण्ड (1) के अधीन निकाली गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अनुसूचित जातियों की सूची में साम्मिलित कर सकेगी या उसमें से अपवर्जित कर सकेगी।

अनुच्छेद 366 (24) में अनुसूचित जातियों के सम्बन्ध में कहा है कि "दलितों से ऐसी जातियाँ, मूलवंश या जनजातियाँ अथवा ऐसी जातियों, मूलवंशों या जनजातियों के भाग या उनमें के यूथ अभिप्रेत हैं जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिए अनुच्छेद 341 के अधीन अनुसूचित जातियां समझा है।"[2]

---

[1] श्री निवास, एम0एन, पूर्वोक्त, पृ0सं0 75
[2] भारत का संविधान, इलाहाबाद, सेन्ट्रल ला पब्लिकेशन्स (1994), पृ0सं0 99

अनुसूचित जातियाँ हिन्दू समाज व्यवस्था की अस्पृश्य जातियाँ हैं। निर्धारित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था से पृथक, ऐसे लोगों का समुदाय, जो रंग के काले तथा अस्वच्छ पेशों से सम्बद्ध थे, अस्पृश्य कहे जाते थे।[1]

प्राचीन धर्म ग्रन्थों में इन्हें चाण्डाल, अन्त्यज, श्वपज, पतित परियाह, अतिशूद्र, अवर्ण आदि नामों से सम्बोधित किया गया है। इन जातियों को सबसे निम्नस्तर का व्यवसाय प्रदान किया गया तथा समाज में इनकी निम्नतम प्रस्थिति थी। चारों वर्णों से पृथक होने के कारण इन्हें पंचम वर्ण (पंचमास) या 'फिफ्थकास्ट' के नाम से सम्बोधित किया गया।[2]

19वीं शताब्दी में इन अस्पृश्य जातियों के लिए एक प्रसिद्ध गुजराती सन्त नरसिंह मेहता ने 'हरिजन' (ईश्वर की सन्तान) नाम से सम्बोधित किया, जिसे आगे चलकर बीसवीं शताब्दी मं महात्मा गांधी ने लोक प्रिय बनाया।[3]

1931में असम के जनगणना अधीक्षक ने इन जातियों के लिए 'एक्सटीरियर कास्टस' शब्द का प्रयोग किया। आगे चलकर हट्टन ने इस शब्द को अपने अध्ययन में प्रयोग किया। हट्टन ने अपने अध्ययन कास्ट इन इण्डिया (1946) में अस्पृश्य जातियों को बाहरी जातियों के नाम से सम्बोधित किया।

ब्रिटिश शासन के दौरान जब 1901 में जनगणना की गई तो अस्पृश्य जातियो कों हिन्दुओं से पृथक वर्गीकृत किया गया। इसके बाद 1911 में एक कमेटी उन जातियों की जांच पड़ताल के लिए नियुक्त की गई जो कि सामाजिक–धार्मिक दृष्टि से निम्न स्तर पर थीं।[4]

---

1 पेरुमल, निल्कान, द अन्टचेबल्स (1937), आर0जे0 राम एण्ड कम्पनी मद्रास पृ0सं0–45
2 रेवन्कर, रतन, द इण्डियन कांस्टीट्यूशनः एकेस स्टडी ऑफ बैकवर्ड क्लासेज (1971) डिकिन्सन यूनीवर्सिटी प्रेस, पृ0सं0 112
3 मूर्थी, बी0एस0, डिप्रेस्ट एण्ड ओप्रेस्ड (1971), एस चांद एण्ड कम्पनी न्यू देहली, पृसं0 1
4 विद्यार्थी, एल0पी0, तथा मिश्रा, एन, हरिजन टुडे, नई दिल्ली, पृ0सं0–3

1921 में की गई जनगणना में अस्पृश्य जातियों के लिए अंग्रेजों ने सरकारी तौर पर 'डिप्रेस्ड क्लासेज' नाम का प्रयोग किया। परन्तु उन्होंने इस शब्द का प्रयोग करने में निहित परिभाषा का उल्लेख नहीं किया।[1]

डा0 अम्बेडकर ने भी अस्पृश्य जातियों के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा दिये गये नाम 'डिप्रेस्ड क्लासेज' का ही प्रयोग किया। 1930 में साइमन कमीशन ने प्रस्तुत प्रतिवेदन में इनके लिए नया नाम 'शिड्यूल्डकास्ट' प्रदान किया जिसे 1931 की जनगणना में पूर्णतः परिभाषित एवं संशोधित रूप में प्रयोग किया गया।

1935 के भारतीय शासन अधिनियम की पांचवीं अनुसूची की धारा 19 में इस शब्द का अधिकारिक रूप में प्रयोग किया गया। यहां अनुसूचित जातियों से अभिप्राय उन जातियों से था, जिनको विशेष सुविधाएं देने के उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार ने एक अनुसूची (शिड्यूल) में सम्मिलित किया था। आज भी इस सूची में शामिल जातियों को दलितों के नाम से सम्बोधित किया जाता है तथा यह शब्द संवैधानिक बन गया है।

अनुसूचित जातियों (दलितों) की समस्याएं

संवैधानिक दृष्टि से जिन जातियों को अनुसूचित जातियों में साम्मिलित किया गया है उसका मुख्य उद्देश्य विशेष सुविधाओं के द्वारा इन जातियों को दूसरी जातियों के बराबर लाना है। वास्तव में जनसंख्या के एक महत्वपूर्ण भाग का प्रतिनिधित्व करने वाली इन जातियों की प्रगति के बिना राष्ट्र की प्रगति संभव नहीं है इसलिए इनकी समस्याओं को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

वर्तमान में अनुसूचित जातियों की निम्नांकित समस्याएं दृष्टव्य हो रही हैं–

---

[1] सिंह, रवि प्रताप, दलित जाति के विधान मण्डलीय अभिजन, (1989), मित्तल पब्लि0 दिल्ली पृ0सं0 15

1. अस्पृश्यता की समस्या

अस्पृश्यता का इतिहास भारतीय जाति व्यवस्था से जुड़ा हुआ है। वैदिक काल में अस्पृश्यता शब्द का प्रयोग तो नहीं किया जाता रहा है परन्तु चाण्डाल, डोम, अन्त्यज, निषाद आदि शब्दों का प्रयोग ऐसे व्यक्तियों के लिए किया जाता रहा है जिनका स्तर लगभग अस्पृश्यों जैसा ही था। उस समय पवित्रता–अपवित्रता सम्बन्धी विचारों को महत्व दिया जाता था। इन लोगों को दूध से बनी वस्तुओं एवं यज्ञ में काम आने वाली चीजों को छूने की आज्ञा नहीं थी परन्तु वैदिक तथा उत्तर वैदिक काल में इन लोगों के प्रति भेदभाव एवं घृणा की भावना अधिक कटु नहीं थी।

जी0एस0 घुरिये ने स्पष्ट किया है कि "यद्यपि वैदिक काल में यज्ञ, धर्म आदि से सम्बन्धित शुद्धता की धारणा अत्यन्त प्रखर थी फिर भी अस्पृश्यता का जो रूप वर्तमान में है वैसा उस युग में नहीं था।

महर्षि मनु के अनुसार चाण्डालों को गाँव से बाहर रहना चाहिए दिन में गाँव में नहीं आना चाहिए और अपने बर्तनों के प्रयोग को केवल अपने तक ही सीमित रखना चाहिए। इस काल में इन्हें अधम कार्य ही करने दिया जाता था।

भारत में मुस्लिम राज्य की स्थापना के पश्चात् अस्पृश्यों की स्थिति में और अधिक गिरावट आ गई और इन्हें अनेक प्रकार की निर्योग्यताओं के कारण एकान्त स्थान पर रहने के लिए बाध्य किया गया।

अंग्रेजी शासन काल में समाज सुधारकों एवं शासकीय प्रयासों के कारण अस्पृश्यों की स्थिति में सुधार हुआ तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात संवैधानिक प्रावधानों द्वारा अस्पृश्यता को पूरी तरह समाप्त कर दिया गया। अस्पृश्य जातियों के नाम से सम्बन्ध में प्रारम्भ से ही काफी विवाद रहा है। वैदिक एवं उत्तर

वैदिक काल में इन्हें चाण्डाल, डोम, अन्त्यज आदि नामों से पुकारा जाता था, जबकि अंग्रेजी शासन काल में इन्हें दलित वर्ग कहा जाने लगा।

वर्ष 1931 की जनगणना में दलित वर्ग के स्थान पर बाहरी जाति शब्द का प्रयोग किया गया। ब्रिटिश प्रधानमंत्री रेम्जे मैक्डोनाल्ड ने इसी वर्ष से इन्हें पृथक निर्वाचन का अधिकार दे दिया था, किन्तु गांधी जी ने इसका तीव्र विरोध किया और कहा कि दलित वर्ग हिन्दुओं से पृथक नहीं हैं बल्कि हिन्दुओं का ही एक अंग है इसलिए इन्हें पृथक निर्वाचन का अधिकार देना उचित नहीं है। इसके विरोध में 20 सितम्बर 1932 को गांधी जी ने आमरण अनशन शुरू कर दिया किन्तु डा0 सप्रू एवं डा0 जयकर के प्रयासों से गांधी जी एवं डा0 अम्बेडकर में 'पूना पैक्ट' के नाम से जानी जाने वाली सन्धि हुई जिसके अनुसार दलित वर्ग को हिन्दुओं का ही अंग स्वीकार किया गया और उनको कुछ विशेष अधिकार प्रदान किए गये।

वर्ष 1935 के विधान में इन जातियों को विशेष सुविधाएं देने के लिए एक अनुसूची तैयार की गई तथा जिन जातियों को इन अनुसूची के अन्तर्गत रखा गया उन्हें वैधानिक दृष्टि से अनुसूचित जातियां कहा जाने लगा। वर्तमान में शासकीय शब्दावली में इन्हें अनुसूचित जातियों के नाम से सम्बोधित किया जाता है। हरिजन शब्द को अनुसूचित जातियों के अन्तर्गत आने वाले लोग पसन्द नहीं करते तथा इसे अपमानजनक समझते हैं।

अस्पृश्यता के नाम पर हजारों वर्षों तक निम्न जातियों को अनेकों मानवीय अधिकारों से वंचित रखा गया तथा उन पर अनेक सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक नियोग्यताएं लगा दी गयी। गांधी जी का कथन था कि "अस्पृश्यता जिस रूप में आज हिन्दू धर्म में प्रचलित है, यह भगवान तथा मनुष्यों दोनों के विरूद्ध है अतः अस्पृश्यता एक विष की भांति है जो हिन्दू धर्म को खाए

जा रही है मेरे विचार में हिन्दू शास्त्रों में सामूहिक दृष्टि से इसकी कहीं भी स्वीकृति नहीं है।"

डी0एन0 मजूमदार के अनुसार "अस्पृश्य जातियाँ वे समूह हैं जो अनेक सामाजिक व राजनीतिक निर्योग्यताओं का शिकार हैं, इनमें से अनेक निर्योग्यताएं उच्च जातियों द्वारा परम्परागत तौर पर निर्धारित और सामाजिक दृष्टि से लागू की गई हैं।"[1]

अस्पृश्यों की निर्योग्यताए

निर्योग्यताएं परम्परागत रूप से निर्धारित होती हैं और सामाजिक दृष्टि से लागू की जाती हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात सरकार ने वैधानिक रूप से अश्पृश्यता तथा अस्पृश्यों की सभी निर्योग्यताओं को समाप्त कर दिया है फलस्वरूप इसमें कुछ सफलता प्राप्त हुई है।

के0एम0 पणिक्कर के मतानुसार "यह मान लेना सर्वथा अनुचित होगा कि अस्पृश्यता समाप्त हो जाने की घोषणा कर देने से ही अस्पृश्यों की सामाजिक निर्योग्यताएं समाप्त हो गई है।"[2]

यह कथन काफी सीमा तक ठीक भी है क्योंकि व्यावहारिक जीवन में ये निर्योग्यताएं आज भी बहुतायत रूप में ग्रामीण समाजों में देखी जा सकती है ग्रामीण समाज परम्परावादी हैं जहां अस्पृश्यों से सम्बन्धित निर्योग्यताएं आज भी विद्यमान है। ग्रामीण जीवन तक कुछ सीमा तक नगरीय जीवन में निम्नांकित धार्मिक निर्योग्यताओं को देखा जा सकता है–

---

[1] मजूमदार, डी.एन, रेसेज एण्ड कल्चर्स ऑफ इण्डिया, पृ0सं0 326
[2] पणिक्कर, के0एम0, भारतीय समाज और संस्कृति, पृ0सं0 262

(i) धार्मिक निर्योग्यताएं

क्योंकि अस्पृश्यता पवित्रता–अपवित्रता के दृष्टि से अस्पृश्यों की अनेकानेक निर्योग्यताएं रहीं हैं। ये पवित्र स्थानों जैसे मंदिर आदि में प्रवेश नहीं कर सकते थे। वेदों का अध्ययन व मन्त्रोचारण नही कर सकते थे तथा हिन्दू ग्रन्थों के उपदेशों को सुनना इनके लिए पाप समझा जाता था। प्राचीन काल में ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनके अनुसार अगर कोई शूद्र मन्त्रोचारण करता था तो उसकी जीभ काट दी जाती थी।

किन्तु संवैधानिक व्यवस्था हो जाने के पश्चात इन धार्मिक निर्योग्यताओं में कमी आयी है नगरीय समाजों में आज अस्पृश्य मन्दिरों में प्रवेश कर सकते हैं तथा वेदाध्यन एवं मन्त्रोचारण कर सकते हैं। लेकिन ग्रामीण समाजों में आज भी अस्पृश्यों में हीनता का भाव दिखाई देता है ग्रामीण सवर्णों का दबाव सामाजिक रूप में आज भी प्रभावशाली दिखाई देता है जिससे अस्पृश्य सामान्यतः मन्दिरों तथा पवित्र स्थानों मे प्रवेश करने से हिचकते हैं।

(ii) सामाजिक निर्योग्यताएं

सामाजिक रूप से अस्पृश्य जातियों पर अनेकों निर्योग्यताएं थीं। उच्च्य जातियों के लोग इन जातियों के लोगों को घृणा की दृष्टि से देखते थे तथा अपवित्र समझते थे यहां तक की उनकी छाया पड़ने से अपवित्र मान लेते थे तथा पुनः पवित्र होने के लिए विशेष प्रकार के संस्कार करने पड़ते थे।

विद्यालय में शिक्षा प्राप्त करने का कदाचित इनको अधिकार नहीं था, ब्राह्मण इन्हें अपना शिष्य बनाना धर्म विरूद्ध समझते थे परिणामस्वरूप अस्पृश्य लोग प्रायः शतप्रतिशत अशिक्षित होते थे। कहीं–कहीं पर अस्पृश्यों को अपनी इच्छानुसार जेवर आदि पहनने की भी सामाजिक अनुमति नहीं थी। जौनसार बाबर क्षेत्र के लोग स्वर्ण आभूषण नहीं पहन सकते थे उन्हें केवल चाँदी के जेवरों को पहनने की अनुमति थी, साथ ही साथ अस्पृश्य अपनी इच्छानुसार

अपने रहने का स्थान नहीं बना सकते थे प्रायः अस्पृश्यों को ग्राम से बाहर अपने मकान आदि बनाने पड़ते थे, ग्रामीण क्षेत्रों में जातिय नामों पर आधारित अधिवासीय क्षेत्र होते थे नगरीय क्षेत्रों में इनके आवास मलिन बस्तियों के नाम से जाने जाते रहे हैं।

सामाजिक रूप से जुड़ी निर्योग्यताओं में आज कमी आई है कुछ निर्योग्यताएं समाप्त सी होती जा रही हैं वर्तमान में अर्जित प्रस्थिति के फलस्वरूप वर्ग आधारित समाजों का महत्व बढ़ता जा रहा है नगरीय क्षेत्रों में वर्गानुसार सामाजिक महत्व का निर्धारण होता है। ग्रामीण समाजों में जातीय क्रम आज भी विद्यमान है। शैक्षणिक क्षेत्रों में प्रवेश पाने तथा शिक्षा गृहण करने के सभी को समान अवसर उपलब्ध हैं।

अधिवासों से सम्बन्धित निर्योग्यताएं नगरीय समाजों में कुछ मात्रा में तथा ग्रामीण समाजों में बहुतायत रूप में देखी जा सकती है नगरीय समाजों में यदि कोई नौकरी पेशा अस्पृश्य जाति का व्यक्ति उच्च पद पर कार्यरत होता है तो उसे अधिवास, किराये पर मिलने की सम्भावनाएं (अपने से उच्च जाति के मकानों में) रहती है किन्तु सामान्य स्तर के अस्पृश्य व्यक्तियों को उच्च जाति के मकान किराये पर मिलने की संभावनाएं नहीं रहती। यदि कोई अस्पृश्य व्यक्ति अपने लिए अधिवास बनाना चाहता है तो उच्च जाति के लोग सामान्यतः अपने मकानों के पास जमीन नहीं देते क्योंकि प्रायः जमीन पर मालिकाना हक उच्च जातियों के पास होता है। शासकीय अधिवासों में प्रायः इस प्रकार की समस्या देखने को नहीं मिलती।

ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी अस्पृश्य जातियों के मकान, गांव के बाहरी तथा उपेक्षित स्थानों पर बनाए जाते हैं तथा जिन क्षेत्रों में ये अस्पृश्य अधिवासित होते हैं उन्हें उनके जातीय नामों के आधार पर जाना जाता है। बुन्देलखण्ड भू–भाग में अस्पृश्य जाति के लोगों के अधिवासित क्षेत्रों को उनकी जातीय आधार पर

जाना जाता है जैसे चमार जाति के अधिवासित क्षेत्र को चमरौड़ा, कोरी जाति के क्षेत्रों को कोरियान, कुम्हार जाति के क्षेत्रों को कुम्हरौड़ा आदि के नाम से जाना जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी उच्च जाति के पानी भरने के स्थानों पर अस्पृश्य जाति के लोगों को पानी भरने नहीं दिया जाता यदि पानी किसी अस्पृश्य द्वारा भर भी लिया गया तो उच्च जाति के लोग उस स्थान को धोने के बाद ही पानी भरते हैं कभी–कभी अस्पृश्यों पर उच्च जाति के लोगों द्वारा ऐसे कार्य के लिए अवैधानिक रूप से दण्ड दिया जाता है जिसके लिए अस्पृश्य किसी प्रकार की कानूनी कार्यवाही करने का साहस नहीं जुटा पाता है संभवतः ऐसा इसलिए होता है क्योंकि अस्पृश्य आर्थिक तथा शैक्षिणक रूप से उतने समृद्ध नहीं होते हैं जितने कि उच्च जाति के लोग। जो अस्पृश्य इन रूपों में समृद्ध और सजग होते हैं उनके प्रति साधारणतः उच्च जाति के लोग किसी प्रकार के अवैधानिक कार्यों का साहस नहीं कर पाते हैं।

(iii) राजनीतिक निर्योग्यताएं

यद्यपि अस्पृश्यों से जुड़ी कुछ राजनीतिक निर्योग्यताएं रहीं हैं जो स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात समाप्त सी हो गई हैं। नवीन संवैधानिक व्यवस्थाओं के चलते आरक्षण नीति के लागू हो जाने से निर्वाचित तथा मनोनीत एवं चयन के आधार पर स्थानों को भरे जाने की प्रक्रिया में सभी अस्पृश्य जाति के लोगों को भाग लेने के समान अवसर उपलब्ध हुए हैं। अस्पृश्यों की मतदाता संख्या को देखते हुए सभी दलों की दृष्टि इन समूहों को अपने दलों से जोड़ने तथा चुनाव लड़ाने के लिए प्रत्याशी बनाने की चालाकी पूर्ण नीति अपनायी जाती है। अस्पृश्यों में राजनीतिक जागरूकता का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित हो रहा है विभिन्न जातियों के लोग राजनीतिक लाभ की प्राप्ति हेतु एकजुट होकर

समयानुसार उसका प्रदर्शन करते हैं जिससे "जातीयकेन्द्रीयता" की अवधारणा बलवती हो रही हैं। वर्तमान में विभिन्न क्षेत्रों में अस्पृश्यों को महत्वपूर्ण राजनीतिक स्थानों (पदों) पर देखा जा सकता है।

(iv) आर्थिक निर्योग्यताएं

कोई भी समाज, व्यक्ति, समूह या राष्ट्र तब तक उन्नति नहीं कर सकता जब तक कि उसकी आर्थिक स्थिति ठीक नहीं है। अस्पृश्यों के पिछड़े होने का मुख्य कारण उनकी आर्थिक हीनता रही है। पूर्व में प्रत्येक जाति के व्यक्ति को अपने जातिगत, आधार पर परम्परागत रूप से जुड़े व्यवसाय करने की अनुमति थी। अस्पृश्य केवल निम्नतम श्रेणी के व्यवसाय ही कर सकते थे तथा उनको अपनी इच्छानुसार व्यवसाय चुनने की अनुमति नहीं थी। खेती करना उच्च जातियों का ही अधिकार माना जाता रहा है। इसके फलस्वरूप अस्पृश्य लोग अधिकतर भूमिहीन थे। शासकीय क्षेत्रों से जुड़े निम्न श्रेणी के कार्यों के लिए अस्पृश्य जाति के लोगों को रखा जाता है।

नवीन संवैधानिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप सभी जातियों के लोगों को अपनी योग्यता, शिक्षा और गुणों के आधार पर व्यवसाय चयन की स्वतंत्रता है अस्पृश्य आज उच्च पदों पर कार्यरत हैं। वे अपने परम्परागत व्यवसाय से भिन्न अन्य व्यवसायों को चुनने व करने के लिए स्वतंत्र है। जिससे उनकी आर्थिक स्थिति में कमोवेश सुधार हो रहा है। अस्पृश्यों को कृषि कार्य हेतु शासकीय स्तर पर भूमि के पट्टे दिय जा रहे हैं जिससे अस्पृश्य अपने मालिकाना हक वाले भू–भाग पर कृषि कार्य करने लगे हैं। किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी निम्न जाति के सदस्य उच्च जाति के लोगों की कृषि भूमि पर मजदूरी अथवा पटाई के आधार पर कार्य करते हैं जिनसे उनकी आर्थिक प्रगति बाधित हो रही हैं।

2. अत्याचार एवं उत्पीड़न की समस्याएँ

दलितों की दूसरी प्रमुख समस्या अत्याचार और उत्पीड़न की है। अस्पृश्यता के कारण इन्हें जिन सामाजिक–आर्थिक समस्याओं का सामना करना पड़ता था उसके कारण ये दलित अनेक प्रकार के अत्याचारों और उत्पीड़न का शिकार हो गए है। लगभग सभी राज्यों में दलितों पर उत्पीड़न और अत्याचार के समाचार निरन्तर मिलते रहते हैं। इनमें इनकी भूमि को अवैध रूप से छीन लेना, उनसे बेगार लेना तथा बँधुआ मजदूरों के रूप में काम लेना, महिलाओं से दुर्व्यवहार एवं शोषण, हत्याएँ, लूटमार तथा जमीन के खरीदने व बेचने में अनियमितताएँ इत्यादि प्रमुख हैं। इन्हें जिन्दा जला देने की घटनाएँ सुनने में आती हैं। बिहार में बेलची काण्ड इसका एक उदाहरण हैं। इन पर पुलिस द्वारा अत्याचार की अनेक घटनाएँ भी सामने आईं हैं।

यद्यपि सरकार ने भूमि–हीन दलितों को भूमि का वितरण, न्यूनतम वेतन में वृद्धि, गृहों का आवण्टन, बँधुआ मजदूर प्रथा की समाप्ति जैसे उपायों से उनके उत्पीड़न और इन पर होने वाले अत्याचारों को काफी सीमा तक नियंत्रित करने का प्रयास किया है, फिर भी कुछ प्रभावशाली व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हितों के कारण इनके सामाजिक–आर्थिक सुधार में अनेक बाधाएँ उपस्थित करते रहे हैं। कई राज्यों में तो सरकार द्वारा आवंटित भूमि पर इन लोगों को कब्जा नहीं मिल पाया है। मध्य प्रदेश, बिहार, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र व दिल्ली में ऐसी घटनाओं की सूचना अधिकारियों को भी है।

उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश तथा देहली में दलितों पर विविध प्रकार के अत्याचार एवं उत्पीड़न के समाचार मिलते रहे हैं। इनकी शिकायतों को जो कि अनुसूचित जाति एवं जनजाति के कमिश्नर को प्राप्त होता है, सम्बन्धित सरकारों को प्रेषित कर दिया जाता है। दलितों पर होने वाले अत्याचार एवं उत्पीड़न को रोकने का दायित्व यद्यपि राज्य सरकारों का है फिर भी केन्द्रीय

सरकार कमजोर वर्गों पर अत्याचार रोकने के अनेक उपाय करती है तथा स्थिति के अनुसार कदम उठाती है। बड़े खेद की बात है कि इन पर होने वाले अत्याचारों की ठीक प्रकार से जाँच–पड़ताल भी नहीं हो पाती। उदाहरणार्थ–अनुसूचित जातियों व जनजातियों के कमिश्नर की 24वीं रिपोर्ट (1975–76 एवं 1976–77, भाग–1) के अनुसार 1975 ई0 में 7,781 मामलों में 24.4 प्रतिशत मामलों में जांच–पड़ताल के बाद कोई चार्ज शीट नहीं लगाई गई।

दलितों पर अत्याचार रोकने एवं उत्पीड़न कम करने के लिए राज्य सरकारों को विशेष उपाय करने की जरूरत है तथा पुलिस फोर्स को इसके लिए स्पष्ट निर्देश दिये जाने अनिवार्य है। अगर कानून के रक्षक पुलिस वाले ही इस प्रकार के मामलों में संलग्न होने के दोषी पाये जाते हैं तो उन्हें कठोर दण्ड देने की आवश्यकता है। अत्याचार पीड़ित दलितों को उदार अनुदान देने एवं पुनर्वास की सुविधाएँ भी तुरन्त उपलब्ध की जानी चाहिए।

3. शैक्षणिक समस्याएँ

दलितों को परम्परागत रूप से शिक्षा सुविधाओं से वंचित रखा जाता था तथा व्यावसायिक दृष्टि से इन्हें निम्न व्यवसाय ही करने पड़ते थें। इसका परिणाम यह हुआ कि आज भी दलितों में शिक्षा की दर अन्य लोगों की तुलना में कहीं कम है। अंग्रेजी शासनकाल तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार ने दलितों के शैक्षिक स्तर को ऊँचा करने के लिए अनेक कदम उठाए हैं तथा विविध प्रकार की सुविधाएं भी प्रदान की हैं। वजीफे, मुफ्त वर्दी, पुस्तकें व कापियाँ, छात्रावास सुविधाएँ एवं शिक्षा संस्थाओं व प्रशिक्षण संस्थाओं में इनके लिए आरक्षित स्थानों के प्रावधान के परिणामस्वरूप यद्यपि इनमें शिक्षा की वृद्धि हुई हैं, तथापि इस दिशा में अभी काफी कार्य करना शेष है। वास्तव में, इन लोगों को मनोवैज्ञानिक रूप से शिक्षा प्राप्ति के लिए तैयार किया जाना आवश्यक है। साथ ही उन्हें शिक्षा इस

प्रकार की दी जानी चाहिए कि वे अपने रोजगार स्वयं स्थापित कर सकें अथवा प्रशिक्षण प्राप्त कर अपना कोई कार्य कर सकें। अनुसूचित जातियों में लड़कियों की शिक्षा की ओर ध्यान दिए जाने की भी विशेष आवश्यकता है।

यद्यपि सरकार ने दलितों को अनेक प्रकार की शिक्षा सुविधाएँ प्रदान की हैं, तथापि इनमें शैक्षिक प्रगति सन्तोषजनक नहीं कही जा सकती है। और अधिकांशतः निरक्षर है। इनकी स्थिति का अन्दाजा तो कोहन द्वारा वर्ष 1952–53 में पूर्वी उत्तर प्रदेश में किए गए एक क्षेत्रीय सर्वेक्षण से होता है। उन्होंने लिखा है कि, स्कूल में दो अनुसूचित जाति के शिक्षक थे, उन्हें उच्च जातियों जैसे शिक्षकों के बराबर सम्मान नहीं दिया जाता था। यही नहीं, यदि कोई उच्च जाति का शिक्षक किसी ठाकुर के घर बैठ जाता है तो उसके बैठने के लिए खाट या कुर्सी दी जाती है और यदि अनुसूचित जाति का शिक्षक बैठने जाता है तो उन्हें कोई स्टूल या उलटी टोकरी बैठने के लिए दी जाती हैं। फिर भी गनीमत है, क्योंकि अशिक्षित अनुसूचित जाति के सदस्य को तो जमीन पर ही बैठने को कहा जाता है।

आज भी दलितों का बहुत कम प्रतिशत साक्षर है क्योंकि पढ़ाई की ओर वे ज्यादा उन्मुख नहीं हैं। शासन स्तर पर इतनी सुविधाएं होते हुए भी ऐसा होना आश्चर्यजनक लगता है। परन्तु इनकी परम्परागत स्थिति और पेशों को देखते हुए यह कुछ असाधारण–नहीं हैं। ये अत्यधिक निर्धन लोग हैं यहां तनिक बड़ा होता हुआ हर बच्चा रोजी कमाने के काम पर लगा दिया जाता है। वह परिवार की आमदनी का एक स्रोत बन जाता है। ऐसे में माता–पिता का उसे स्कूल भेजना विलासिता बन जाता है, जिसकी कीमत वे वहन नहीं कर सकते। विशिष्ट व्यावसायिक संस्थानों में यह बात और भी स्पष्ट दिखाई देती है। दलितों में शिक्षा की समस्या भी गम्भीरता इस तथ्य से पता चलती है कि सामाजिक दृष्टि से इनमें शिक्षा सम्बन्धी अनेक असमानताएँ मौजूद हैं। जैसे–(क) पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियों में शिक्षा प्रायः नगण्य है; (ख) विभिन्न प्रदेशों में दलितों की प्रगति में असमानताएं पाई जाती है; और (ग) इसी प्रकार दलितों के बीच साक्षरता की मात्रा भी भिन्न है।

इसलिए इनमें शिक्षा के प्रसार की कोई भी योजना बनाते समय इन असमानताओं को ध्यान में रखा जाएगा तभी ऐसे समूहों का निर्माण हो सकेगा जिन्हें लक्ष्य समूह कहा जा सके और उन सुविधाओं का भी सही अनुमान लगाया जा सकेगा जिनकी उन्हें जरूरत है।

दलितों की शैक्षिक समस्याएँ अनेक आयाम वाली हैं। उन सभी को मोटे तौर पर दो स्रोतों से जनित कहा जा सकता है–एक, शिक्षा में उनके नामांकन के लिए पर्याप्त प्रेरकों और परिस्थितियों का न होना, और दूसरा, परम्परागत दृष्टि से उनकी सामजिक स्थिति का बहुत निम्न एवं अपवित्र होना। जब तक इन दोनों स्रोतों को काटने के प्रयास नहीं किए जायेंगे, तब तक दलितों में शिक्षा की समस्याएँ बनी ही रहेंगी।

दलितों से सम्बन्धित परम्परागत पेशो का आधुनिकीकरण एवं यन्त्रीकरण किया जाना चाहिए ताकि उनकी पारिवारिक पृष्ठभूमि से जुड़े अपवित्रता के विचार दूर हो सकें और परिवार की आर्थिक स्थिति भी अच्छी हो सके। उनके लिए शिक्षा में पर्याप्त सुविधाओं के साथ–साथ हॉस्टल की व्यवस्था एवं विशेष कोचिंग के लिए अलग से संस्थान भी होने चाहिए। नौकरी में प्रवेश के लिए जातियों के बीच योग्यता के स्तर में अन्तराल कम किया जाना चाहिए। प्रमोशन के नियम सभी पर एक जैसे लागू हों और योग्यता व सेवा ही उसका आधार बनें। जहां तक उन्हें सामाजिक स्वीकृति दिए जाने का प्रश्न है, इसमें उच्च जातियों को ही पहल करनी होगी ताकि सैकड़ों वर्षों से चला आ रहा दलितों के साथ अन्यथा का यह कलंक सदा के लिए धुल सके।

4. स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याएँ

समाज के दलित वर्गों की समस्याओं का सम्बन्ध स्वयं उनके एवं उनके बच्चां के दुर्बल स्वास्थ्य से है। दलित वर्ग' के परिवार प्रायः अल्प पोषण या

कुपोषण का शिकार हो जाते हैं। वे प्रायः गन्दगी के कारण तथा अन्य आवश्यक सुविधाओं के अभाव में विभिन्न संक्रामक रोगों के शिकार हो जाते हैं। सांस्कृतिक सम्पर्कों ने कुछ नई बीमारियों को आदिवासी क्षेत्रों में फैलाया है जिनसे लड़ने के लिए उनकी परम्परागत जादू–टोने और जड़ी बूटियों पर आधारित चिकित्सा प्रणाली पर्याप्त नहीं है। उदाहरणार्थ–यौन रोग, टी0बी0 आदि को वे नहीं समझ पा रहे हैं। आधुनिक चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएँ उन्हें या तो उपलब्ध हैं ही नहीं, और अगर हैं भी तो बड़ी दूर–दूर बिखरी हुई और नहीं के बराबर है।

स्वास्थ्य–मानव की प्राथमिक आवश्यकता है। इसलिए यह जरूरी है कि उनकी परम्परागत चिकित्सा प्रणाली का वैज्ञानिक अध्ययन किया जाए और जो जादू–टोने या जड़ी–बूटियाँ उपयोगी सिद्ध हो उन्हें चिकित्सा प्रणाली में सम्मिलित कर लिया जाए। साथ ही, कुछ प्राथमिक उपचार जैसे तरीकों का दलित जनजातियों के युवाओं को प्रशिक्षण दिया जाए और उन्हें चिकित्सा प्रणाली का एक अंग बनाया जाए। इस दिशा में ईसाई मिशनरियों के कार्य की प्रशंसा की जानी चाहिए।

21 सूत्रीय दलित एजेण्डा अथवा भोपाल घोषणा पत्र

12–13 जनवरी, 2002 को मध्य प्रदेश के भोपाल नगर में दलित बुद्धिजीवियों का एक महासम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें 21 सूत्रीय दलित एजेण्डे पर मोहर लगाई है। इस एजेण्डे को "भोपाल घोषणा पत्र" भी कहा जाता है। यह 21 सूत्रीय एजेण्डा निम्न प्रकार है–

1. समाजिक एवं आर्थिक खुशहाली के लिए प्रत्येक दलित परिवार के पास पर्याप्त खेती योग्य भूमि होनी चाहिए। सरकार को बची भूमि, सरकारी राजस्व भूमि और मन्दिरां की भूमि का बंटवारा निर्धारित समयावधि के बीच निपटा लेना चाहिए। यदि जरूरत महसूस हो तो सरकार कृषि योग्य जमीन खरीद कर दलितों में बांट दें।

2. ग्रामीण एवं नगरीय सार्वजनिक सम्पत्ति को दलितों द्वारा उपयोग करने सम्बन्धी कानून बनाए जाएँ और उन्हें कड़ाई से लागू किया जाए। दलितों को कानूनी न्याय दिलाने के लिए मुकदमों को लम्बा न खींचा जाए, उसके लिए कानून में संशोधन किया जाए।

3. दलित खेतीहर मजदूरों को गुजारे योग्य मजदूरी मिले, मजदूरी–भुगतान में स्त्री पुरूष समानता, काम की सुरक्षा और कार्य–क्षेत्र में बेहतर माहौल सम्बन्धी कानून बनाए और लागू किए जाएँ। कानून का सम्मान न करने वालों के विरूद्ध दण्डात्मक कार्यवाही हो।

4. राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर विधायी समितियाँ बनाई जायं ताकि दलितों की जमीन पर गैर–दलितों के कब्जें की पहचान की जा सके। दलितों की जमीन पर कब्जा किए गैर–दलितों से मुआवजा वसूला जाए, जमीन के असली हकदारों की पहचान हो और उनके नाम की जमीन उन्हें वापस की जाए तथा अदालतों द्वारा गैर–कानूनी कब्जा करने वालों को दण्डित किया जाए।

5. जिन आदिवासियों की जमीनें छीनी जा चुकी हैं, उन्हें उनकी जमीन वापस दिलवाई जाए। आदिवासियों को वन, वन–उत्पादों तथा वन–संसाधनों के उपयोग का अधिकार प्राप्त हो। उनकी जमीन पर बाँध बनने या कारखाने लगने की स्थिति में विस्थापितों को उसमें शेयर धारक का अधिकार मिले तथा पुनर्वास योजनाएं शुरू की जाएँ।

6. पूँजी का लोकतन्त्रीकरण करके दलितों व आदिवासियों को आनुपातिक आधार पर पूँजी में हिस्सेदारी तथा बाजार–अर्थव्यवस्था में उनकी निवेश सम्बन्धी भागीदारी हो। इनके लिए पर्याप्त संसाधन उपलब्ध कराने हेतु बजट में प्रावधान हो। ऐसी अर्थव्यवस्था में भागीदारी के लिए उनकी क्षमताओं और कुशलताओं में निखार लाया जाए।

7. बँधुआ मजदूर प्रणाली (उन्मूलन) अधिनियम, 1976 को कड़ाई से लागू किया जाए। दलितों के बीच बाल मजदूरी को तत्काल खत्म किया जाए। इसके लिए सम्बन्धित कानूनों में जरूरत के मुताबिक संशोधन किए जाएँ।

8. संविधान के अनुच्छेद–21 में संशोधन किया जाये ताकि नागरिकों, खास तौर से अनुसूचित जाति–जनजाति, को स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सेवा, आवास, कपड़ा, सामाजिक सुरक्षा आदि बुनियादी सेवाएँ हासिल करने का अधिकार हो। कम आमदनी वाले दलितों को गुजारे लायक मजदूरी, पाँच एकड़ कृषि योग्य भूमि या रोजगार प्राप्त करने का अधिकार मिलें।

9. दलितों के लिए निःशुल्क व अनिवार्य शिक्षा व्यवस्था तत्काल लागू हो। दलित क्षेत्रों के स्कूलों में बेहतर सुविधाएँ हों और व्यावसयिक एवं तकनीकी शिक्षा के जरिए दलितों को बाजारोंन्मुखी शिक्षा दी जाए। दलित बच्चों के लिए छात्रवृत्तियाँ तथा निरक्षरों की संख्या के अनुपात को देखते हुए धनराशि आवंटित की जाएं।

10. सरकारी एवं निजी विद्यालयों, तकनीकी व्यावसायिक संस्थानों में दलित बच्चों के प्रवेश हेतु आरक्षण लागू किया जाए। सरकारी खर्चे पर कम आमदनी वाले परिवारों के बच्चों को भी अच्छी शिक्षा प्रदान की जाए। अंग्रेजी माध्यम वाले सभी स्कूलों में दलितों के बच्चों को दाखिलें में पर्याप्त प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाए।

11. दलित महिलाओं को विशेष महिला श्रेणी में शामिल किया जाए। इसके मुताबिक जनगणना रिपोर्ट, क्रियान्वयन रिपोर्ट और विकास रिपोर्ट में उनके लिए अलग से आँकड़े हों। इन्हें विकास योजनाओं द्वारा मुख्य धारा से जोड़ने के उपाय किए जाएँ। राष्ट्रीय एवं राज्य महिला आयोगों को निर्देश दिया जाए कि वे इस श्रेणी की महिलाओं की स्थिति का आकलन अपनी वार्षिक रिपोर्ट में प्रस्तुत करें।

12. अनुसूचित जाति–जनजाति अत्याचार (निरोधक) अधिनियम, 1989 एवं नियम, 1995 को कड़ाई से लागू किया जाए। जातीय हिंसा फैलाने वाले दबंग

लोगों और इनके साथ नापाक रिश्ता रखने वाले पुलिस अधिकारियों पर मुकदमें चलाए जाएँ। दलितों पर जुल्म ढाने के मामलों में दोषियों को सामूहिक दण्ड जैसी व्यवस्था की जाए जिससे अत्याचारी कानून को चकमा न दे पाएँ।

13. अकादमिक, स्वायत्तशासी संस्थानों से लेकर विश्वविद्यालयों और सार्वजनिक प्रतिष्ठानों में दलितों का उचित प्रतिनिधित्व सुनिश्चित किया जाए। इस नियम का जो संस्थाएँ पालन न करें उनकी मान्यता समाप्त कर दी जाएं और उन्हें मिलने वाले अनुदान को भी बन्द कर दिया जाए। निजी उद्योगों या व्यावसायिक इकाइयों में भी इसी तरह की व्यवस्था तत्काल लागू की जाए।

14. राष्ट्रीय एवं सभी राज्यों के बजट में दलितों की आबादी के अनुसार आवंटित राशि तय की जाए। इस राशि का अन्यत्र दुरुपयोग करने वालों के विरूद्ध कार्यवाही की जाए।

15. सभी सरकारी एवं निजी व्यावसायिक संगठनों को सामाजिक रूप से गैर लाभ में चल रहे व्यापारियों के पक्ष में सामग्री आपूर्ति करनी चाहिए। यही व्यवस्था डीलरशिप में भी अनिवार्य बना दी जाए।

16. दलितों की सुरक्षा राज्य का ही एकमात्र दायित्व होना चाहिए। जातिवादी संघर्ष से जूझते क्षेत्रों की पहचान कर वहाँ सशस्त्र बल तैनात किए जाएँ। आत्मरक्षा के मद्देनजर दलितों को हथियारों के लाइसेंस प्रदान किए जाएँ। इतना ही नहीं, दलित महिलाओं को हथियार चलाने का विशेष प्रशिक्षण दिया जाए।

17. हाथ से मैला साफ कराने जैसी अपमानजनक व्यवस्था तत्काल समाप्त कर दी जाए। इस पेशे में शामिल दलितों के लिए पुनर्वास कार्यक्रम और वैकल्पिक रोजगार उपलब्ध कराए जाएँ।

18. विधायी व्यवस्था के तहत संसद व राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जाति–जनजाति आयोग और सफाई कर्मचारियों से जुड़ी वार्षिक रिपोर्ट पर सालाना

बहस कराई जाए और बहस के नतीजों पर तुरन्त कार्यवाही की जए। इस सम्बन्ध में वार्षिक एवं क्रियान्वयन रिपोर्ट को जनता के समक्ष सार्वजनिक किया जाए।

19. कारपोरेट और उद्योग सहित सभी निजी प्रतिष्ठानों में दलितों की कुशलता और क्षमता बढ़ाने के लिए सकारात्मक प्रयास किए जाएँ।

20. न्यायपालिका एवं रक्षा में दलितों के लिए तय आरक्षण नीति का पालन हों। न्यायपालिका में नामांकन प्रणाली खत्म करके नियुक्ति प्रक्रिया को पारदर्शी बनाया जाए।

21. संसद व राज्य विधानसभाओं को पिछले 25 वर्षो के दौरान–आरक्षण की वास्तविक स्थिति सम्बन्धी वार्षिक रिपोर्ट चर्चा के लिए उपलब्ध कराई जाए। दलितों के खाली पड़े आरक्षित पदों को तत्काल भरा जाए और उन पदों पर सिर्फ दलित उम्मीदवार ही नियुक्त किए जाएँ।

****

अध्याय—4

बुन्देलखण्ड में दलितों की शैक्षणिक स्थिति

- भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक परिदृश्य
- स्वतन्त्र भारत में शिक्षा
- शिक्षा का उत्तरदायित्व
- भारतीय संविधान तथा शिक्षा
- राज्य के नीति निर्देशक तत्व
- शिक्षा और केन्द्र सरकार
- स्वतन्त्र भारत में केन्द्र में शिक्षा का प्रशासन
- बुन्देलखण्ड क्षेत्र में दलितों की शैक्षणिक स्थिति

बुन्देलखण्ड में दलितों की शैक्षणिक स्थिति

भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक परिदृश्य

पूर्व अध्याय में दलित समाज के प्राथमिक परिचय उसकी समस्याओं एवं निर्योग्ताओं का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में बुन्देलखण्ड क्षेत्र में दलितों की शैक्षणिक स्थिति का उल्लेख किया गया है।

सामाजिक स्थितियों से शिक्षा बहुत गहरे स्तर पर जुड़ी होती है। सामाजिक रूपांतरण में इसकी केन्द्रीय भूमिका को स्वीकार किया गया है। विकास प्रक्रिया से इसका घनिष्ठ संबंध है और परम्परा के आधुनिकीकरण का इसको जरूरी उपकरण बताया गया है।

शिक्षा के विषय में उपर्युक्त दृष्टिकोण को मद्देनजर रखते हुए भारत में शैक्षिक विकास के सार्थक विहंगावलोकन के लिए निम्नांकित बातों पर क्रमबद्ध रूप में विचार करना जरूरी है :

1. विरासत में प्राप्त शिक्षा के औपनिवेशिक ढांचे की विशेषताओं को पहचान;
2. विरासत में मिले इस शैक्षिक ढांचे में स्वतंत्रता मिलने के बाद हुए रूपांतरण का आलोचनात्मक मूल्यांकन करना;
3. वांछित दिशा को ध्यान में रखकर आगे बढ़ने के लिए भविष्य की दिशा पर विचार करना;
4. सामाजिक–आर्थिक प्रणाली की उपप्रणाली के रूप में शिक्षा का मूल्यांकन करना।

भारत में परंपरागत शिक्षा व्यवस्था का एक लंबा इतिहास रहा है लेकिन औपनिवेशिक शिक्षा प्रणाली परंपरागत शिक्षा व्यवस्था का कोई आधुनिकीकृत

रूपांतरण नहीं थी। शैक्षिक परिदृश्य पर इसका आविर्भाव ऐतिहासिक रूप से विकसित भारतीय ढांचे के बाहर और इसके प्रभार से मुक्त रह कर हुआ था। जहां एक तरफ हजारों साल के बौद्धिक अनुभव को जड़ बना दिया गया तथा इस प्रक्रिया में वह निष्प्राण, क्षीण और रूढ़िवादी हो गया, वहीं दूसरी तरफ इस नष्ट प्रायः परंपरा की रिसती हुई सतह पर सात समुंदर पार से आयातित आधारहीन आधुनिकता की एक पतली तह चढ़ा दी गई। इस तरह औपनिवेशिक भारत की खड़िया में जंगम परंपरा और सारहीन आधुनिकता का घालमेल तैयार किया गया।

इस संदर्भ में पहली बात यह है कि परिणाम की दृष्टि से यह अवस्था बहुत संकुचित थी और इस उपमहाद्वीप में रहने वाली करोड़ों जनता का बहुत छोटा–सा हिस्सा इसकी प्रभाव परिधि में था। जिस देश ने सबसे पहले शून्य की अवधारणा और दशमलव प्रणाली का विकास किया था, उसी देश में साक्षरता का स्तर दुखद रूप से कम था। स्वाधीनता के ठीक पहले प्रति एक लाख जनसंख्या पर नामांकन या दाखिले की दर आज के स्विटजरलैंड और सोमालिया की दरों के लगभग बराबर और लिसोथो और जांबिया की दरों से कम था।

दूसरा तथ्य है औपनिवेशिक भारत में शिक्षा सामाजिक–आर्थिक विकास का साधन बनने की जगह विदेशी शासन की जरूरतों को पूरा करती थी। औपनिवेशिक प्रशासन के कार्यकलाप के परिणामस्वरूप प्रति हेक्टेयर और साथ ही प्रतिव्यक्ति कृषि उत्पादकता तथा श्रमशक्ति में द्वितीयक क्षेत्र का भाग कम होते जाने के कारण उत्पादकता के लिए निवेश के रूप में और प्रौद्योगिक विकास के लिए वैज्ञानिक प्रौद्योगिक आधार तथा प्रशिक्षित श्रमशक्ति जुटाने की दृष्टि से शिक्षा आवश्यक नहीं रह गई थी। इसके बजाए इससे आशा की जाती थी कि यह शासनतंत्र के लिए शिक्षित पुर्जे तैयार करेगी। हजारों वर्षों के दौरान

शिक्षा और काम में जो खाई पैदा हो गई थी, उसे पश्चिमी देशों में औद्योगिक क्रान्ति के जरिये पाटा जा चुका था। लेकिन तीसरी दुनिया के देशों में ऐसी कोई क्रांति होने ही नहीं दी गई इसका नतीजा यह हुआ कि शिक्षा और काम के जो सम्बन्ध प्राचीन और मध्यकालीन समाज में पहले से ही कमजोर चले आ रहे थे, औपनिवेशिक युग में आकर और भी क्षीण हो गए।

तीसरा तथ्य है कि उपनिवेशकालीन शिक्षा व्यवस्था बहुस्तरीय और पिरामिडाकार थी और इसका आधार बहुत संकीर्ण था। प्राथमिक से माध्यमिक, माध्यमिक से उच्चतर माध्यमिक, उच्चतर माध्यमिक से स्नातक (तृतीयक स्तर) और स्नातक से स्नातकोत्तर (उच्च तृतीयक) स्तर तक पहुचने की दर बहुत कम थी। एक उदाहरण से इस बात को समझा जा सकता है। स्नातकोत्तर शिक्षा और शोधकार्य, शिक्षा में आत्मनिर्भरता के आधारभूत निवेश का काम करते हैं। उच्च शिक्षा में इनका अनुपात असाधारण रूप से कम था। स्नातकोत्तर स्तर पर यह अनुपात 11.5 प्रतिशत था और अनुसंधान में यही अनुपात सिर्फ 0.8 प्रतिशत था। उच्च शिक्षा अधिकांशतः स्नातक स्तर तक सीमीत थी। एक अन्य तथ्य ने इस स्थिति को और निष्क्रिय कर दिया था। उपनिवेशों में शैक्षिक रूप से अर्ध उपजाऊ जमीन में एक ऐसी दुर्लभ प्रजाति का उदय हुआ जिसके कारण स्नातक शिक्षा शेष उच्चतर शिक्षा से कटकर रह गई। इस दुर्लभ प्रजाति का नाम था, 'डिग्री कालेज'। इन संस्थानों के निर्दय वातावरण की कल्पना करना कठिन नहीं है जिनमें संकाय से बस इतनी उम्मीद की जाती थी कि वे बाहरी अभिकरणों (एजेंसियों) द्वारा तैयार किए गए 'पाठ्यक्रम' की तैयारी कराएं और सत्र के अंत में निबंध शैली की परीक्षाओं के लिए छात्रों को तैयार करें।

चौथा तथ्य यह है कि औपनिवेशिक भारत में शिक्षा और विशेष रूप से उच्च शिक्षा बंदरगाहों पर बसे नगरों में और उनके आसपास के इलाकां तक सीमित थी। इस प्रकार शिक्षा कुछ छिटपुट जगहों मे सिमटी हुई थी। कुछ

स्थानों का विकास, कुछ का अल्पविकास किया गया था और कुछ विकास से स्वतः वंचित थे। यह शिक्षा उसमें एक महत्वपूर्ण तत्व थी। इसमें कलकत्ता, बंबई और मद्रास में महानगरों की स्थापना कर इनको शोषण का केन्द्र बनाया गया था और पराधीन अर्थव्यवस्था की संपत्ति का अधिशेष इन नगरों के अंधाधुंध विस्तार में खिंचता चला जाता था।

पाँचवा तथ्य यह है कि इस नई परिस्थिति के चलते हजारों साल से भारतीय संस्कृति और सभ्यता का केन्द्र और हृदय माना जाने वाला क्षेत्र हाशिए पर ढकेल दिया गया। हड़प्पा सभ्यता के समय से ही भारत का उत्तरी क्षेत्र तथा गंगा–यमुना का मैदानी इलाका हमारी सांस्कृतिक परंपराओं का स्रोत रहा था। तक्षशिला और ननकाना, इंद्रप्रस्थ और उज्जयिनी, वाराणसी और अयोध्या, वैशाली और पाटलिपुत्र, सरहिंदी और देवबंद तथा फिरंगी महल और फलवारी शरीफ उत्तर भारत के मैदानी इलाके में एक छोर से दूसरे छोर तक फैले हुए थे। ये भारतीय मनीषा और चिंतन के केन्द्र थे, जहां से भारतीय जनसमुदाय की सामाजिक संस्कृति को उजागर करने वाली मेधा हमको प्राप्त होती थी। उपनिवेशवादी शासकों ने मध्य प्रदेश कहं जाने वाले इस क्षेत्र में विकास के केन्द्र नहीं स्थापित किए। उन्होंने विकास केन्द्रों की स्थापना परिधि पर की। इस परिधीय नगरों को हम बंदगाहों की संज्ञा देते है। इस तरह से भारतीय भूभाग का परंपरागत संघटन उलट दिया गया। इन बंदरगाही नगरां तक सीमित भारतीय नवजागरण पीलिया और रक्ताल्पकता रोगों का शिकार था और इसलिए इस देश की सामाजिक संस्कृति को संश्लिष्ट करने में अशक्त और असमर्थ था। यह सांस्कृतिक क्रमभंग का नतीजा था। जिस क्षेत्र ने भारतीय जनमानस को हजारों साल तक ऊर्ज्वस्वित किया था, और राम, कृष्ण, निजामुद्दीन औलिया खुसरों, नानक, कबीर, सूर, और तुलसी जैसी महान विभूतियों को जिस भूमि ने जन्म दिया था, वहीं अब सांस्कृतिक जड़ता का क्षेत्र

बन गई। राष्ट्रीय जीवन के विखंडन में इन दोनों के दर्शन हुए जिसमें एक ओर निष्प्राण, विकासचेतना से रहित परंपरा बची थी और दूसरी ओर बिना जड़मूलवाली आधुनिकता। गंगा–यमुना के मैदान और उत्तरी क्षेत्र में निष्प्राण परम्परा बची रही तथा जड़मूल से रहित आधुनिकता ने परिधि पर अपना क्षणभंगुर अस्तित्व बनाए रखा।

औपनिवेशिक भारत में शिक्षा का सामाजिक–आर्थिक आधार निहायत संकुचित था। हजारों श्रमजीवी बहुसंख्यक जनता के लिए इसके दरवाजे बंद थे। जनसंख्या के एक बहुत बड़े हिस्से को सामाजिक और आर्थिक सुविधाओं से वंचित रखा गया था। इसमें अनुसूचित जातियों और जनजातियों का नाम विशेष रूप से वंचित रख गया था। शैक्षिक संस्थाओं के पवित्र परिसर में इनका प्रवेश तकरीबन असंभव था। कहना न होगा कि भारत की बहुत बड़ी जनसंख्या ग्रामीण इलाकों में रहती थी (और आज भी रहती है।) इनके लिए शैक्षिक सुविधाएं तकरीबन नहीं के बाराबर थीं। खास तौर से शिक्षा में महिलाओं की भागीदारी का स्तर तो बहुत ही कम था। शिक्षा में असमानता का पूरा ढांचा महिलाओं के ही दुर्बल कंधों पर टिका हुआ था।

औपनिवेशिक भारत में शिक्षा 'अध्यापन' (शिक्षण) पर केंद्रित थीं 'अधिगम' (सीखना) पर नहीं। शिक्षक और छात्र का रिश्ता इस मान्यता पर टिका हुआ था कि गुरु से 'ज्ञान प्राप्त' किया जाता है। इसलिए सीखने की सबसे मान्य पद्धति थी, बिना तर्क और बहस के अनालोचनात्क तरीके से, ईश्वरी संदेश की तरह, गुरु द्वारा दिए गए ज्ञान को स्वीकार करना। इस पद्धति से बुद्धि के बाजार के लिए शिक्षा की दुकानों में जो माल तैयार होता था, उस पर गुणवत्ता (प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी आदि) की अलग–अलग छाप लगी होती थी तथा इसका उपयोग मूलतः तथाकथित सेवाक्षेत्र में किया जाता था। इस तरह से प्राप्त सत्य (ज्ञान) को अनालोचनात्मक रूप से स्वीकार करने की योग्यता को सत्र के अंत

में एक जैसी निबंध शैली की परीक्षा द्वारा ही सर्वोत्तम तरीके से परखा जा सकता था।

जिस शिक्षा को विलायत से लाकर रोपा गया था, उसकी मंशा राष्ट्रीय एकता की ताकतों को मजबूत बनाना नहीं, उनको कमजोर करना था। ये राष्ट्रीय शक्तियां एक तरफ राष्ट्रीय घरेलू बाजार के विकास के साथ–साथ विकसित हो रही थीं और दूसरी ओर राष्ट्रीय आन्दोलन से इनको ताकत मिल रही थी। इस काल में पाठ्यक्रम के जरिए सांप्रदायिकता, जातिवाद, और क्षेत्रवाद का विष राजनीति में बड़ी चतुराई से फैलाया गया। उदाहरणार्थ स्कूलों में हिंदुओं और मुसलमानों को यह पढ़ाया गया कि उनके बीच कोई साझी विरासत नहीं है। सिर्फ उनका धर्म अलग नहीं है बल्कि इतिहास के अलग–अलग काल धर्म के आधार पर विभाजित हैं। हिन्दुओं तथा मुसलमानों का पहनावा भी अलग था और वे अलग भाषाएं बोलते थे। इस नई व्यवस्था में राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने का उपकरण होने के बजाए शिक्षा राष्ट्रीय एकता को तोड़ने वाली एक ताकतवर हथियार बन गई।

स्वतंत्र भारत में शिक्षा

उपनिवेशवादी शासकों से विरासत में मिली शिक्षा प्रणाली के ढांचे की खामियों को दूर करना और भारतीय राजनीतिक प्रणाली के सामाजिक–आर्थिक रूपांतरण के लिए इसमें परिर्वन करना, स्वतंत्रता मिलने के बाद भारत के सामने पहली जिम्मेदारी थी ताकि हमारा देश औपनिवेशिक अल्पविकास की अवस्था से निकलकर विकास के आत्मनिर्भर रास्ते पर चल सकें। इस अवधारणा के तहत शिक्षा को विकास प्रक्रिया से संबद्ध और उसका महत्वपूर्ण अवयव माना गया। स्वतंत्र भारत को नीचे दिए गए कार्यभारों की स्पष्ट रूपरेखा बनाने में काफी समय लग गया –

1. विरासत में प्राप्त संकुचित शैक्षिक आधार को परिणाम के स्तर पर इस प्रकार फैलाया जाए कि गुणवत्ता और परिमाण दोनों का समन्वित विकास किया जा सके।
2. शिक्षा और श्रमबाजार के संबंधों को सुदृढ़ किया जाए और काम और ज्ञान की खाई को पाटा जा सके।
3. शिक्षा के क्षेत्र में एक स्तर से दूसरे स्तर तक ले जाने के लिए एक कुशल व्यवस्था बनाई जाए जिससे प्राथमिक शिक्षा का सार्वजनीकरण हो, माध्यमिक स्तर पर दी जानेवाली शिक्षा को रोजगारपरक बनाया जाए और आत्मनिर्भर विकास से संबंधित विशेष प्रशिक्षण तथा बुद्धि के क्षेत्र में आयात को विस्थापित करने के लिए शिक्षा को बहुमुखी बनाया जाए।
4. शिक्षा के प्रसार में विद्यमान विसंगतियों को कम किया जाए ताकि देश के सभी भागों को इसका फायदा मिल सके।
5. संरक्षणात्मक भेदभाव (प्रोटेक्टिव डिस्क्रिमिनेशन) और उचित प्रोत्साहन के कार्य के जरिए शिक्षा प्रणाली के सामाजिक आर्थिक आधार को व्यापक बनाया जाए ताकि जनता के अनुसूचित और गैर–अनुसूचित, ग्रामीण और नगरीय तथा स्त्री–पुरूष के बीच के अंतर को अंततः समाप्त किया जा सके।
6. मूलतः शिक्षक और शिक्षणोन्मुखी शिक्षा को ज्ञानोन्मुखी तालीम में रूपांतरित किया जाए और ज्ञानार्थी की सृजन शकित पर जोर दिया जाए, दिए गए सत्य को हृदयंगम करने पर विशेष बल न दिया जाये और;

7. अर्थसंगत तरीके से शिक्षा का इस प्रकार विकास किया जाए कि वह राष्ट्रीय एकता, मानवतावाद और प्रकृति प्रेम को बढ़ावा देने में योगदान कर सके।

स्वतंत्रता मिलने के बाद प्राचीन परंपराओं वाला परन्तु नवजीवन के उल्लास से ओतप्रोत, यह देश भक्तिव्यता से जूझने के लिए आगे बढ़ा और अब खुद को आधुनिक बनाने तथा संभवतः दुनिया की सबसे बड़ी और जटिल शिक्षा प्रणाली तेयार करने में जुटा है। दुनिया में प्राथमिक स्तर पर नामांकित हर छः छात्रों में एक, माध्यमिक स्तर पर हर सात में एक और स्नातक स्तर पर हर आठ में एक छात्र भारतीय है। प्राथमिक स्तर पर नामांकित छात्रों की संख्या स्पेन की कुल जनसंख्या के दोगुने से अधिक और कनाडा की जनसंख्या की लगभग तीन गुनी है। माध्यमिक स्तर पर नामांकित छात्रों की संख्या आस्ट्रेलिया की जनसंख्या की लगभग दो गुनी है। उच्चतर स्तर पर नामांकित छात्रों की संख्या डेनमार्क की जनसंख्या के लगभग बराबर है। यह संख्या सोवियत संघ में शिक्षकों की संख्या की 3.5 गुनी और फ्रांस की तुलना में नौ गुनी है। भारत में पांच लाख से अधिक प्राथमिक विद्यालय हैं, अर्थात, ग्रेट ब्रिटेन की तुलना में पंद्रह गुने से अधिक। भारत में कालेजों की संख्या मलेशिया के स्कूलों की संख्या के बराबर हैं और नाउरू की जनसंख्या के लगभग बराबर है। यह विशालकाय प्रणाली अत्यंत जटिल है और इसका दायरा एक अध्यापक वाले स्कूलों से लेकर तीस लाख छात्रों वाले विश्वविद्यालयों तक तथा ऊँटों की पीठ पर घूमने वाली जातियों के साथ चलने वाले स्कूलों से लेकर अंतरिक्ष में उपग्रह भेजने वाली वैज्ञानिक शिक्षा और शोध संस्थानों तक फैला हुआ है।

शिक्षा और काम के बीच कमजोर तथा दुष्क्रियात्मक संबंध और श्रम बाजार के बीच तालमेल का अभाव मौजूदा स्थिति की सबसे बड़ी कमजोरी है।

काम के अनुभव के महत्व की तरफ, स्कूल की दुनिया से निकलकर काम की दुनिया में प्रवेश करने की तरफ और शिक्षा के अभिन्न अंग के रूप में उद्योग में व्यावहारिक प्रशिक्षण के साथ देश के लिए जरूरी मानवशक्ति के विकास की तरफ कोठारी आयोग ने विशेष रूप से ध्यान दिया था।

परिणाम की दृष्टि से शिक्षा में प्रसार और विभिन्न सामाजिक समूहों के बीच की खाई को पाटने में प्रगति तो हुई है, इसके बावजूद देश की शिक्षा प्रणाली के अंदर असमानताएं अभी भी बहुत अधिक हैं। जहां केरल के कोटायम जिले में गैर–अनुसूचित नगरीय पुरूष जनसंख्या में साक्षरता की दर लगभग 90 प्रतिशत है, राजस्थान के बाड़मतेर जिले में अनुसूचित जातियों की ग्रामीण महिलाओं के कारण असमानताएं और भी पुष्ट होती है और भारतीय शिक्षा प्रणाली को एक बीमार पीलियाग्रस्त व्यवस्था बनाती हैं।

जहां तक पुरूष–स्त्री, के बीच की असमानता का संबंध है, यह बात ध्यान देने योग्य है कि उच्च शिक्षा में स्त्रियों का नामांकन बहुत बढ़ा है। शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं का शिक्षा से वंचित रहना विशेष रूप से महत्वपूर्ण है क्योंकि वंचित होने के उनके अन्य सभी लक्षणों को यह खाई रेखांकित करती हैं। निःसंदेह अनुसूचित जातियां इस हानि का शिकार हैं परन्तु उनमें भी ग्रामीण औरतें पुरूषों से अधिक वंचित हैं। इसलिए भारतीय समाज के संदर्भ में स्त्री शिक्षा को आंदोलन का रूप देने का अर्थ केवल स्त्री शिक्षा के आंदोलन से कहीं बहुत बड़ी वस्तु है। यह आंदोलन असमानताओं की उस परजीवी व्यवस्था की जड़ों पर ही चोट करता है जो भारतीय राजनीतिक तंत्र को जकड़े हुए है लगातार उसका रक्त चूसती रहती है और उसे बीमार और कमजोर बनाती है। स्त्री शिक्षा न केवल स्त्रियों बल्कि पूरे भारतीय समाज की मुक्ति का जरूरी साधन है।

संकीर्णतावादी दबावों के कारण भारतीय शिक्षा प्रणाली में राष्ट्रीय तत्व बहुत ही कमजोर हुआ है। यह विखंडित प्रणाली श्रमिक शक्ति की अंतर्क्षेत्रीय गतिशीलता के लिए बहुत बड़ी बाधा बन गई है। 10+2+3 की शिक्षा प्रणाली राष्ट्रीय सहमति के आधार पर आरम्भ की गई थी। इसलिए यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि सभी राज्यों में यह प्रणाली अभी तक लागू नहीं की जा सकी है। स्कूल प्रणाली में केंद्रिक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या का समावेश अभी तक सपना बना हुआ है। आज भी क्षेत्रवाद, संप्रदायवाद और जातिवाद खुले और छिपे तौर पर स्कूलों की पाठ्य–पुस्तकों में परिलक्षित होते हैं। इतिहास और भूगोल के पाठ्यक्रमों के बारे में यह बात खासकर सही है। इतिहास की कक्षाओं में 'हिन्दू' काल और 'मुस्लिम' काल के भूत मंडराते रहते हैं। श्रेष्ठतावादी और संकीर्णतावादी वक्तव्य और विचार नवयुवकों के मन को पूर्वाग्रहों से दूषित करते हैं और आगे चलकर राजनीति तंत्र में इन्हीं से परस्पर विरोधी दबाव पैदा होते हैं। भूगोल की पाठ्यपुस्तकें पर्यावरणीय नियतिवादी व्याख्याओं से भरी हुई है। राष्ट्रीय संसाधनों को क्षेत्रीय संसाधन बतलाया जाता है और नवयुवकों में ऐसा दृष्टिकोण पैदा किया जाता है कि राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के अंदर श्रम के क्षेत्रीय विभाजन के परिप्रेक्ष्य में संसाधनों के विकास को न देखकर अलग–अलग बंद प्रणालियों के अंदर संसाधनों के विकास को न देखकर अलग–अलग बंद प्रणालियों के अंदर संसाधनों के उपयोग के रूप में उसे वे देखें। हिमालय का बर्फ पिघलने से बनी उत्तरी–पश्चिमी नदियों को इस राज्य या उस क्षेत्र की संपत्ति और बंबई हाई के कुओं से निकले तेल को इस या उस राज्य की संपत्ति बतलाकर क्षेत्रीय और साथ ही राष्ट्रीय विकास दोनों को खतरे में डाला जा रहा है।

शिक्षा की इस विशालकाय प्रणाली का आधार आज भी मूलतः शिक्षक और शिक्षण है। ज्ञानार्जन की प्रक्रिया को अभी तक अधिगम के रूप में केंन्द्रीय महत्व नहीं मिल सका है। युवकों की रचनात्मकता को, जो इतिहास की मूल

शक्ति है, अभीष्ट महत्व नहीं दिया गया है। सत्र के अंत में होने वाली बाहरी परीक्षा प्रणाली अभी तक शिक्षा व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण तत्व बनी हुई हैं, और यह ज्ञानार्जन की प्रक्रिया को बाधित करती है तथा अध्यापन कार्य के बहुत भड़े भाग को मूलतः दुष्क्रियात्मक (डिस्फंक्शनल) बनाती है। 'पाठ्यक्रम पूरा करना', नोट लिखवाना तथा प्रश्नोत्तर लिखना ही सुकराती परंपरा का विकल्प बन रहा है। संकेतों की तलाश, 'संभावित' प्रश्नों के उत्तर रटना और परीक्षा में अनुचित उपयों का सहारा लेना ज्ञानार्जन का विकल्प बन गया है। स्कूल में अनेक स्तरों पर परीक्षाप्रणाली के उन्मूलन का अर्थ शिक्षार्थी और शिक्षा दोनों को नष्ट करना रहा है। दुर्भाग्य से विश्वविद्यालय स्तर पर शैक्षिक सुधार लागू करने के प्रयासों को बुरी तरह असफलता मिली है। बाहरी और मूलतः दुष्क्रियात्मक परीक्षा प्रणाली अभी तक हमारे अधिकांश शैक्षिक प्रयासों का आदि और अंत बनी हुई हैं।

समकालीन भारत में शिक्षा प्रणाली की खासकर उच्च शिक्षा प्रणाली की, सबसे दुखद विशेषता शिक्षा और रोजगार के बीच की विसंगति है। जो कुछ आज हम देख रहे हैं, वह यह है कि एक तरफ रोजगार के अवसर एकरस गति से बढ़ रहे हैं और दूसरी तरफ लगातार शिक्षा के प्रसार के साथ बेरोजगार शिक्षितों की कतार बढ़ रही है। शिक्षितों की बढ़ती बेकारी और उच्च शिक्षा की मांग के बीच किसी सकारात्मक संबंध की नहीं तो कम–से–कम एक सकारात्मक सहसंबंध की परिकल्पना तो की जा सकती है। इस तरह के सकारात्मक सहसंबंध की परिकल्पनाओं के लिए चाहे जो भी परस्पर विरोधी व्याख्याएं पेश की जाएं लेकिन इस तथ्य को दरकिनार नहीं किया जा सकता है कि परिमापात्मक प्रसार की जो प्रवृत्ति समाने आई है उसके कारण श्रमिक शक्ति संबंधी असंतुलन और तरह–तरह की असंगतियां पैदा हुई हैं। यह बात

बड़े पैमाने पर स्वीकृत की जा चुकी है कि भारत में शिक्षितों की बेरोजगारी समय के साथ बढ़ती ही गई है।

शिक्षा का उत्तरदायित्व

स्वतंत्र भारत में शिक्षा–प्रशासन की नीति में कोई हेर–फेर नहीं हुआ है। जिस प्रकार 1935 के "भारत–सरकार अधिनियम" के अन्तर्गत शिक्षा का उत्तरदायित्व–प्रान्तीय सरकारों पर था, उसी प्रकार स्वतंत्र भारत में संविधान के अनुसार यह उत्तरदायित्व–राज्य–सरकारों पर था। परन्तु संविधान में संशोधन करके अब शिक्षा को समवर्ती सूची में स्थान दिया गया है। जिस पर केन्द्र तथा राज्य दोनों सरकारों को कानून बनाने का अधिकार दिया गया है।

भारतीय संविधान तथा शिक्षा

भारतीय संविधान में ऐसी अनेक महत्वपूर्ण धाराएं एवं उपबन्ध हैं जिनका शिक्षा से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष सम्बन्ध है। इन धाराओं तथा उपबन्धों का संक्षिप्त पुनर्विलोकन निम्नांकित पंक्तियों में किया जा रहा है–

धारा–28 "राज्य द्वारा पूर्णतः पोषित किसी शिक्षा–संस्था में धार्मिक शिक्षा नहीं दी जायेगी, परन्तु प्राइवेट संस्थाओं में धार्मिक शिक्षा दी जा सकेगी जिन्हें सरकार या राज्य ने मान्यता दे दी है या जिन संस्थाओं को सरकारी धन से सहायता मिलती है या जिन संस्थाओं का प्रबन्ध तो सरकार करती है परन्तु जो गैर–सरकारी धन से बनी हैं और चलती हैं और जिनके निर्माताओं और दाताओं ने साथ में यह शर्त लगा दी है कि उनमें धार्मिक शिक्षा दी जायेगी; किन्तु शर्त यह होगी कि उक्त संस्था में पढ़ने वाले किसी व्यक्ति को उक्त संस्था में दी जाने वाली धार्मिक शिक्षा में भाग लेने के लिए अथवा धार्मिक उपासना में भाग

लेने के लिए अथवा उक्त संस्था की इमारत में उपस्थित होने के लिए उस समय तक बाध्य नहीं किया जायेगा जब तक कि उस व्यक्ति ने या यदि वह वयस्क न हो तो उसके संरक्षक ने, उसके लिए स्वीकृति न दे दी हो।"

धारा–29(1)–"भारत के राज्य–क्षेत्र अथवा उसके किसी भाग के निवासियों के किसी विभाग को, अपनी विशेष भाषा, लिपि या संस्कृति बनाये रखने का अधिकार होगा।"

धारा–29(2)–"राज्य द्वारा पोषित या राज्य–निधि से सहायताप्राप्त करने वाली शिक्षा–संस्था में किसी नागरिक को धर्म, प्रजाति, जाति, भाषा या उनमें से किसी एक के आधार पर प्रवेश देने से नहीं रोका जायेगा"।

धारा–30–"धर्म या भाषा पर आधारित सब अल्पसंख्यक वर्गों को अपनी रुचि की शिक्षा–संस्थाओं की स्थापना तथा प्रशासन का अधिकार होगा।"

उक्त शिक्षा–संस्थाओं को सहायता देने में राज्य किसी विद्यालय के विरुद्ध इस आधार पर विभेद नहीं करेगा कि वह धार्मिक या भाषा पर आधारित किसी अल्पसंख्यक वर्ग के प्रशासन में है।

राज्य के नीति–निर्देशक तत्व

धारा 41–"राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य के अनुसार यथाशक्ति काम पाने, शिक्षा पाने तथा बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी और अंग हानि तथा अन्य अनर्ह अभाव की दशाओं में सार्वजनिक सहायता पाने के अधिकार को प्राप्त कराने का कार्य–साधक उपबन्ध करेगा।"

धारा 45–"राज्य इस संविधान के लागू होने के समय से दस वर्ष के अन्तर्गत सब बच्चों के लिए, जब तक वे चौदह वर्ष की आयु पूर्ण नहीं कर लेंगे, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा प्रदान करने का प्रयास करेगा।"

धारा 46—"राज्य, जनता के निर्बल वर्गों के, विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जन—जातियों के शिक्षा तथा अर्थ—सम्बन्धी हितों की विशेष सावधानी से उन्नति करेगा और सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।"

संविधान की सातवीं अनुसूची धारा (246)

संविधान ने समस्त विषयों को तीन सूचियों (अ) संघ सूची, (ब) राज्य सूची तथा (स) समवर्ती सूची में विभक्त किया है। संविधान की सातवीं अनुसूची की प्रथम या संघ सूची में उन विषयों को दिया गया है जिन पर भारतीय संसद को विधायन करने का अधिकार है।

(अ) संघ सूची

इस सूची के निम्नलिखित उपबन्धों के केन्द्रीय या संघ सरकार को निम्नलिखित शैक्षिक दायित्व प्रदान किये हैं—

उपबन्ध 63—"इसी संविधान के प्रारम्भ पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय और दिल्ली विश्वविद्यालय नामों से ज्ञात संस्थाएं और संसद से विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित कोई अन्य संस्थाएं।"

उपबन्ध 64—"भारत सरकार ने पूर्णतः अंशतः वित्त पोषित तथा संसद की विधि द्वारा राष्ट्रीय महत्व की घोषित वैधानिक या शिल्पिक संस्थाएं।"

उपबन्ध 65—"संघीय साधन तथा संस्थाएं जो

(क) "वृत्तिक, व्यावसायिक या प्राविधिक प्रशिक्षण के लिए है।" इनमें पुलिस अधिकारियों के प्रशिक्षण से सम्बन्धित संस्थाएं भी आती हैं।

(ख) "विशेष अध्ययनों या अनुसंधानों की उन्नति के लिए है।"

(ग) "अपराध के अनुसंधान या पता चलाने में वैज्ञानिक या शिल्पिक सहायता के लिए है।"

उपबन्ध 66–"उच्चतर शिक्षा या अनुसंधान की संस्थाओं में तथा वैज्ञानिक एवं शिल्पिक संस्थाओं में एक सूत्रता लाना और मानदण्डों का निर्धारण करना।"

(ब) राज्य सूची

उपबन्ध 11–"शिक्षा विश्वविद्यालयों सहित संघ सूची के उपबन्ध 63, 64, 65 तथा 66 और समवर्ती सूची के उपबन्ध 25 के अतिरिक्त एक राज्यीय विषय है। इस पर राज्यों के विधान मण्डलों को विधायन करने का अधिकार प्रदान किया गया।

(स) समवर्ती सूची

उपबन्ध 25–"श्रमिकों का व्यावसायिक तथा प्राविधिक प्रशिक्षण।" उक्त पर विधायन करने का अधिकार संघ तथा राज्य दोनों को है।

मूलतः भारतीय संविधान में शिक्षा को एक राज्यीय विषय माना गया है। परन्तु सन् 1976 में शिक्षा को समवर्ती सूची में संविधान संशोधन के द्वारा स्थान प्रदान किया गया। अब 'शिक्षा' नामक विषय पर केन्द्र तथा राज्य दोनों को विधायन करने का अधिकार है। इससे केन्द्र को शैक्षिक मामलों में अधिक दायित्व प्राप्त हो गया है। अब शिक्षा को अधिक धनराशि भी प्राप्त हो सकेगी। साथ ही दोनों (संघ तथा राज्यों) की भागादारी से शिक्षा के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता मिल सकेगी।

धारा 343–"देवनागरी लिपि में हिन्दी, संघ की राजभाषा होगी।"

धारा 350(A)–"प्रत्येक राज्य ओर प्रत्येक स्थानीय पदाधिकारी, भाषाई अल्पसंख्यक वर्गों के बच्चों को प्राथमिक स्तर पर अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करने की पर्याप्त सुविधाएं प्रदान करने का प्रयास करेगा।"

धारा 351–"हिन्दी भाषा की वृद्धि करना, उसका विकास करना तथा उसकी समृद्धि सुनिश्चित करना संघ का कर्तव्य होगा जिससे यह भारत की मिश्रित संस्कृति के विभिन्न अंगों की अभिव्यक्ति का माध्यम बन सकें।"

शिक्षा और केन्द्र सरकार

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

ब्रिटिश शासन काल में तत्कालीन सरकार भारतीय जनता को शिक्षित करने में कोई रुचि नहीं रखती थी। सन् 1883 ई0 में रिपन ने प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय निकायों को सौंपा। उस समय का शिक्षा–प्रशासन केन्द्रीकृत था। प्रान्तों को केन्द्र की नीतियों का पालन करना पड़ता था। केन्द्र ही समस्त नीतियों का निर्धारण करता था। सन् 1901 में 'डायरेक्टर–जनरल ऑफ एजूकेशन' के पद का सृजन किया गया और सन् 1910 ई0 में शिक्षा–विभाग की स्थापना की गई जो कि "Department of education, Health and Lands" कहलाता था। यह विभाग वाइसराय की कार्यकारिणी परिषद के सदस्य के अधीन रखा गया। सन् 1921 ई0 में शिक्षा को प्रान्तों को हस्तान्तरित कर दिया गया। इस प्रकार प्रान्तों को इस विषय को हस्तान्तरित करके केन्द्र शिक्षा के अलग हो गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात केन्द्र ने शिक्षा में रुचि प्रदर्शित की जिसके फलस्वरूप केन्द्र में सन् 1945 ई0 में शिक्षा–विभाग की स्थापना की गई और यह स्वास्थ्य तथा भूमि विभाग से पृथक कर दिया गया।

स्वतंत्र भारत में केन्द्र में शिक्षा का प्रशासन

सन् 1947 ई0 में भारत स्वतन्त्र हुआ। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा–विभाग को शिक्षा–मन्त्रालय में परिवर्तित कर दिया गया। सन् 1957 ई0 में शिक्षा–मंत्रालय के साथ वैज्ञानिक अनुसंधान को और जोड़ दिया गया। सन् 1958 में इस मंत्रालय को दो भागों में विभक्त किया गया–

(अ) शिक्षा–मंत्रालय

(ब) वैज्ञानिक अनुसंधान एवं सांस्कृतिक मामलों का मंत्रालय।

उक्त दोनों मंत्रालय अलग–अलग राज्यमंत्री की अध्यक्षता में रखे गये। सन् 1963 ई0 में पुनः इन दोनों मंत्रालयो को मिलाकर एक कर दिया गया जिसको दो भागों में विभक्त किया गया; यथा–

(अ) शिक्षा–विभाग

(ब) विज्ञान–विभाग

29 फरवरी, 1964 से उक्त मंत्रालय को शिक्षा–मंत्री की अध्यक्षता में रखा गया, जिसकी सहायता के लिए दो उपमंत्री तथा एक राज्यमंत्री रखा गया। सन् 1964–65 में शिक्षा–मंत्रालय को पुनर्गठित किया गया और इसमें पांच ब्यूरो तथा चार डिवीजनों की व्यवस्था की गई। ये पांच ब्यूरों इस प्रकार थे–

1. विद्यालय शिक्षा
2. उच्च शिक्षा
3. छात्रवृत्तियाँ
4. नियोजन तथा एंसीलरी शैक्षिक सेवाएँ तथा
5. भाषाएँ, साहित्य तथा ललित कलाएँ उक्त मंत्रालय में निम्न चार डिवीजन थे–

(i) शारीरिक शिक्षा तथा मनोरंजन

(ii) वैज्ञानिक अनुसन्धान

(iii) ब्राह्य सम्बन्ध तथा

(iv) प्रशासन

सन् 1967–68 में इस मंत्रालय को पुनः गठित किया गया और इसमे दो ब्यूरों और जोड़े गये। साथ ही इन समस्त ब्यूरों के नाम परिवर्तित किये गये। नवीन नामों के साथ ये ब्यूरो इस प्रकार थे–

1. सांस्कृतिक क्रियाओं का ब्यूरो
2. ब्यूरो ऑफ प्लानिंग एण्ड कौरडीनेशन,
3. ब्यूरो ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन
4. ब्यूरो ऑफ जनरल एजूकेशन
5. ब्यूरो ऑफ टैक्नीकल एजूकेशन
6. ब्यूरो ऑफ स्कॉलरशिप्स एण्ड यूथ सर्विसेज
7. ब्यूरो ऑफ लैंग्वेजेज एण्ड बुक प्रमोशन

प्रत्येक ब्यूरो को एक संयुक्त सचिव या परामर्शदाता के अधीन रख गया। उनके अधीन उप–शिक्षा परामर्शदाता, उप–सचिव, सहायक शिक्षा–परामर्शदाता, सीनियर विज्ञान अधिकारी, शिक्षा अधिकारी, सेक्शन अधिकारी, आदि रखे गये। यह व्यवस्था पर्याप्त समय तक चलती रही।

26 दिसम्बर, 1985 को एक नये मंत्रालय का सृजन किया गया जिसका नामकरण है–'मानव संसाधन विकास मंत्रालय। इस मंत्रालय में निम्नलिखित पांच विभाग हैं–

(अ) शिक्षा–विभाग
(ब) संस्कृति–विभाग
(स) कला–विभाग
(द) डिपार्टमेण्ट ऑफ यूथ अफेयर्स एण्ड स्पोर्ट्स तथा
(य) डिपार्टमेन्ट ऑफ वामेन एण्ड चाइल्ड्स केयर

शिक्षा–विभाग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय का एक निर्माणक अंग है। इसको राज्यमंत्री की अध्यक्षता में रखा गया है जो कि मंत्रालय के मंत्री के

अधीन कार्य करता है। इस विभाग के सचिवालय का अध्यक्ष एक सचिव होता है जिसकी सहायता के लिए विभिन्न पदाधिकारी होते हैं। शिक्षा–विभाग को विभिन्न ब्यूरो, डिवीजनों, सेक्शनों तथा एककों में विभक्त किया गया है। इस विभाग के प्रशासकीय ढाँचे को पृथक रूप से चार्ट द्वारा स्पष्ट किया गया है–

मानव संसाधन विकास मंत्रालय
शिक्षा विभाग
शिक्षा–सचिव
संयुक्त सचिव (माध्यमिक)
उप–सचिव (माध्यमिक)
संयुक्त सचिव (विश्वविद्यालय)
निदेशक
निदेशक
निदेशक (विश्वविद्यालय)
प्रौढ़ शिक्षा ब्यूरो
संयुक्त सचिव (प्रौढ़ शिक्षा)
निदेशक (प्रौढ़ शिक्षा)
उप–सचिव (टेक्नीकल)
उप–सचिव
उप–सचिव परामर्शदाता (प्रौढ़ शिक्षा)
एडीशनल सक्रेटरी
बुक–प्रमोशन छात्रवृत्ति ब्यूरो
भाषा ब्यूरो
प्रशासन आयोजन एवं सूचना ब्यूरो
संयुक्त सचिव
संयुक्त सचिव
संयुक्त सचिव (प्रशासन)
निदेशक
उप–सचिव
उप–शिक्षा परामर्शदाता
उप–सचिव
(OL) (ET) (SKT) (L)
निदेशक (आयोजन)
उप–शिक्षा परामर्शदाता
निदेशक (प्रशासन)
प्रोजक्ट (महिला संख्या)
निदेशक (सूचना)
निदेशक (बुक प्रमोशन)
निदेशक (परामर्शदाता)
उप–सचिव (संघीय क्षेत्र)
शिक्षा परामर्शदाता (प्राविधिक)
प्राविधिक शिक्षा ब्यूरो
संयुक्त शिक्षा परामर्शदाता (प्राविधिक)
संयुक्त शिक्षा परामर्शदाता (एम)
उप–शिक्षा परामर्शदाता
उप–शिक्षा परामर्शदाता
उप–शिक्षा परामर्शदाता
निदेशक (प्राविधिक)
एडीशनल एप्रेन्टीशिप परामर्शदाता
उप–शिक्षा परामर्शदाता
उप–शिक्षा परामर्शदाता
इन्टग्रेटेड फाइनेंस
संयुक्त सचिव व वित्त परामर्शदाता
उप–वित्त परामर्शदाता

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में दलितों की शैक्षणिक स्थिति

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के अन्तर्गत सामान्य रूप से उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश राज्यों के जनपद समाहित हैं किन्तु अध्ययन हेतु उत्तर प्रदेश राज्य की सीमाओं के अन्तर्गत आने वाले जनपदों में से ही प्रस्तुत अध्ययन हेतु जनपद का चयन किया गया है। उत्तर प्रदेश राज्य की सीमाओं के अन्तर्गत बुन्देलखण्ड क्षेत्र के अंग निम्नांकित 7 जनपद हैं –

1. ललितपुर
2. झाँसी

3. जालौन

4. हमीरपुर

5. महोबा

6. बाँदा

7. चित्रकूट

उक्त जनपदों में से हमीरपुर को जनपद की प्रस्तावित अध्ययन हेतु अध्ययन क्षेत्र के रूप में चुना गया है इस जनपद की सीमाएं कानपुर, महोबा, जालौन बाँदा तथा मध्य प्रदेश प्रान्त के छतरपुर जनपद को स्पर्श करती हैं। यमुना तथा बेत्रवती जैसी सलिल सरिताओं का सानिध्य पाए इस जनपद की विकास की गति तुलनात्मक रूप से धीमी रही है जहां तक शैक्षणिक विकास तथा शिक्षा केन्द्रों के विकास का प्रश्न है उस दिशा में यह जनपद बहुत पिछड़ा हुआ है।

हमीरपुर जनपद के विभिन्न विकास खण्डों में प्राथमिक तथा माध्यमिक विद्यालयों की स्थिति निम्नवत् है–

तालिका संख्या–4.1

जनपद हमीरपुर में विद्यालय की स्थिति (प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक)

क्र. सं.	ब्लाक का नाम	परि0प्रा0	मा0प्रा0	योग	परि0जू0	मा0	योग
1.	कुरारा	88	26	114	21	13	34
2.	सुमेरपुर	118	42	160	35	25	60
3.	मौदहा	123	19	142	24	10	34
4.	मुस्करा	78	42	120	18	21	39
5.	राठ	81	10	91	21	08	29
6.	गोहाण्ड	104	116	120	20	08	28
7.	सरीला	91	22	113	26	10	36

स्रोत–वर्ष 2003–04 के अनुसार बेसिक शिक्षा अधिकारी के कार्यालय से प्राप्त

तालिका संख्या–4.2

विद्यालय नगर क्षेत्र प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक

1	हमीरपुर	121	22	34	00	00	00
2	मौदहा	07	19	26	00	03	03
3	राठ	14	38	52	03	12	15

स्रोत–वर्ष 2003–04 के अनुसार बेसिक शिक्षा अधिकारी के कार्यालय से प्राप्त

तालिका संख्या 4.1 तथा 4.2 में हमीरपुर जनपद के विकास खण्डों तथा नगर क्षेत्र में अवस्थित विद्यालयों की संख्या का विवरण दिया गया है। इन तालिका में परिषदीय पाठशालाएं, मान्यता प्राप्त पाठशालाओं परिषदीय जूनियर विद्यालय तथा मान्यता प्राप्त जूनियर विद्यालयों की संख्या दर्शायी गयी है। इन विद्यालयों में कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की शिक्षा सभी वर्ग, जाति तथा धर्म के छात्र छात्राओं को दी जाती है।

तालिका संख्या–4.3

जनपद में संचालित माध्यमिक विद्यालयों की सूची

1. राजकीय इण्टर कालेज, हमीरपुर
2. राजकीय इण्टर कालेज, मुस्करा
3. राजकीय इण्टर कालेज, सरीला
4. राजकीय बालिका इण्टर कालेज, हमीरपुर
5. राजकीय बालिका इण्टर कालेज, मौदहा
6. राजकीय बालिका इण्टर कालेज, राठ
7. राजकीय उ0मा0वि0, कुरारा
8. राजकीय बालिका उ0मा0वि0, सुमेरपुर

9. राजकीय बालिका उ0मा0वि0, सिसोलर

10. राजकीय बालिका इण्टर उ0मा0वि0, गोहाण्ड

11. श्री विद्यामन्दिर इं0का0 हमीरपुर (अशासकीय सहायता प्राप्त इण्टर स्तर)

12. इस्लामियॉ इं0का0, हमीरपुर

13. राजाराम इ0का0, झलोखर

14. गायत्री विद्यामन्दिर इं0का0, सुमेरपुर

15. नेशनल इं0का0, मौदहा

16. रहमानियॉ इं0का0, मौदहा

17. चौ0 पहलवान सिंह इं0का0, इचौली

18. नन्द इं0का0, लोधीपुर, निवादा

19. पी0एन0वी0इं0का0, चिल्ली

20. पीआर0जी0इं0का0, राठ

21. वी0एल0वी0 इं0का0, राठ

22. गाँधी इं0का0, गोहाण्ड

23. एस0बी0इं0का0, पौंथिया (अशासकीय हाईस्कूल स्तर पर सहायता प्राप्त)

24. हीरानन्द इं0का0, मगरौठ

25. गोविन्छ इं0का0, गहरौली

26. पछ परमानन्द इं0का0, मगरौठ

27. रामस्वरूपदास इं0का0, मगरौठ

28. गाँधी इं0का0 मौदाह, (हाईस्कूल स्तर तक सहायता प्राप्त मान्यता)

29. पं0 लक्ष्मी चन्द्र पालीवाल इं0का0, इंगोहटा–तदैव

30. श्रीराम इं0का0, पारा (वित्तविहीन मान्यता)

31. सरस्वती विद्यामंदिर इं0का0, हमीरपुर–तदैव

32. सरस्वती बाल मन्दिर इं0का0, राठ–तदैव

33. रामनारायण दृढोमर वैश्य बालिका इ0का0, कुरारा

34. गायत्री विद्यामन्दिर बालिका इं0का0, सुमेरपुर–तदैव

35. परमहंस बुन्देलखण्ड इं0का0, सुमेरपुर–तदैव

36. बुन्देलखण्ड उ0मा0वि0, चिल्ली (अनुदानित)

37. प्रेम हा0से0स्कूल, नौरंगा–तदैव

38. आदर्श समदर्शी उ0मा0वि0, खड़ेहीजार–तदैव

39. मोतीलाल सुमिरतिन देवी उ0मा0वि0, मौहर–वित्तविहीन

40. आदर्श उ0मा0वि0, मौदहा

41. सरस्वती विद्यामन्दिर उ0मा0वि0, मौदहा

42. उ0मा0वि0, पहाड़ी भिटारी

43. साधूराम उ0मा0वि0, कन्धौली

44. चेतनदास उ0मा0वि0,राठ

45. सरस्वती विद्यामन्दिर उ0मा0वि0, कुरारा

46. एच0एस0 कान्वेन्ट उ0मा0वि0, कुरारा

47. हीरानन्द बालिका उ0मा0वि0, बिवॉर

48. भरतकुमार बालिका उ0मा0वि0, खेडाशिलाजीत

49. शलेश्वर उ0मा0वि0, सरीला

50. रामचरन उ0मा0वि0, कारीमाटी

51. विवेका नन्द बालिका, उ0मा0वि0 हमीरपुर

52. रानी अवन्तीबाई बालिका, उ0मा0वि0 कुरारा

53. फैज0ए0आम0 इं0का0, राठ (हाईस्कूल स्तर तक अनुदानित)

स्रोत वर्ष 2005 जिलाविद्यालय निरीक्षक हमीरपुर के कार्यालय से प्राप्त विवरण के आधार पर

तालिका संख्या 4.3 में जनपद हमीरपुर में संचालित राजकीय तथा मान्यता प्राप्त माध्यमिक विद्यालयों की सूची दर्शायी गयी है वर्तमान में इन

विद्यालयों की कुल संख्या 53 है जिनमें हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट स्तर की शिक्षा दी जाती है।

तालिका संख्या 4.4

जनपद में संचालित उच्च शिक्षा केन्द्रों की सूची

क्रमांक	महाविद्यालय का नाम	स्थान
1	राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय	कुछेछा, हमीरपुर
2.	राजकीय महिला महाविद्यालय	हमीरपुर
3.	राजकीय महाविद्यालय	मौदहा
4.	ब्रह्मानन्द महाविद्यालय	राठ
	कुल योग=04	

वर्ष 2000 तक संचालित

तालिका संख्या 4.4 में जनपद हमीरपुर में वर्ष 2000 तक संचालित राजकीय तथा अशासकीय महाविद्यालयों की संख्या दर्शायी गयी है जिसमें स्नातक परास्नातक (कला वाणिज्य, कृषि एवं विज्ञान वर्ग) स्तर की शिक्षा राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय हमीरपुर तथा ब्रह्मानन्द महाविद्यालय राठ में दी है शेष महाविद्यालयों में कला वर्ग की स्नातक स्तर की शिक्षा प्रदान की जाती है।

प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक स्तर पर दलितों की शैक्षणिक स्थिति

तालिका संख्या–4.5

वर्ष 1995 में प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में दलित छात्रों की स्थिति

क्र. स.	कक्षा	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	1	30514	3958 (64.42)	2187 (35.58)	6145 (100.00)	20.14
2.	2	29983	3894 (65.01)	2096 (34.99)	5990 (100.00)	19.98
3.	3	29813	3809 (65.08)	2043 (34.92)	5852 (100.00)	19.63
4.	4	24944	3134 (33.00)	1615 (34.00)	4749 (100.00)	19.04
5.	5	23004	2874 (66.00)	1480 (34.00)	4354 (100.00)	18.93
6.	6	12103	1480 (66.26)	754 (33.74)	234 (100.00)	18.04
7.	7	11883	1456 (67.96)	687 (32.04)	2143 (100.00)	18.04
8.	8	10503	1291 (68.28)	599 (31.72	1890 (100.00)	18.00
	योग	**172747**	–	–	**33357**	**19.30**

स्रोत–बेसिक शिक्षा अधिकारी, हमीरपुर के कार्यालय से प्राप्त

तालिका संख्या 4.5 में वर्ष 1995 में प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में दलित छात्रों की संख्या तथा कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक प्रदर्शित किया गया है। तालिका के अनुसार कक्षा 1 में कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 20.14 है जबकि कक्षा 5 में यह प्रतिशतांक 18.00 है। कक्षा 1 से कक्षा 8 तक की कुल छात्र संख्या में 33357 छात्र–छात्रा दलित वर्ग के हैं। जिनका प्रतिशतांक 19.30 है।

तालिका संख्या–4.6

वर्ष 1996 में प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में दलित छात्रों की स्थिति

क्र. सं.	कक्षा	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	1	31002	3899 (59.97)	2585 (40.03)	6457 (100.00)	20.83
2.	2	30963	3791 (60.00)	2528 (40.00)	6319 (100.00)	20.41
3.	3	30204	3504 (57.98)	2540 (42.02)	6044 (100.00)	20.01
4.	4	25244	2968 (59.00)	2063 (41.00)	5031 (100.00)	19.93
5.	5	23997	2824 (59.00)	1889 (40.08)	4713 (100.00)	19.64
6.	6	12990	1457 (59.00)	1012 (41.00)	2469 (100.00)	19.01
7.	7	12303	1372 (59.26)	943 (40.74)	2315 (100.00)	18.82
8.	8	11001	1217 (60.10)	808 (39.90)	2025 (100.00)	18.41
योग		**177704**	—	—	**35373**	**19.90**

स्रोत–बेसिक जिला अधिकारी, हमीरपुर के कार्यालय से प्राप्त

तालिका संख्या 4.6 में प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में वर्ष 1996 की विभिन्न कक्षाओं में कुल छात्रों मेंदलित छात्र–छात्राओं की संख्या एवं प्रतिशतांक प्रदर्शित किया गया है। इस वर्ष गत वर्ष की तुना में 0.60 प्रतिशत–दलित छात्रों की वृद्धि हुई।

तालिका संख्या–4.7

वर्ष 1997 में प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में दलित छात्रों की स्थिति

क्र. सं.	कक्षा	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	1	31603	4030 (58.00)	2919 (42.00)	6949 (100.00)	21.99
2.	2	31303	4104 (58.69)	2889 (41.31)	6993 (100.00)	22.34
3.	3	30978	3854 (56.99)	2908 (43.01)	6762 (100.00)	21.83
4.	4	28884	3142 (57.72)	2301 (42.28)	5443 (100.00)	21.03
5.	5	24.703	3060 (52.99)	2127 (41.01)	5187 (100.00)	21.00
6.	6	13101	1578 (57.97)	1144. (42.03)	2722 (100.00)	20.78
7.	7	12999	1553 (58.28)	1111 (41.72)	2664 (100.00)	20.50
8.	8	11204	1373 (60.00)	915 (40.00)	2288 (100.00)	20.43
	योग	**181775**	—	—	**39008**	**21.45**

स्रोत–बेसिक जिला अधिकारी, हमीरपुर के कार्यालय से प्राप्त

तालिका संख्या 4.7 में प्रारम्भ से लेकर पूर्व माध्यमिक स्तर तक की छात्र संख्या दर्शायी गयी है इस वर्ष कक्षा 1 में कुल छात्रों में दलित छात्रों का

प्रतिशतांक 21.99 है तथा कक्षा 8 में यह प्रतिशतांक 20.43 है तथा इस वर्ष कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 21.45 है।

तालिका संख्या–4.8

वर्ष 1998 में प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में दलित छात्रों की स्थिति

क्र. सं.	कक्षा	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	1	32743	4107 (56.00)	3227 (44.00)	7334 (100.00)	32.01
2.	2	31773	4098 (56.08)	3209 (43.92)	7307 (100.00)	23.00
3.	3	31204	4002 (55.79)	3171 (44.21)	7173 (100.00)	22.99
4.	4	26313	3220 (56.96)	2505 (43.04)	5825 (100.00)	22.14
5.	5	25961	3199 (56.01)	2512 (43.99)	5711 (100.00)	22.00
6.	6	13205	1633 (56.78)	1243 (43.20)	2876 (100.00)	21.78
7.	7	13001	1594 (57.02)	1201 (42.98)	2795 (100.00)	21.50
8.	8	11992	1506 (59.80)	1012 (40.20)	2518 (100.00)	21.00
	योग	**186192**	–	–	**41535**	**22.30**

स्रोत–बेसिक जिला अधिकारी, हमीरपुर के कार्यालय से प्राप्त

तालिका संख्या 4.8 में कक्षा 1 से कक्षा 8 तक शिक्षा गृहण करने वाले छात्रों की स्थिति वर्ष 1998 की प्रस्तुत की गई है। इस वर्ष दलित छात्रों का इन कक्षाओं में प्रतिशतांक 22.30 है।

तालिका संख्या 4.9

वर्ष 1999 में प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में दलित छात्रों की स्थिति

क्र. सं.	कक्षा	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	1	34983	4582 (53.99)	3904 (46.01)	84.86 (100.00)	24.26
2.	2	33874	4740 (55.69)	3772 (44.31)	8512 (100.00)	25.13
3.	3	32994	4454 (54.00)	3794 (46.00)	8248 (100.00)	25.00
4.	4	27311	4029 (54.87)	3314 (14.13)	7343 (100.00)	26.89
5.	5	26991	3891 (55.18)	3161 (44.82)	7052 (100.00)	26.13
6.	6	14988	1845 (55.68)	1468 (44.32)	3313 (100.00)	22.11
7.	7	14113	1764 (56.78)	1341 (43.22)	3106 (100.00)	22.01
8.	8	12137	1541 (58.30)	1102 (41.70)	2643 (100.00)	21.78
योग		**197319**	–	–	**48703**	**24.68**

स्रोत–बेसिक जिला अधिकारी, हमीरपुर के कार्यालय से प्राप्त

तालिका संख्या 4.9 में वर्ष 1999 में जनपद हमीरपुर में प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक स्तर शिक्षा गृहण करने वाले कुल छात्र–छात्राओं की संख्या एवं

प्रतिशतांक दर्शाया गया है। इस वर्ष कक्षा 1 से कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 24.26 हैं तथा कक्षा 8 में यह प्रतिशतांक 21.78 है।

तालिका संख्या–4.10

वर्ष 2000 में प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में दलित छात्रों की स्थिति

क्र सं	कक्षा	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	1	35247	4663 (52.58)	4206 (47.42)	8869 (100.00)	25.16
2.	2	34602	5109 (53.17)	4500 (46.83)	9609 (100.00)	27.77
3.	3	33130	49.3 (53.76)	4226 (46.24)	9139 (100.00)	27.48
4.	4	28980	4272 (52.84)	3813 (47.16)	8085 (100.00)	27.89
5.	5	27215	43689 (54.07)	3711 (45.50)	3678 (100.00)	23.33
6.	6	15767	2005 (55.50)	1673 (45.50)	3678 (100.00)	23.33
7.	7	14386	1823 (55.10)	1485 (44.90)	3308 (100.00)	23.00
8.	8	12978	1669 (56.17)	1302 (43.83)	2971 (100.00)	22.89
योग		**202305**	—	—	**53738**	**26.56**

स्रोत–बेसिक जिला अधिकारी, हमीरपुर के कार्यालय से प्राप्त

तालिका संख्या 4.10 में पूर्व की भांति वर्ष 2000 में प्राथमिक एवं पूर्व माध्यमिक स्तर तक अध्ययन करने वाले छात्रों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। इस वर्ष कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 26.56 हैं।

माध्यमिक स्तर पर दलितों की शैक्षणिक स्थिति

तालिका संख्या–4.11

वर्ष 1995 में माध्यमिक कक्षाओं में दलित छात्रों की स्थिति

क्र. सं.	कक्षा	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	9	10302	985 (73.00)	365 (27.00)	1350 (100.00)	13.10
2.	10	8635	797 (71.04)	325 (28.96)	1122 (100.00)	13.00
3.	11	3506	272 (70.29)	115 (29.71)	387 (100.00)	11.05
4.	12	3104	233 (68.33)	108 (31.67)	341 (100.00)	11.00
योग		**25547**	—	—	**3200**	**12.52**

स्रोत–बेसिक जिला अधिकारी, हमीरपुर के कार्यालय से प्राप्त

तालिका संख्या 4.11 में वर्ष 1995 में माध्यमिक स्तर की कक्षाओं में अध्ययन करने वाले छात्र–छात्राओं की स्थिति का विश्लेषण किया गया है कक्षा 9 में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 13.10 है तथा कक्षा 12 में कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 11.00 है। माध्यमिक स्तर पर अध्ययन करने वाले

25547 छात्रों में मात्र 3200 छात्र–छात्राएं दलित वर्ग के हैं इनका प्रतिशतांक 12.52 है जबकि वर्ष 2000 में कक्षा 8 में यह प्रतिशतांक 22.89 है।

तालिका संख्या–4.12

वर्ष 1996 में माध्यमिक कक्षाओं में दलित छात्रों की स्थिति

क्र. सं.	कक्षा	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	9	10734	112 (74.00)	390 (26.00)	1502 (100.00)	13.99
2.	10	8888	834 (72.15)	322 (27.85)	1156 (100.00)	13.01
3.	11	3530	331 (73.06)	122 (26.94)	453 (100.00)	12.84
4.	12	3203	280 (70.00)	120 (30.00)	400 (100.00)	12.50
योग		**26355**	–	–	**3511**	**13.32**

स्रोत–बेसिक जिला अधिकारी, हमीरपुर के कार्यालय से प्राप्त

तालिका संख्या 4.12 में माध्यमिक कक्षाओं में अध्ययन करने वाले कुल छात्रों तथा दलित छात्रों की संख्या प्रस्तुत की गयी है वर्ष 1996 में कक्षा 8 में दलित छात्रों का प्रतिशत 13.99 है तथा कक्षा 12 में यह प्रतिशतांक 12.50 है। जो वर्ष 1995 की तुलना में 0.02 प्रतिशत कम है।

तालिका संख्या–4.13

वर्ष 1997 में माध्यमिक कक्षाओं में दलित छात्रों की स्थिति

क्र. सं.	कक्षा	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	9	10900	1124 (73.56)	404 (26.44)	1528 (100.00)	14.02
2.	10	9087	905 (71.25)	365 (28.75)	1270 (100.00)	13.98
3.	11	3705	345 (72.02)	134 (27.98)	479 (100.00)	12.94
4.	12	3369	298 (68.03)	140 (31.97)	438 (100.00)	13.01
योग		**27061**	–	–	**3715**	**13.72**

स्रोत–बेसिक जिला अधिकारी, हमीरपुर के कार्यालय से प्राप्त

तालिका संख्या 4.13 में वर्ष 1997 में माध्यमिक कक्षाओं में अध्ययन करने वाले छात्रों की स्थिति दर्शायी गयी है । इस वर्ष माध्यमिक स्तर पर कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 13.72 है जो इस वर्ष 1996 की तुलना में 0.40 प्रतिशत अधिक है।

तालिका संख्या 4.14

वर्ष 1998 में माध्यमिक कक्षाओं में दलित छात्रों की स्थिति

क्रं. सं.	कक्षा	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	9	10998	1202 (73.10)	442 (26.90)	1644 (100.00)	14.95
2.	10	9207	917 (70.80)	378 (29.20)	1295 (100.00)	14.07
3.	11	3914	375 (71.03)	153 (25.97	528 (100.00)	13.50
4.	12	3511	320 (67.99	150 (32.01	470 (100.00)	13.40
योग		**27630**	–	–	**3937**	**14.24**

स्रोत–बेसिक जिला अधिकारी, हमीरपुर के कार्यालय से प्राप्त

तालिका संख्या 4.14 में वर्ष 1998 में माध्यमिक कक्षाओं में पढ़ने वाले छात्र–छात्राओं की संख्या एवं प्रतिशतांक को प्रस्तुत किया गया है। कक्षा 9 में कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 14.95 था, तथा कक्षा 12 में यह प्रतिशतांक 13.40 था। कुल छात्रां में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 14.24 रहा।

तालिका संख्या–4.15

वर्ष 1999 में माध्यमिक कक्षाओं में दलित छात्रों की स्थिति

क्रं. सं.	कक्षा	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	9	11002	1388 (74.98)	463 (25.02)	1851 (100.00)	16.82
2.	10	9412	1190 (72.87	443 (27.13)	1633 (100.00)	17.99
3.	11	4144	460 (73.01)	170 (26.99)	630 (100.00)	15.21
4.	12	3633	341 (68.50)	157 (31.50)	498 (100.00)	13.72
योग		**28191**	–	–	**4612**	**16.35**

स्रोत–बेसिक जिला अधिकारी, हमीरपुर के कार्यालय से प्राप्त

तालिका संख्या 4.15 में वर्ष 1999 में विभिन्न कक्षाओं में पढ़ने वाले छात्रों तथा दलित छात्रों का प्रतिशतांक दर्शाया गया है। इस वर्ष कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 16.35 था जो वर्ष 1998 की तुलना में सकारात्मक रहा है।

तालिका संख्या–4.16

वर्ष 2000 में माध्यमिक कक्षाओं में दलित छात्रों की स्थिति

क्रमांक	कक्षा	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	9	11376	1727 (74.22)	600 (25.78)	2327 (100.00)	20.45
2.	10	9692	1302 (71.86)	510 (28.14)	1812 (100.00)	18.69
3.	11	4409	487 (72.15)	188 (27.85)	675 (100.00)	15.30
4.	12	3951	369 (67.10)	181 (32.90	550 (100.00)	13.92
योग		**29428**	–	–	**5364**	**18.2**

स्रोत–बेसिक जिला अधिकारी, हमीरपुर के कार्यालय से प्राप्त

तालिका संख्या 4.16 में वर्ष 2000 में माध्यमिक स्तर की विभिन्न कक्षाओं में कुल छात्रों का प्रतिशतांक दर्शाया गया है। वर्ष 1995 में कक्षा 12 में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 11.00 था जो वर्ष 2000 में बढ़कर कर 13.92 हो गया। कुल छात्रों में (माध्यमिक स्तर पर) दलित छात्रों का प्रतिशतांक वर्ष 1995 में 12.52 था जो 2000 में बढ़कर 18.2 हो गया। यह वृद्धि कुछ सीमा रूचि प्रदर्शित करती है किन्तु यह वृद्धि कमोवेश सन्तोषप्रद स्थिति प्रदर्शित नहीं करती है।

उच्चशिक्षा में दलितों की शैक्षणिक स्थिति

तालिका संख्या–4.17

वर्ष 1995 में स्नातक तथा परास्नातक स्तर पर दलित छात्रों की स्थिति

क्रं. स.	स्तर	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	स्नातक	3704	290 (59.06)	201 (40.94)	491 (100.00)	13.2
2.	परास्नातक	540	30 (51.73)	28 (48.27)	58 (100.00)	10.74
योग		**4244**	–	–	**549**	**12.93**

स्रोत–उच्च शिक्षा निदेशालय, इलाहाबाद से प्राप्त सूचना के आधार पर।

तालिका संख्या 4.17 में स्नात तथा परास्नातक स्तर पर 1995 में कुल छात्रों तथा कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। वर्ष 1995 में जनपद में स्नातक स्तर (सभी संकायों में) पर 540 छात्र थे। स्नातक स्तर पर दलित छात्रों का प्रतिशतांक 13.20 तथा परास्नातक स्तर पर 10.74 था।

तालिका संख्या– 4.18

वर्ष 1996 स्नातक तथा परास्नातक स्तर पर दलित छात्रों की स्थिति

क्र. सं.	स्तर	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	स्नातक	3999	291 (59.40)	99 (20.20)	490 (100.00)	12.25
2.	परास्नातक	541	29 (51.79	27 (48.21)	56 (100.00)	10.35
	योग	**4540**	**—**	**—**	**546**	**12.02**

स्रोत–उच्च शिक्षा निदेशालय, इलाहाबाद से प्राप्त सूचना के आधार पर।

वर्ष 1996 में स्नातक स्तर पर कुछ छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 12.25 तथा परास्नातक स्तर पर यह प्रतिशतांक 10.35 था। उच्च शिक्षा में कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 12.02 था। तालिका संख्या 4.18।

तालिका संख्या–4.19

वर्ष 1997 में स्नातक तथा परास्नातक स्तर पर दलित छात्रों की स्थिति

क्रं. स.	स्तर	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	स्नातक	4001	303 (61.47)	190 (38.53)	493 (100.00)	12.32
2.	परास्नातक	545	33 (51.57)	31 (48.43)	64 (100.00)	11.74
योग		**4546**	–	–	**557**	**12.25**

स्रोत–उच्च शिक्षा निदेशालय, इलाहाबाद से प्राप्त सूचना के आधार पर।

तालिका संख्या 4.19 मे वर्ष 1997 में स्नातक तथा परास्नातक स्तर पर अध्ययनरत छात्रों की संख्या तथा कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक प्रस्तुत किया गया है। वर्ष 1995 में उच्च शिक्षा संस्थानों में यह प्रतिशतांक 12. 93 था जो वर्ष 1997 में घटकर 12.25 रह गया।

तालिका संख्या–4.20

वर्ष 1998 में स्नातक तथा परास्नातक स्तर पर दलित छात्रों की स्थिति

क्र. सं.	स्तर	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	स्नातक	4000	307 (62.53)	184 (37.47)	491 (100.00)	12.27
2.	परास्नातक	543	32 (53.34	28 (46.66)	60 (100.00)	11.04
	योग	**4543**	–	–	**551**	**12.12**

स्रोत–उच्च शिक्षा निदेशालय, इलाहाबाद से प्राप्त सूचना के आधार पर।

तालिका संख्या 4.20 गें वर्ष 1998 में जनपद हमीरपुर के उच्च शिक्षा संस्थानों में अध्ययनरत छात्रों की संख्या प्रदर्शित की गयी है। इस वर्ष कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक स्नातक स्तर पर 12.27 तथा परास्नातक स्तर पर 11.04 था तथा उच्च शिक्षा संस्थानों में अध्ययनरत कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 12.12 था।

तालिका संख्या–4.21

वर्ष 1999 में स्नातक तथा परास्नातक स्तर पर दलित छात्रों की स्थिति

क्र. स.	स्तर	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	स्नातक	3899	299 (61.91)	184 (38.09)	483 (100.00)	12.38
2.	परास्नातक	537	34 (58.63)	24 (41.37)	58 (100.00)	10.80
	योग	**4436**	–	–	**541**	**12.19**

स्रोत–उच्च शिक्षा निदेशालय, इलाहाबाद से प्राप्त सूचना के आधार पर।

तालिका संख्या 4.21 में वर्ष 1999 में अध्ययनरत छात्रों का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है इस वर्ष कुल छात्रों में से दलित छात्रों का प्रतिशतांक स्नातक स्तर पर 12.38 तथा परास्नातक स्तर पर 10.80 रहा जब कि कुल छात्रों में से जो उच्च शिक्षा गृहण कर रहे थे उनमें दलित छात्रों का प्रतिशतांक 12.19 रहा।

तालिका संख्या–4.22

वर्ष 2000 में स्नातक तथा परास्नातक स्तर पर दलित छात्रों की स्थिति

क्र. सं.	स्तर	कुल छात्रों की संख्या	अनुसूचित जाति के छात्रों की संख्या			कुल छात्रों में अनुसूचित जाति के छात्रों का प्रतिशतांक
			छात्र	छात्रा	योग	
1.	स्नातक	3883	310 (62.76)	184 (37.24)	494 (100.00)	12.40
2.	परास्नातक	549	39 (52.00)	36 (48.00)	75 (100.00)	13.66
	योग	**4532**	–	–	**569**	**12.55**

स्रोत–उच्च शिक्षा निदेशालय, इलाहाबाद से प्राप्त सूचना के आधार पर।

तालिका संख्या 4.22 मे प्रस्तुत किया गया है कि वर्ष 2000 में स्नातक स्तर पर 3883 तथा परास्नातक स्तर पर 549 छात्र–छात्राएं अध्ययनरत थे। स्नातक स्तर पर 494 दलित छात्र–छात्राएं तथा परास्नातक स्तर पर 75 छात्र–छात्राएं अध्ययनरत थे। इस वर्ष कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 12.55 था जबकि वर्ष 1995 में यह प्रतिशतांक 12.93 था इससे स्पष्ट होता है कि स्नातक परास्नातक स्तर पर दलित छात्रों के प्रतिशतांक में कभी आती जा रही हैं या यह कहा जाए कि इस जनपद के दलितों में उच्च शिक्षा के प्रति रूचि में कभी आ रही है।

****

अध्याय—5

दलित समाज में शैक्षणिक जागरूकता की स्थिति

- शिक्षा, समाज व विकास
- भारतीय समाज एवं शिक्षा
- परिवार और शिक्षा
- आधुनिक काल में परिवार की अवस्था
- दलितों का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोण

दलित समाज में शैक्षणिक जागरूकता की स्थिति

पूर्व, अध्याय में बुन्देलखण्ड में दलितों की शैक्षणिक स्थिति का विवेचन किया गया, प्रस्तुत अध्याय में दलितों की शिक्षा से सम्बन्धित दलित परिवारों के मुखियाओं का शिक्षा के प्रति दृष्टिकोणों की विवेचना की गयी है :–

शिक्षा, समाज व विकास

शिक्षा व समाज शताब्दियों से चर्चा के विषय रहे, लेकिन द्वितीय महायुद्ध के बाद शिक्षा एवं समाज के साथ–साथ विकास पर अतिरिक्त महत्व दिया गया। इससे समाज की भूमिका मंद होती गई और शिक्षा के साथ विकास का सहसम्बन्ध बढ़ता गया। इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि शिक्षा व विकास के मध्य कोई भी तालमेल बैठाने के लिये उच्च शिक्षा की अवस्थापनाओं का ही सहारा लिया जाता है। यह भी स्वीकार किया जाना चाहिए कि शिक्षा मौजूदा सामाजिक–राजनीतिक ढाँचे के अन्तर्गत एक संभाग होने के नाते शिक्षकों (महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय के शिक्षकों) की भूमिका का सभी संभावनाओं व प्रतिबन्धों के मध्य परीक्षण किया जाना चाहिए।

सामान्यतः विकास का अर्थ मानव कल्याण के भौतिक स्तर को उठाना है, लेकिन आधुनिक परिप्रेक्ष्य में यह एक मूल्य उन्मुख (वेल्यू एडेड) धारणा है। आय व उत्पादन में वृद्धि के साथ–साथ गुणात्मक पहलुओं पर भी ध्यान दिया जाता है। शायद इसी कारण से किसी भी समाज में वैयक्तिक विकास एवं सामाजिक प्रगति को विकास के महत्वपूर्ण निर्णायकों के रूप में स्वीकारा जाने लगा है। संक्षेप, में विकास के अन्तर्गत प्रति व्यक्ति एवं राष्ट्रीय आय में दीर्घकालीन वृद्धि के साथ–साथ समाज में राजनीतिक दर्शन का प्रतिनिधित्व लोगों के आवश्यक

जीवन स्तर, सामाजिक संरचना को सृजित करने के तरीकों, मूल्य प्रणाली तथा प्रेरणाओं के विभिन्न वैधानिक प्रावधानों का प्रतिबिम्बन है।

विकास को इस बोधोन्मुख रूप से देखने पर लगता है कि कुछ ऐसे मानवीय प्रयास जिनका सम्बन्ध प्रत्यक्षतः राजनीतिक, आर्थिक व सामाजिक कलेवर से है, इस प्रक्रिया को लचीला एवं गत्यात्मक बना देते हैं।

आधुनिक अर्थव्यवस्थाओं की कार्य प्रणाली के अन्तर्गत शिक्षा का स्वाभाविक उद्देश्य विकास में योगदान देना है। शैक्षिक व्यवस्था का गंभीरता से परीक्षण करने पर मालूम होता है कि विकासशील देशों में यह वांछित सीमा तक सभी विकासात्मक आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं होने पाई। परम्परागत रूप से उदार एवं शैक्षणिक शिक्षा पर ही अधिक ध्यान दिया गया है। शिक्षा की स्पर्शनीय प्राप्तियों को सुनिश्चित तरीके से नही सोंचा गया है। ऐसी स्थिति में शिक्षा से यदि कोई विशिष्ट लाभ प्राप्त हुआ है तो वह महज संयोग कहा जा सकता है न कि योजनाबद्ध व्यूह रचना का नतीजा।

ठीक यही दृष्टिकोण भारतीय शैक्षिक व्यवस्था में प्रतिबिम्बित होता है और यदि आज भी हम विकासात्मक आवश्यकताओं तथा उच्च शिक्षा व्यवस्था में बढ़ते हुए प्रवेश को विश्वविद्यालीय पाठयक्रमों की प्रासंगिकता में देखें तो पिछले कुछ दशकों में एक अजीब स्थिति देखने को मिलती है। उच्च शिक्षा अध्ययन केन्द्र सामाजिक व राजनीतिक दबावों के लिये अस्तित्व में आए हैं। इसका परिणाम समाज को बहुत से विश्वविद्यालीय शिक्षार्थियों के संभरण के रूप में सामने आया, जिनको लाभदायक व्यवसायों में नही खपाया जा सका। यह शैक्षिक व्यवस्था के लिये एक धमकी है तथा साथ ही शिक्षा को विकास से सम्बद्ध बना दिया है। इस स्थिति के लिये कई कारण जिम्मेदार हैं, जिनमें बहुत कुछ आर्थिक व सामाजिक नीतियों का पुट पाया जाता है।

आज समाज में शिक्षा को विकास के साथ एकीकृत करने के वास्ते एक बड़े आंदोलन की आवश्यकता है, जिसके लिए सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन की आवश्यकता है। इसके लिए विश्वविद्यालयी व महाविद्यालयी शिक्षकों की भूमिका का खासा महत्व है। चूँकि शिक्षक विशाल सामाजिक, आर्थिक व्यवस्था का एक अंग है, अतः इनकी भूमिका को सीमित संदर्भ में ही विवेचित करना चाहिये।

उच्च शिक्षा संस्थान विशेषकर विश्वविद्यालय अपने अध्यापकों के माध्यम से दलितों के विकास में योगदान दे सकते हैं। विकास में उनका योगदान काफी हद तक स्वतन्त्रता व स्वायत्ताता के वातावरण से तय किया जाता है। स्वतन्त्रता व स्वायत्ता का ही यह वह तत्व है जो विश्वविद्यालीय अध्यापकों को न केवल अच्छे ज्ञान व गवेषण करने की, बल्कि नये मूल्यों व आधिक अर्थपूर्ण जीवन की खोज करने में सम्पूर्ण संरचना एवं सामाजिक संरचना का परीक्षण करने की अतिरिक्त जिम्मेदारी सौंपता है। यही वह उत्तरदायित्व है जो दूसरे व्यावसायिक समूहों की अपेक्षा अध्यापक को उनकी भूमिका में एक व्यावसायिक समूह का नैसर्गिक पुट देता है।

शिक्षा, विकास से घनिष्ठता से जुड़ी है अतः विकास कार्यों की गति तेज करने के लिए अध्यापकों की संवेदना बढ़ाने की आवश्यकता है। समाज की ओर से दूसरा अर्थ यह हुआ कि शिक्षकों को इस प्रकार की भूमिका के लिए आवश्यक आधार संचरना व दूसरी सुविधायें प्रदान की जानी चाहियें। शिक्षण में शिक्षकों की भूमिका स्वतः ही विकासोन्मुख है, क्योंकि यह प्रशिक्षित जनशक्ति उत्पन्न करती है तो भी यह गम्भीर धारणा रही है कि विभिन्न क्षेत्रों में विकास प्रक्रियाओं की प्रभावपूर्ण प्रतिक्रिया के लिये विश्वविद्यालय व महाविद्यालय पर्याप्त रूप से इन जनशक्ति को प्रशिक्षित करते नहीं दिखाई देते हैं इसका कारण यह है कि पाठयक्रम व शैक्षिक प्रविधि प्रभावशाली नहीं है।

व्यावहारिक व आवश्यकता उन्मुख पाठयक्रम बनाने के लिए आवश्यक है कि पाठयक्रम निर्माताओं को विकास आवश्यकताओं का स्पष्ट ज्ञान हो। यह प्रत्यक्ष ज्ञान क्षेत्र सर्वेक्षण, प्रत्यक्ष अनुभव एवं ऐसा अनुभव रखने वाले लोगों से बातचीत करने पर पता लग सकता है। विश्वविद्यालयी व महाविद्यालयी शिक्षकों तथा क्षेत्र में विभिन्न विकास पहलुओं में व्यस्त दूसरे कार्मिकों को साथ लेने के लिये संस्थागत प्रयासों की आवश्यकता है।

भारतीय समाज एवं शिक्षा

शिक्षा की व्याख्या बहुत सरल ढंग से लाभदायक अनुभवों के प्रदान करने के रूप में दी जा सकती है। जब हम शिक्षा देने को कहते हैं तो हमारा तात्पर्य यह होता है कि बालकों को ऐसे अनुभव प्रदान किये जायें जो उनका शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास करने में सहायक हो। किन्तु व्यक्तिगत विकास अर्थहीन है जब तक कि उसके चारों ओर के व्यक्तियों से उसके साथ सम्बन्धों में प्रेम तथा सद्भावना न हो। मानव एक सामाजिक प्राणी है। वह क्रिया–प्रतिक्रिया उनके साथ करना सीखता है जो उसके सम्पर्क में आते हैं। अतएव उसको लाभदायक अनुभव उसी समय मिल सकते हैं जबकि उसे व्यक्तिगत रूप से न देखा जाए, वरन् दूसरे सामाजिक प्राणियों के सम्बन्ध में ही उस पर ध्यान केन्द्रित किया जाए। शिक्षा को इसी रूप में एक सामाजिक प्रक्रिया कहते हैं।

एक व्यक्ति का जीवन उस समाज से बहुत प्रभावित होता है, जिसमें वह रहता है। समाज की संस्थाएं उसके मस्तिष्क का विकास करती हैं, उसके शरीर में सन्तुलन लाती है और उसके व्यक्तित्व का विकास करती है। किन्तु इन संस्थाओं का प्रभाव उस सीमा तक सीमित है जिस तक कि उसकी प्रकृति मूल रूप से परिवर्तित हो सकती है। प्रत्येक व्यक्ति दूसरे से भिन्न होता है। प्रत्येक

का विकसित होने का अपना स्वयं का मार्ग एवं गति होती है। प्रत्येक की अपनी मनोवृत्ति, रूचि एवं योग्ता होती है जो दूसरों से भिन्न होती है। समाज इन भिन्नता में समन्वय लाने की चेष्टा करता है और ऐसा सामाजिक संगठन बनाता है, जिसमें आशा की जाती है कि व्यक्ति उसके अन्तर्गत ही अपना जीवन व्यतीत करेगा।

दूसरी ओर व्यक्ति भी सामाजिक संगठन को प्रभावित करता है और अपनी व्यक्तिगत योग्यताओं द्वारा उसमें सुधार लाने की चेष्टा करता है यह क्रिया सामाजिक संगठन पर लागू करना और व्यक्तिगत प्रभाव से उसमें सुधार लाना एक सक्रिय रूप से होती रहती है। बिना शिक्षा के या तो सामाजिक संगठन छिन्न–भिन्न हो जाता है और समाज में चारों ओर अव्यवस्था हो जाता है अथवा वह इतना कठोर तथा स्थाई बन जाता है कि व्यक्ति की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता नष्ट हो जाती है और वह लकीर ही पीटता रहता है। वह अन्धविश्वास, रूढ़िवादिता एवं संकीर्णता का पुतला बन जाता है। उसकी चिन्तनशक्ति नष्ट हो जाती है और वह किसी भी सामाजिक प्रश्न पर तर्कपूर्ण ढंग से विचार नहीं कर पाता। भारत में 19वीं तथा 20वीं शताब्दी के प्रारम्भिक काल के समाज को हम इस प्रकार के सामाजिक संगठन के उदाहरण के रूप में रख सकते हैं। ऐसे समाज में बालक का विकास दोषपूर्ण ही होता है, इस सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं।

भारत का समाज, विशेषकर ग्रामीण एवं दलित समाज अब भी बहुत निम्न स्तर का जीवन व्यतीत कर रहा है। अधिकतर ग्रामीण बच्चे मकानों में गन्दगी, धूल एवं मैल के बीच रहते है। शायद ही कुछ ग्रामों में सफाई का प्रबन्ध हो। व्यक्ति अधिकतर स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों को नहीं जानते हैं, न उन्हें बालकों के पालन–पोषण का ज्ञान ही होता है। ऐसे समाज में बालक का विकास अत्यन्त दूषित ढंग से होता है, और वह उन्हीं गन्दी आदतों का पुतला बन जाता है,

जिनसे कि समाज भरा पड़ा होता है। कारण यह है कि आज भारतीय ग्रामीणों के लिए शिक्षा की बहुत आवश्यकता है, और समाज में शिक्षा का आयोजन जितनी शीघ्रता से किया जाएगा, उतनी ही शीघ्रता से समाज प्रगति करेगा और उसका प्रभाव भावी नागरिकों के विकास पर अच्छा पड़ेगा।

ग्रामों की आर्थिक स्थिति भी अत्यन्त खराब है। स्वतन्त्रता से पहले जमींदारी प्रथा ने दलितों की दशा शोचनीय बना दी थी। जमींदार उनकी मेहनत की कमाई छीन लेते थे और वे दरिद्र रह जाते थे। इस प्रथा ने उनको भाग्यवादी एवं काहिल बना दिया था। वे जानते थे कि चाहे जितनी मेहनत करें, उसका फल कोई दूसरा ही भोगेगा। जमींदारी उन्मूलन के पश्चात भी उनकी दशा बहुत अधिक नहीं सुधरी है। इसका कारण उनकी काहिली एवं अन्धविश्वास है। वह अधिक पैदावार करने की चेष्टा नहीं करते है। खेती के पुराने यन्त्रों एवं विधियों से ही खेती करना चाहते हैं, जिनके द्वारा पैदावार में गिरावट ही आती हैं, वृद्धि नहीं।

एक ग्रामीण बालक का विकास अभाव, गरीबी, सुस्ती एवं अन्धविश्वास के बीच होता है। इसी कारण उसके विकास में ऐसे तत्व सम्मिलित हो जाते हैं जो समाज तथा राष्ट्र के लिए हानिकारक होते हैं। बालक शीघ्र मेहनत से बचना सीख लेता है। वह यह नहीं सीख पाता है कि अभाव की पूर्ति के लिए अधिक श्रम आवश्यक है, दरिद्रता दूर करने के लिए भाग्यवाद या अन्धविश्वास सही मार्ग–प्रदर्शक नहीं। शिक्षा के कार्य इस प्रकार के समाज में विकसित बालक के साथ अत्यन्त कठिन है। शिक्षा द्वारा समाज को सुधारना भी होता है, और जो दोष बालकों में विकसित हो जाते हैं उन्हें रोक़ना भी होता हैं, तथा बालकों को सही मार्ग पर ले जाना भी होता है। किस प्रकार शिक्षा इन कार्यों को सम्पन्न कर सकती हैं, यह समझने के लिए हमें बालक के समाजीकरण के तथा उसको प्राप्त कराने वाले तत्वों की समझना होगा।

परिवार और शिक्षा

'परिवार' शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। यह साधन सबसे पुरातन है। परिवार ही वह सामाजिक साधन है, जिससे दूसरे सामाजिक साधनों का विकास हुआ है। सभी मानव क्रियाओं का इतिहास परिवार के इतिहास के साथ सम्बद्ध है। सारे मानव सम्बन्धों का मूल स्रोत परिवार ही है। हमारी सामाजिक व्यवस्था बहुत काल तक परिवार पर ही आधारित थी। यह आधुनिक काल की ही विशेषता है कि सामाजिक व्यवस्था परिवार के नियंत्रण से बाहर सी निकल आई।

बालक की शिक्षा में परिवार का बहुत बड़ा महत्व है। बालक परिवार में ही उत्पन्न होता है, और यही वह पहला साधन है जिससे सामाजिकता की प्रथम शिक्षा उसे मिलती है। परिवार प्राथमिक सामाजिक समूह है। इसमें व्यक्तियों का सम्बन्ध स्पष्ट एवं सीधा है। यही कारण है कि इसका प्रभाव बालक पर सबसे अधिक पड़ता है।

बालक कुटुम्ब में ही रहकर भाषा सीखता है। उसके सामाजिक तथा नैतिक विचार का विकास सबसे प्रथम उसके पारिवारिक जीवन में ही होता है। वह अपने परिवार द्वारा ही परम्पराओं, रीति–रिवाजों इत्यादि से अवगत होता है। वह अपने परिवार के सदस्यों से प्रेम करना सीखता है, और उसमें प्रेम तथा घृणा के भाव का प्रादुर्भाव होता है। जो कुछ सामाजिक अनुभव बालक को परिवार में मिलते हैं, वे उसके व्यक्तित्व की आधारशिला निर्मित करते हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से बालक के ऊपर उसके पारिवारिक अभाव का बहुत बड़ा महत्व है। बालक की प्रवृत्तियों का प्रकाशन सबसे पहले परिवार में ही होता है, और यदि परिवार में उसके साथ उचित व्यवहार किया जाता है, तो बड़े होने पर उसका सामाजिक समायोजन हो जाता है, अन्यथा उसका व्यक्तित्व कुसंयोजित हो जाता है।

विभिन्न शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा में परिवार के महत्व पर बल दिया है। कॉमेनियस ने बाल के प्रथम छः वर्षों को "माँ के घुटनों का विद्यालय" कहा है। इससे उनका तात्पर्य है–घर का विद्यालय। इन्होंने घर को ही सब प्रकार के बालकों की शिक्षा का केन्द्र माना। रूसो ने माँ को एक सच्ची नर्स की पदवी दी और पिता को वास्तविक अध्यापक की। पेस्टालॉजी ने भी घर के वातावरण को ही शिक्षा में सबसे अधिक प्रभावशाली माना है। उन्होंने अपने द्वारा संयोजित विद्यालयों में बराबर घर का सा वातावरण बनाए रखने की चेष्टा की। यही मत फ्रोबेल का भी था।

भारत तथा प्राचीन चीन में परिवार को शिक्षा का एक मुख्य साधन समझा जाता था। भारत में परिवार का अब तक बहुत महत्व रहा, परन्तु अब संयुक्त परिवार के टूटने के कारण यह कम होता जा रहा है। परन्तु अभी भी माता–पिता बालक को घर में एक अच्छा वातावरण बनाए रखने की चेष्टा करते हैं। पारिवारिक प्रेम को अब भी आदर्श समझा जाता है। बालकों को सामाजिक आदर्शों की शिक्षा यही दी जाती है और उन्हें व्यापार की विधियों से अवगत कराया जाता है। परन्तु आधुनिक काल में नए सामाजिक ढाँचे के कारण परिवर्तन शीघ्रता से आ रहा है, जो भविष्य के लिए हितकर नहीं है।

आधुनिक काल में परिवार की अवस्था

प्राचीन काल में परिवार ही सब कुछ था। सामाजिकता की भावना पारिवारिक भावना से ही प्रगति प्राप्त होती थी। परन्तु वर्तमान में समाज का ढाँचा बदल गया है और आर्थिक स्थिति छिन्न–भिन्न हो गई है। पारिवारिक जीवन पर इसका बहुत गहरा प्रभाव पड़ा है। इस समय प्रत्येक एक व्यक्ति को अपने लिए रोजी–रोटी की व्यवस्था करनी है। आर्थिक स्थिति में परिवर्तन के कारण कोई भी व्यक्ति घर बैठकर दूसरों पर आश्रित होकर नहीं खा सकता।

प्रत्येक एक को कुछ न कुछ काम धन्धा करना पड़ता है। इसके कारण संयुक्त परिवार नष्ट–भ्रष्ट होते जा रहे है।

परिवार के प्रभाव के कम होने का एक कारण यह भी है कि मानव की आवश्यकताएं बहुत बढ़ गई हैं, उनका जीवन स्तर बढ़ गया है। अब परिवार उनको पूर्ण करने में असमर्थ है। ये आवश्यकताएं परिवार के बाहर ही पूर्ण की जा सकती हैं। अतएव परिवार का नियन्त्रण कम होना स्वाभाविक ही है।

अब परिवार द्वारा व्यावसायिक, सामाजिक तथा नैतिक शिक्षा सम्भव नहीं हो पा रही है। समाज की व्यवस्था अब बहुत बदल गई है। पहले जो व्यवसाय बालक अपनाता था, पारिवारिक व्यवसाय होता था; जैसे–किसान का पुत्र खेती–बाड़ी ही करता था, बढ़ई का पुत्र बढ़ईगिरी करता था, पण्डित का पुत्र पण्डिताई ही करता था। परन्तु अब इस धारणा में कभी आयी है। औद्योगिक तथा वैज्ञानिक विकास के कारण अनेक ऐसे उद्योग धन्धे बढ़ गए हैं जिनके लिए विशेष शिक्षा की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त, ज्ञान के विकास ने हर एक व्यवसाय को एक विशिष्ट स्थान दे दिया है, जिसके लिए प्रशिक्षण नितान्त आवश्यक है; जैसे–कृषि के लिए केवल किसान का बेटा होना ही पर्याप्त नहीं, अपितु खाद, बीज, फसल को कीड़ों से बचाना, यन्त्रों द्वारा खेती इत्यादि के सम्बन्ध में ज्ञान होना भी आवश्यक है। यह ज्ञान परिवार द्वारा बालकों को नहीं दिया जा सकता।

मनोविज्ञान द्वारा यह भी स्पष्ट हो गया है कि प्रत्येक व्यक्ति की योग्यताएं, प्रेरणाएं, रूचियाँ भिन्न होती हैं। उनका व्यवसाय इन्हीं योग्यताओं के अनुकूल यदि चुना जाए तो वह एक कार्य कुशल व्यक्ति बन जाएगा अन्यथा नहीं अतएव अब परिवार द्वारा उसका व्यवसाय निर्धारित नहीं किया जा सकता।

सामाजिक प्रगति का कार्य तथा सामाजिक बन्धनों को समझना परिवार द्वारा सम्भव नहीं है। समाज अब काफी जटिल हो गया है और सामाजिक

सम्बन्ध अनेक प्रकार के हो गए हैं। अतएव इन सबका अध्ययन करके ही प्रगति सम्भव है और यह अध्ययन परिवार में सम्भव नहीं, इसके लिए तो औपचारिक साधन (जैसे–विद्यालय) की ही आवश्यकता है।

सामाजिक प्रगति के साथ सामाजिक नैतिकता के मानदण्डों में परिवर्तन हो गए हैं। अब पारिवारिक नैतिकता तथा सामाजिक नैतिकता में अन्तर आ गया है। समाज की अपनी स्वयं की नैतिकता का विकास हो चुका है। चूँकि व्यक्ति को समाज में रहना है, इस कारण उसे सामाजिक नैतिकता ग्रहण करना अत्यन्त आवश्यक है। यह कार्य विद्यालय ही उचित रूप से कर सकता है अन्य कोई साधन नहीं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तमान काल में परिवार का महत्व बहुत कम हो गया है और इसका स्थान विद्यालय ने लिया है।

बालक की शिक्षा में परिवार का सहयोग

यद्यपि यह ठीक है कि परिवार का महत्व वर्तमान काल में कम होता जा रहा है परन्तु बालक की शिक्षा कभी भी तब तक उचित ढंग से नहीं हो सकती जब तक कि परिवार का सहयोग प्राप्त न हो। एक बालक शिक्षा के लिए विद्यालय जाता है, परन्तु वह वहाँ चौबीस घण्टों में केवल पाँच या छः घण्टे ही व्यतीत करता है, शेष समय उसका घर पर ही व्यतीत होता है। अतएव बालक की शिक्षा पर जो प्रभाव घर का पड़ सकता है, वह किसी और संस्था का नहीं। यही कारण है कि शिक्षा प्रदान करने में परिवार का सहयोग आवश्यक है।

दलित परिवार और शिक्षा

शिक्षा में परिवार का महत्वपूर्ण योगदान होता हैं अग्रिम विवेचन में बुन्देलखण्ड क्षेत्र के हमीरपुर जनपद में दलित समाज में शैक्षणिक जागरूकता

की स्थिति से सम्बन्धित संरक्षकों के दृष्टिकोण से सह–सम्बन्ध रखने वाले तथ्यों–आयु, शिक्षा, व्यवसाय, ग्रामीण–शहरी पृष्ठभूमि, आय, वैवाहिक स्थिति, पारिवारिक संरचना, पारिवारिक सदस्यों के शैक्षणिक स्तर आदि का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है।

तालिका संख्या 5.1 में दलित समाज के परिवारों के सरक्षकों अभिभावकों / मुखिया का आयु समूहवार वर्गीकरण दर्शाया गया है–

तालिका संख्या 5.1

दलित परिवारों के मुखियाओं का आयु समूहवार वर्गीकरण

क्रमांक	आयु समूह	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1	20–25	15	07.50
2	25–30	17	08.50
3	30–35	20	10.00
4	35–40	35	17.50
5	40–45	36	18.00
6	45–50	40	20.00
7	50–55	14	07.00
8	55–60	09	04.50
9	60–65	06	03.00
10	65–70	04	02.00
11	70–75	02	01.00
12	75–80	01	00.50
13	80 से ऊपर	01	00.50
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 5.1 में दलित समाज के परिवारों का प्रतिनिधित्व करने वाले परिवार के मुखिया सदस्यों का आयु समूहवार वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है। तालिका के तथ्यों से स्पष्ट होता है कि 20–25 आयु समूह के सदस्यों की

संख्या 15 है जो इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि दलित समाज में अभी भी कानूनी आधार पर पुरूषों की विवाह की निश्चित आयु का पालन नहीं किया जाता और अपरिपक्व अवस्था में ही विवाह की परमपरा का निर्वहन कर दिया जाता है। आयु समूह (40–45) वर्ष तथा (45–50) वर्ष आयु समूह की सदस्यों का प्रतिशतांक क्रमांक 18.00 तथा 20.00 है जो सर्वेक्षण किये जाने वाले सदस्यों का अधिकतम प्रतिनिधित्व करता है आयु समूह 75–85 वर्ष का प्रतिशतांक 00.50 तथा 80 वर्ष से ऊपर आयु समूह के मुखियाओं का प्रतिशतांक 00.50 हैं तथा इन तथ्यों से यह स्पष्ट होता है कि अधिकतम आयु समूह के परिवार के मुखियाओं की संख्या अल्पतम रह जाती है।

तालिका संख्या–5.2

दलित समाज के परिवार के मुखियाओं की वैवाहिक स्थिति

क्रमांक	वैवाहिक स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	अविवाहित	00	0.00
2.	विवाहित	169	84.50
3.	पुनर्विवाहित	21	10.50
4.	विधवा/विधुर	10	05.00
5.	तलाकशुदा/परित्यक्त	00	00.00
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 5.2 में दलित समाज के परिवार के मुखिया सदस्यों की वैवाहिक स्थिति को वर्गीकृत किया गया है। 200 उत्तरदाता मुखिया

सदस्यों में से विवाहित सदस्यों का प्रतिशतांक 84.50 (169) है, सबसे कम प्रतिशतांक विधुर सदस्यों का 5.00 प्रतिशत हैं। तलाकशुदा सदस्यों की संख्या शून्य है। जबकि पुनर्निवाहित सदस्यों का प्रतिशतांक 10.50 है जो विवाहित सदस्यों की संख्या के बाद आता है। पुनर्विवाहित सदस्यों के प्रतिशतांक से यह स्पष्ट होता है कि दलित समाज में पुनर्विवाह की परम्परा कमोवेश पायी जाती है।

विवाहित सदस्यों की संख्या (169) से यह स्पष्ट होता है कि दलित समाज में विवाहित सदस्यों का पारिवारिक जीवन संतोषमय ढंग से व्यतीत होता है तथा दम्पतियों के मध्य इस तरह का सामंजस्य पाया जाता है कि उनके मध्य तलाक जैसी स्थिति का संकट कमोवेश उत्पन्न नहीं होता यदि उत्पन्न होता भी है तो उसे सामाजिक दबाव के चलते दबा दिया जाता है, यही कारण है, कि अध्ययन हेतु चयनित मुखियायों में तलाकशुदा व्यक्तियों का प्रतिशतांक शून्य है।

तालिका संख्या–5.3

दलित मुखियाओं का शैक्षणिक स्तर

क्रमांक	शैक्षणिक स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	अशिक्षित	122	61.00
2.	साक्षर / प्राथमिक	31	15.50
3.	पूर्व माध्यमिक	30	15.00
4.	हाईस्कूल	10	05.00
5.	इण्टरमीडिएट	04	02.00
6.	स्नातक	02	01.00
7.	परास्नातक	01	00.50
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

सारिणी संख्या–5.3 में दलित परिवारों के मुखियाओं के शैक्षणिक स्तर का विवेचन किया गया है। चयनित क्षेत्र के दलित परिवार के मुखियाओं के शैक्षणिक स्तर के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दलित मुखियाओं का शैक्षणिक स्तर निम्न तथा चिन्तनीय है चयनित परिवारों के 122 (61.00) सदस्य अशिक्षित हैं इस प्रतिशतांक और संख्या से यह स्पष्ट होता है कि सरकार द्वारा चलाए गये लम्बी अवधि के प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम का प्रभाव इन मुखियाओं पर नहीं पड़ा। 15. 50 प्रतिशत मुखिया ऐसे हैं जिन्हें साक्षर या प्राथमिक स्तर के शैक्षणिक स्तर की श्रेणी में पाया गया। परास्नातक स्तर तक का अध्ययन पाए मुखिया का प्रतिशतांक मात्र 00.50 (01) है। यह सदस्य ऐसे परिवार का प्रतिनिधित्व करते है जिसके सदस्य पूर्व में किसी शासकीय या महत्वपूर्ण पद पर रहे हैं तथा शिक्षा के प्रति सचेत रहे हैं, कमोवेश यही स्थिति स्नातक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त सदस्यों की है जिनका प्रतिशतांक 1.00 है। पूर्व माध्यमिक और इण्टरमीडिएट स्तर तक शिक्षा प्राप्त सदस्यों की संख्या क्रमशः 30 (15.00) तथा 01 (2.00) है जबकि हाईस्कूल स्तर तक शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों का प्रतिशतांक 5.00 (10) है। सम्पूर्ण तालिका के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि दलित परिवार के मुखियाओं में शैक्षणिक स्तर की स्थिति सन्तोषप्रद नही रही है जिसका प्रभाव उनके आगे आने वाली पीढ़ी पर पड़ता प्रतीत होता है संभवतः प्राथमिक आवश्यकताओं को जुटाने की जद्दोजहद में संभवतः वे शैक्षणिक उपलब्धि में कोई विशेष रूचि नहीं ले पाये।

अशिक्षित सदस्यों की श्रेणी ऐसे सदस्यों की संख्या अधिक है जो आयु समूह 30 वर्ष से ऊपर के समूह में आते हैं इस समूह के अन्तर्गत आने वाले सदस्यों की आयु वर्तमान के गणनाक्रमानुसार 30 वर्ष से अधिक है यदि 2001 की जनगणना पूर्व की दो जनगणना वर्षों के पूर्व 1971 की जनगणना को आधार बनाकर उस समय की अनुसूचित जाति के शैक्षणिक प्रतिशतांक का अवलोकन

करें तो यह स्पष्ट होता है, कि वर्ष 1971 की जनगणना से जो शैक्षणिक आँकड़े प्राप्त हुए थे, वे राष्ट्रीय साक्षरता दर की तुलना में अनुसूचित जातियों की साक्षरता दर बहुत कम थी, अर्थात दलित जातियों को शैक्षणिक सुविधाओं का पर्याप्त लाभ प्राप्त नहीं हो पा रहा था वे सामाजिक स्तर पर अपने वजूद को बनाए रखने के लिए संघर्षरत थे जिससे उन्हें शैक्षणिक स्तर को ऊपर उठाने के उतने अवसर प्राप्त नहीं हो सकें जितने होने चाहिए जिससे वर्तमान का दलित परिवार का मुखिया शैक्षणिक स्थिति में महत्वपूर्ण स्थान पर नहीं है।

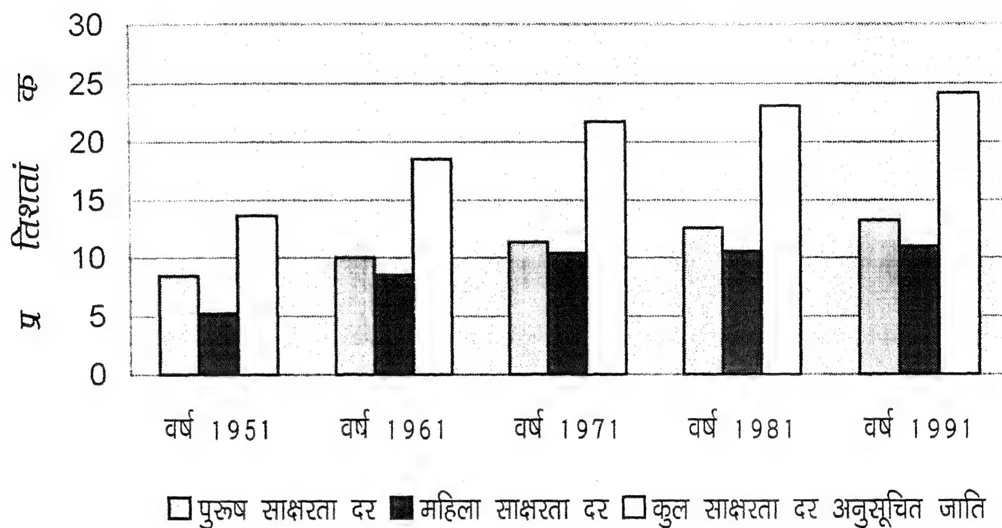
सारिणी संख्या–04

1951 से 1991 के मध्य अनुसूचित जातियों की साक्षरता दर (जनपद–हमीरपुर)

क्रमांक	वर्ष	पुरुष साक्षरता दर	महिला साक्षरता दर	कुल साक्षरता दर अनुसूचित जाति
1.	1991	08.43	05.21	13.64
2.	1961	10.02	08.49	18.51
3.	1971	11.34	10.39	21.73
4.	1981	12.57	10.52	23.09
5.	1991	13.24	10.94	24.18

स्रोत–जनगणना पुस्तिका जनपद हमीरपुर

1951 से 1991 के मध्य अनुसूचित जातियों की साक्षरता दर
(जनपद हमीरपुर)



तालिका संख्या–5.4

दलित परिवार के मुखियाओं की व्यवसाय की स्थिति

क्रमांक	व्यवसाय की प्रकृति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	अकुशल श्रमिक	100	50.00
2.	कुशल श्रमिक	21	10.50
3.	कृषक	33	16.50
4.	दुकानदार	24	12.00
5.	व्यापार	20	10.00
6.	क्लर्क / कार्यालय सहायक	01	00.50
7.	अधिकारी (सरकारी / गैरसरकारी)	01	00.50
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

व्यवसाय की प्रकृति तथा शिक्षा के मध्य, सह–सम्बन्ध की स्थिति होती है जहां तक दलित समाज के शैक्षणिक स्थिति का सम्बन्ध है वहां पर यह सह सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हो जाता है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में दलितों की व्यावसायिक प्रकृति कमोवेश परम्परागत एवं औसत स्तर की दृष्टिगत होती है। तालिका सं0–5.4 के वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि दलित समाज के परिवारों के मुखियाओं की व्यावसायिक प्रकृति में अकुशल श्रमिकों का प्रतिशतांक सर्वाधिक 50.00 (100) है। यह श्रमिक किसी कार्य विशेष में विशिष्टता या दक्षता प्राप्त नहीं होते बल्कि समयानुसार आय प्राप्ति हेतु कोई भी कर सकने वाले कार्य को करके आय प्राप्त करते हैं। इसके पश्चात कृषक कार्यों से सम्बद्ध वर्ग का स्थान आता है जिसका प्रतिशतांक 16.50 है। यह कृषक वर्ग या तो अपनी निजी कृषि योग्य भूमि पर उत्पादन कार्य करते हैं या फिर किसी अन्य उच्च वर्ग की कृषि योग्य भूमि पर श्रम करके जीवन निर्वहन हेतु संसाधन जुटाते हैं।

जो लोग स्वयं की भूमि पर उत्पादन करते हैं वह भूमि उन्हें शासन द्वारा पट्टे के रूप में प्रदान की गयी होती है। कुशल श्रमिकों का प्रतिशतांक 10.50 (21) है ये कुशल श्रमिक अपने परम्परागत व्यवसायों के रूप में कार्य करके आय अर्जित करते हैं। दुकानदारी और व्यापार करने वाले दलित मुखियाओं का प्रतिशतांक क्रमशः 12.00 एवं 10.00 है यह वे लोग हैं जिन्होंने शासन से प्राप्त होने वाले ऋण सुविधा का लाभ प्राप्त किया है तथा जिस उद्देश्य से ऋण प्राप्त किया है उससे अपनी दुकानदारी जैसे परचून, सिलाई, बढ़ईगिरी आदि का कार्य करते हैं या फिर व्यापार के रूप में घूम–घूमकर अपने व्यवसाय को सम्पादित करते हैं।

शासकीय सेवाओं जैसे क्लर्क, चपरासी अथवा अधिकारी के रूप में कार्य करने वाले मुखियाओं का प्रतिशतांक क्रमशः 00.50 (01), 00.50 (01) है, ये वे लोग हैं जिन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त करके शासन द्वारा प्रदत्त सुविधाओं और

संसाधनों का लाभ अर्जित करते हुए सेवाएं प्राप्त की हैं। इनका आयु समूह (30–35) तथा (35–40) वर्ष के अन्तर्गत है इनमें जागरूकता की झलक स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। उच्च आयु समूह के लोगों का शासकीय सेवाओं में न होने का कारण उनका परम्परागत दृष्टि का शिकार होना प्रतीत होता है। जिनका शिक्षा के प्रति कोई विशेष लगाव नहीं रहा है या फिर उन्हें परिस्थितिवश संसाधनों का लाभ प्राप्त करने में कठिनाई हुई है।

तालिका सारिणी सं0–5.5

दलित परिवार के मुख्यिाओं की आय की स्थिति

क्रमांक	आय (प्रतिमाह)	आवृत्ति	प्रतिशताँक
1.	500 प्रतिमाह	20	10.00
2.	500—1000	71	35.50
3.	1000—1500	56	28.00
4.	1500—2000	25	12.50
5.	2000—2500	18	09.00
6.	2500—3000	08	04.00
7.	3000—3500	01	00.50
8.	3500 से ऊपर	01	00.50
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

दलित समाज सदियों से निर्धनता का शिकार रहा है समय के कारण उनकी आर्थिक स्थिति में परिर्वतन हुए हैं किन्तु बुन्देलखण्ड क्षेत्र में निर्धनता का

विकराल स्वरूप अभी भी विद्यमान है। जिसमें दलित वर्ग इसका अधिक शिकार है। तालिका सं0–5.5 के अध्ययन से स्पष्ट होता है दलित मुखियाओं की मासिक आय अत्यधिक कम है जिससे उनका भरण–पोषण सरलता एवं सहजता से नहीं हो पाता है। 500 रुपये प्रतिमाह आय अर्जित करने वाले मुखियाओं का प्रतिशतांक 10.00 (20) है जबकि 500 से 1000 रुपये प्रतिमाह आय अर्जित करने वाले सदस्यों का प्रतिशतांक सर्वाधिक 35.00 है।

35000 रुपये प्रतिमाह आय अर्जित करने वाले मुखियाओं का प्रतिशतांक मात्र 00.50 है। इस श्रेणी में वे मुखिया आते हैं जो किसी शासकीय अथवा अर्द्ध शासकीय कार्यों में संलग्न हैं। चूँकि अकुशल श्रमिकों का प्रतिशतांक अधिक हैं और उनकी कार्यावधि अल्प होती है और वे मौसमी बेरोजगारी का शिकार होते हैं जिससे उनकी प्रतिमाह औसत आय कम होती है। जो लोग कृषि कार्यों में संलग्न होते हैं उन्हें बेगार के कार्य अधिक करने पड़ते हैं जिसका श्रम मूल्य उन्हें प्राप्त नहीं हो पाता है और उन्हें अल्प आय के कारण अभाव ग्रस्त जीवन जीने के लिए बाध्य होना पड़ता है।

रूढ़िवादिता तथा अन्धविश्वास की जड़े वर्तमान वैज्ञानिक युग में आज भी दलित समाज में जमी हुई हैं जिससे इनके परिवारों में सदस्यों की नियंत्रित संख्या का अभाव पाया जाता है। परिणामतः उनके परिवारों के भरण–पोषण की समस्या गंभीर बनी रहती है और वे पारिवारिक सदस्यों के विकास के आधुनिकतम तरीकों को अपनाने में कठिनाई अनुभव करते है।

तालिका संख्या–5.6

व्यवसाय की कालानुसार प्रकृति

क्रमांक	प्रकृति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	पूर्णकालिक	26	13.00
2.	अशंकालिक	174	87.00
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या–5.6 से स्पष्ट होता है कि दलित समाज के परिवारों की व्यावसायिक प्रकृति कालानुसार सन्तोषप्रद नहीं है अध्ययन हेतु चयनित परिवारों में से मुख्यिाओं के व्यवसाय की प्रकृति अशंकालिक रूप में अधिक है इसका प्रतिशतांक 87.00 (174) है। अधिकांश दलित परिवारों के मुखियाओं का व्यवसाय वर्ष पर्यन्त नही चलता वे आंशिक रूप में कार्य की उपलब्धता के आधार पर कार्य करते हैं जिससे उनकी आय कम होती है। अध्ययन क्षेत्र के 13.00 प्रतिशत मुखिया ही ऐसे हैं जो पूर्णकालिक व्यवसायों से संलग्न रहते हैं इनकी आय तुलनात्मक रूप से अंशकालिक व्यावसायिक प्रकृति वाले लोगों से अधिक होती है।

पूर्णकालिक कार्यों में संलिप्तता का प्रतिशतांक कम होने का कारण उनकी अकुशलता, दक्षता का अभाव, शिक्षा की नगण्यता, तथा परम्परागत व्यवसायों को करने की प्रवृत्ति आदि है।

तालिका संख्या–5.7

दलित समाजों में परिवार की प्रकृति

क्रमांक	परिवार की प्रकृति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	संयुक्त	111	55.50
2.	एकाकी	89	44.50
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

बदलते सामाजिक परिवेश एवं बढ़ती भौतिकता के चलते भारतीय हिन्दू सामाजिक व्यवस्था की विशेषता रहे संयुक्त परिवार व्यवस्था में परिवर्तन परिलक्षित हो रहे हैं, संयुक्त परिवारों के स्थान पर एकाकी अथवा नाभिक परिवारों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में कमोवेश पारिवारिक संरचना में इसी प्रकार के परिवर्तन हो रहे हैं परिवार के सदस्य काम की तलाश में अपने निवास स्थान से भिन्न दूसरे स्थानों में जाकर अधिवासित हो रहे हैं किन्तु उनका संयुक्त परिवार अर्थात मूल परिवारों से सम्पर्क बना रहता है और वे निम्न सामाजिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक उत्सवों में अपने मूल परिवारों में कुछ समय के लिए आकर रहते हैं, यह सम्पर्क उनका प्रायः बना रहता है।

जहाँ तक दलित समाजों की पारिवारिक संरचना का प्रश्न है तो वे इस परिवर्तन से अछूते नहीं है। अध्ययन क्षेत्र में अधिवासित दलित परिवारों में संयुक्त परिवारों की संख्या 111 (55.50) हैं जबकि एकाकी परिवारों की संख्या 89 है। संयुक्त परिवारों की संख्या अधिक होने के कारण उन्हें उपलब्ध कार्यों के प्रकार एवं स्थान सीमित हैं। क्योंकि दलित परिवारों के सदस्य अपने अधिवासित क्षेत्र के समीप हीं कार्य करते हैं तथा स्थानाभाव के कारण वे एक ही साथ

निवास करते हैं तथा उनकी आय इतनी अधिक नहीं होती कि वे अलग मकान बना सकें या किराये के मकान में रह सकें, एकाकी परिवारों का जो प्रतिशतांक स्पष्ट होता है वह उन परिवारों का है जिनके सदस्य अपने सम्बन्धों का लाभ उठाकर अधिवासों से दूर जाकर कोई कार्य करते हैं और अपने संयुक्त परिवारों से अलग होकर अधिवासित हो जाते हैं।

तालिका संख्या–5.8

दलित परिवार की महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति

क्रमांक	शैक्षणिक स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	अशिक्षित	131	68.97
2.	साक्षर / प्राथमिक	32	16.84
3.	पूर्व माध्यमिक	20	10.52
4.	हाईस्कूल	05	02.63
5.	इण्टरमीडिएट	01	00.52
6.	स्नातक	01	00.52
7.	परास्नातक	00	00.00
	योग	**190**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 5.8 में दलित परिवार के मुखियाओं की पत्नियों की शैक्षणिक स्थिति का वर्गीकरण किया गया है। इन परिवार की महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति अत्यन्त निराशा जनक है। अध्ययन क्षेत्र में 131 (68.97) मुखियाओं की पत्नियाँ अशिक्षित है जबकि एक भी महिला परास्नातक स्तर तक

शिक्षा प्राप्त नहीं है। साक्षर और प्राथमिक स्तर तक शिक्षा प्राप्त किए महिलाओं का प्रतिशतांक 16.84 है। पूर्व माध्यमिक स्तर तक शिक्षा प्राप्त महिलाओं की संख्या 20 तथा प्रतिशतांक 10.52 है जबकि हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट तक शिक्षा प्राप्त महिलाओं की संख्या 05 तथा 01 है तथा स्नातक स्तर तक मात्र 01 महिला में शिक्षा प्राप्त की है।

तालिका के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दलित परिवार की महिलाओं में शिक्षा प्राप्त करने के प्रति कोई विशेष रूचि नहीं रही है जिसका प्रभाव उनके परिवारों में देखा जा सकता है।

तालिका संख्या–5.9

दलित परिवारों के बच्चों के स्कूल जाने की स्थिति

क्रमांक	बच्चों के स्कूल जाने की स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	हाँ	152	76.00
2.	नहीं	16	08.00
3.	कभी–कभी	32	16.00
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 5.9 में दलित समाज के 200 परिवारों के मुखियाओं से प्राप्त उत्तरों के आधार पर स्पष्ट हुआ कि उनके परिवार के बच्चों की विद्यालय जाने की आवृत्ति 152 है जिसका प्रतिशतांक 76.00 है। 16.00 प्रतिशत परिवारों के बच्चे कभी–कभी विद्यालय जाते हैं अर्थात उनमें विद्यालय जाने की प्रवृत्ति गम्भीर नहीं होती है जबकि 08.00 प्रतिशत परिवारों के सदस्य बिल्कुल ही

विद्यालय नहीं जाते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए है किन्तु दलित समाजों में बच्चों की शिक्षा के प्रति उतनी गम्भीरता परिलक्षित नहीं होती है जितनी कि सामान्य और पिछड़ी जातियों के सदस्यों में दिखाई देती है। यद्यपि दलित समाजों के शैक्षणिक विकास के लिए पर्याप्त आकर्षक योजनाएं प्रारम्भ की गयी है। किन्तु शिक्षा के प्रति जो जागरूकता होनी चाहिए वह नहीं हो पायी।

तालिका संख्या–5.10

बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान देने की स्थिति

क्रमांक	स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	हाँ	66	35.86
2.	नहीं	85	46.21
3.	कभी–कभी	33	17.93
	योग	**184**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

जिन दलित परिवारों के बच्चे विद्यालय जाते हैं उन परिवारों के मुखिया अपने बच्चों की पढ़ाई पर कितना ध्यान देते हैं इसका वर्गीकरण तालिका संख्या–5.10 में प्रस्तुत किया गया है। तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है ऐसे मुखिया जो अपने बच्चों की पढ़ाई पर हमेशा ध्यान रखते हैं उनकी संख्या 66 और प्रतिशतांक 35.86 है जबकि ऐसे मुखियाओं का प्रतिशतांक सर्वाधिक 46.21 है जो अपने बच्चों की पढ़ाई पर कभी भी ध्यान नहीं देते हैं। ऐसे

मुखियाओं का प्रतिशतांक 17.93 है जो अपने बच्चों की पढ़ाई पर कभी–कभी ध्यान देते हैं।

जिन परिवारों के मुखिया अपने बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान नहीं देते वे बच्चें को विद्यालय के भरोसे छोड़ देते हैं या फिर ट्यूशन की व्यवस्था करके अपनी जिम्मेदारी से मुक्त हो जाते हैं किन्तु ट्यूशन देने वाले परिवारों की संख्या यदा–कदा ही मिलती है क्योंकि इन परिवारों के पास इतना धन या पैसा नहीं होता कि वे अपने बच्चों को ट्यूशन दिला सकें। संरक्षकों द्वारा अपने बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान न दे पाने का अहम् कारण उनकी अशिक्षा तथा उनकी व्यावसायिक व्यस्तता होती है क्योंकि वे अपनी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु दिन पर्यन्त संघर्ष करते रहते हैं।

जो संरक्षक बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान देते हैं वह मात्र औपचारिकतावश होती है वह भी बच्चों की विद्यालय जाने की स्थिति, काम पूरा कर लेने की स्थिति आदि की जानकारी तक सीमित होती हैं।

तालिका संख्या–5.11

बच्चे की पढ़ाई के प्रति माँ का दृष्टिकोण

क्रमांक	माँ का दृष्टिकोण	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	हाँ	72	37.89
2.	नहीं	118	62.11
	योग	**190**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

जहाँ तक दलित समाज के परिवारों में बच्चों की पढ़ाई की ओर ध्यान देने का प्रश्न है तो माताएं अपने बच्चों की पढ़ाई के प्रति कोई विशेष रूचि नहीं रखती हैं। तालिका संख्या–5.11 में बच्चों की पढ़ाई के प्रति दृष्टिकोण को दर्शाया गया है जिससे स्पष्ट होता है कि बच्चों की पढ़ाई की ओर ध्यान देने वाली महिलाओं का प्रतिशतांक 37.89 है। जो महिलाएं अपने बच्चों की पढ़ाई के प्रति ध्यान नहीं देती उनका प्रतिशतांक सर्वाधिक 62.11 है।

दलित महिलाओं का बच्चों की पढ़ाई के प्रति रूचि न रखने के कारणों में से अशिक्षा जैसे कारक प्रभावी भूमिका निभाते है तथा अन्य कारणों में से महिलाओं का किसी न किसी कार्य में व्यस्त रहना है, महिलाओं की मान्यता होती है कि यदि काम न करेंगे तो रोटी कैसे मिलेगी, इसलिए शिक्षा से अधिक काम का महत्व अधिक होता है।

तालिका संख्या–5.12

बच्चों की पढ़ाई की स्थिति जानने के लिए विद्यालय जाने की स्थिति

क्रमांक	स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	हाँ	19	10.33
2.	नहीं	124	67.39
3.	कभी–कभी	41	22.28
	योग	**184**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या–5.12 में दलित परिवारों के बच्चों की पढ़ाई की स्थिति जानने के लिए परिवार के मुखियाओं की विद्यालय जाने की स्थिति का वर्गीकरण किया गया है। तालिका से स्पष्ट होता है कि ऐसे मुखियाओं की संख्या सर्वाधिक है जो अपने बच्चें की पढ़ाई की स्थिति, उनके क्रियाकलापों, उनकी विद्यालय में उपस्थिति तथा पढ़ाई के स्तर को जानने के लिए विद्यालय में कभी नहीं जाते हैं ऐसे अभिभावकों की संख्या 124 तथा प्रतिशतांक 67.39 है। 41 मुखिया ऐसे हैं जो अपने बच्चों की पढ़ाई की स्थिति को जानने के लिए विद्यालय में कभी–कभी जाते हैं। जबकि 10.33 प्रतिशत मुखिया ऐसे हैं जिनकी अपने बच्चों की विद्यालय में स्थिति के सम्बन्ध में रूचि रहती है और वे समय–समय पर विद्यालय में जाकर अपने बच्चों की शैक्षणिक अभिरूचियों की जानकारी प्राप्त करते रहते हैं। ऐसे परिवार के बच्चों के पढ़ाई का स्तर उन बच्चों की तुलना में अच्छा रहता है जिनके अभिभावक विद्यालय में नहीं जाते हैं। ऐसे अभिभावक या मुखियाओं का शैक्षणिक स्तर अन्य की तुलना में अच्छा होता है तथा उनकी पत्नियाँ भी कमोवेश शैक्षणिक आधार प्राप्त किये होती हैं और समय–समय पर अपने बच्चों की पढ़ाई में रूचि रखती हैं तथा उनके शैक्षणिक विकास हेतु जागरूक रहती हैं।

तालिका संख्या–5.13

बच्चों की बीच में पढ़ाई छोड़ देने की स्थिति

क्रमांक	पढ़ाई छोड़ देने की स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	हाँ	155	82.02
2.	नहीं	34	17.98
	योग	**189**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

उदारीकरण तथा वैश्वीकरण के इस युग में जहां एक ओर उच्च शिक्षा प्राप्त करने की होड़ सी लगी हुई है बैंकिंग संस्थान, आर्थिक संसाधन उन छात्र–छात्राओं को उपलब्ध करा रहे हैं जो उच्च शिक्षा प्राप्त करना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में बुन्देलखण्ड क्षेत्र के हमीरपुर जनपद में दलित छात्र–छात्राओं में बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने की स्थिति बनी हुई है।

तालिका संख्या 5.13 से स्पष्ट होता है कि परिवार के मुखिया यह स्वीकार करते हैं कि उनके बच्चे बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। ऐसे मुखियाओं का प्रतिशतांक 82.02 है। मात्र 17.98 प्रतिशत मुखियाओं ने स्वीकार किया कि उनके बच्चों ने बीच में पढ़ाई नहीं छोड़ी बल्कि उच्च शिक्षा प्राप्त की या कर रहे हैं। बच्चों के बीच में पढ़ाई छोड़ने का कारण आर्थिक निर्धनता एक महत्वपूर्ण कारक है जो बच्चों को अपनी पढ़ाई आगे पढ़ाने में बाधक का कार्य करती है। मुखियाओं ने स्वीकार किया कि बच्चों द्वारा पढ़ाई छोड़ने के बाद उन्हें किसी न किसी कार्य में लगा दिया जाता है जो परिवार के भरण पोषण में अपना योगदान देते हैं। बीच में पढ़ाई छोड़ देने वाले परिवार के मुखियाओं का मानना है कि अधिक शिक्षा प्राप्त कर लेने से उन्हें रोजगार की कोई गारण्टी नहीं मिल जाती है इसलिए अपनी मौलिक आवश्यकताओं को जुटाना उनकी प्राथमिकता होती है।

तालिका संख्या–5.14

पढ़ाई छोड़ देने का स्तर

क्रमांक	पढ़ाई छोड़ देने का स्तर	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	प्राथमिक के बाद	91	58.72
2.	जूनियर के बाद	31	20.00
3.	हाईस्कूल के बाद	15	09.67
4.	इण्टर के बाद	12	07.74
5.	स्नातक के बाद	04	02.58
6.	परास्नातक के बाद	02	01.29
	योग	**155**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

दलित परिवारों के ऐसे बच्चों का प्रतिशतांक सर्वाधिक 58.72 है जो प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा गृहण कर लेने के पश्चात पढ़ाई छोड देते हैं, तालिका संख्या 5.14 से स्पष्ट होता है कि जूनियर तक की शिक्षा गृहण करने के पश्चात विद्यालय/पढ़ाई छोड़ देने वाले बच्चों का प्रतिशतांक 20.00 है जबकि हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट तक की शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात पढ़ाई छोड़ देने वाले छात्र–छात्राओं का प्रतिशतांक क्रमशः 9.67 तथा 7.74 हैं। 2.58 प्रतिशत स्नातक तथा 1.29 प्रतिशत छात्र परास्नातक तक की शिक्षा प्राप्त करते हैं। कुछ ही परिवारों के बच्चे परास्नातक के पश्चात की उच्च उपाधियाँ प्राप्त करते हैं ऐसे परिवारों का प्रतिशत अल्प है। वे स्वेच्छा और अपने प्रयासों से उच्च उपाधियाँ प्राप्त कर पाते हैं परिवार के मुखियाओं का उसमें योगदान कमोवेश ही होता है।

तालिका संख्या–5.15

बीच में पढ़ाई छोड़ने का कारण

क्रमांक	कारण	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	फेल होने के कारण	51	32.91
2.	पढ़ाई से रोटी नहीं मिलती	60	38.72
3.	काम मिल जाने के कारण	10	06.45
4.	फीस न होने के कारण	25	16.12
5.	अन्य कारणों से	09	05.80
	योग	**155**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

दलित परिवारों के जो बच्चे बीच में पढ़ाई छोड़ देते हैं उनके कारणों के सम्बन्ध में मुखियाओं के दृष्टिकोणों को तालिका संख्या 5.15 में दर्शाया गया है। मुखियाओं की स्वीकारोक्ति में सर्वाधिक प्रतिशतांक (38.72) इस कारण को लेकर है कि पढ़ाई से रोटी नहीं मिलेगी। 32.91 प्रतिशत मुखियाओं ने बताया कि उनके बच्चे ने फेल होने के कारण पढ़ाई छोड़ी। जबकि 16.12 प्रतिशत मुखियाओं ने फीस न होने को एक कारण माना। 6.45 प्रतिशत मुखियाओं ने माना की पढ़ाई के दौरान ही बच्चों को काम पर लगा दिया गया जिससे पढ़ाई छूट गयी। 5.80 प्रतिशत का मानना है कि परिवार सम्बन्धी अन्य कारणों से बीच में ही पढ़ाई छोड़नी पड़ी और उनके परिवार के बच्चे आगे की पढ़ाई नहीं कर सके।

तालिका संख्या–5.16

बच्चों को शिक्षा दिलाने के स्तर से सम्बन्धित दृष्टिकोण

क्रमांक	स्तर	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	प्राथमिक स्तर तक	66	33.00
2.	जूनियर स्तर तक	49	24.50
3.	हाईस्कूल स्तर तक	53	26.50
4.	इण्टर स्तर तक	21	10.50
5.	डिग्री स्तर तक	10	05.00
6.	अन्य	01	00.50
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 5.16 में दलित परिवारों के मुखियाओं का बच्चों को शिक्षा दिलाने के स्तर के दृष्टिकोण को जानने का प्रयास किया गया जिसमें 33.00 प्रतिशत परिवार के मुखियाओं की मान्यता है कि प्राथमिक स्तर तक की शिक्षा पर्याप्त होती है इस स्तर तक बच्चे को लिखना पढ़ना तथा हिसाब करना आ जाता है। स्नातक स्तर तक बच्चों को शिक्षा दिलाने का दृष्टिकोण रखने वाले मुखियाओं का प्रतिशतांक 5.0C है। जबकि स्नातक से ऊपर शिक्षा दिलाने की इच्छा रखने वालों की संख्या 01 (00.50) है। जूनियर, हाईस्कूल तथा इण्टरमीडिएट तक की शिक्षा दिलाने का दृष्टिंकोण रखने वालों का प्रतिशतांक क्रमशः 24.50, 26.50 तथा 10.50 है।

तालिका के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि दलित परिवारों में शिक्षा के प्रति जागरूकता की कमी अभी भी परिलक्षित होती है। कमोवेश इस दृष्टिकोण के पीछे उनके सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारण प्रभावी हो सकते हैं।

तालिका संख्या–5.17

शिक्षा दिलाने से सम्बन्धित पुत्र और पुत्री के सम्बन्ध में दृष्टिकोण

क्रमांक	दृष्टिकोण	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	पुत्र को	131	60.50
2.	पुत्री को	60	30.00
3.	दोनों को	19	09.50
4.	किसी को नहीं	00	00.00
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 5.17 में दलित परिवारों के मुखियाओं का दृष्टिकोण जानने का प्रयास किया गया कि पुत्र या पुत्री में से किसे अधिक शिक्षा दिलानी चाहिए। इस सम्बन्ध में पुत्र का शिक्षा दिलाने का दृष्टिकोण रखने वालों की संख्या 131 (60–50) है जबकि 30.0 प्रतिशत मुखिया पुत्री को शिक्षा दिलाने का दृष्टिकोण रखते हैं। 9.50 प्रतिशत मुखिया मानते हैं कि पुत्र और पुत्री दोनों को ही बिना किसी भेदभाव के शिक्षा दिलानी चाहिए। ऐसे मुखियाओं का प्रतिशतांक 00.0 है जो किसी को भी शिक्षा न दिलाने के पक्ष में है।

पुत्री को शैक्षणिक अवरोध का कारण उनके समाज में पायी जाने वाली परम्पराएं और अन्ध विश्वास है जिनके कारण नारी शिक्षा को उतना बढ़ावा नहीं मिल पा रहा है जितना कि मिलना चाहिए। कुछ मुखिया पुत्र या पुत्री को शिक्षा दिलाने का दृष्टिकोण तो रखते हैं किन्तु संसाधनों और पारिवारिक समस्याओं के चलते वे अपने बच्चों को शिक्षा नहीं दिला पा रहे हैं।

तालिका संख्या–5.18

बच्चे की पढ़ाई से सन्तुष्टि की स्थिति

क्रमांक	सन्तुष्टि की स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	हाँ	57	30.98
2.	नहीं	35	19.02
3.	कुछ नहीं कह सकते	92	50.000
	योग	**184**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

जिन दलित परिवारों के बच्चे शिक्षा प्राप्त करने विद्यालयों में जाते हैं उनके मुखियाओं की सन्तुष्टि की स्थिति को तालिका सं0 5.18 में दर्शाया गया है। ऐसे मुखियाओं का प्रतिशतांक अधिक है जो बच्चे की पढ़ाई की स्थिति के सम्बन्ध में कुछ भी न कह सकने की स्थिति में हैं उनका प्रतिशतांक 50.00 है। जबकि 19.02 प्रतिशत मुखिया ऐसे हैं जो बच्चों की पढ़ाई से सन्तुष्ट नहीं है। 30.98 प्रतिशत मुखिया बच्चों की पढ़ाई से सन्तुष्ट हैं वे यदा कदा ही यह जानने का प्रयास करते हैं कि बच्च विद्यालय जाता है या नहीं, बच्चे के पास होने मात्र को आधार मानकर अपनी सन्तुष्टि व्यक्त करते हैं।

तालिका संख्या–5.19

बच्चों को किन विद्यालयों में पढ़ाना चाहिए

क्रमांक	विद्यालय की प्रकृति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	सरकारी	35	17.50
2.	गैर सरकारी	152	76.00
3.	मिशनरी द्वारा संचालित	13	06.50
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 5.19 में दलित परिवारों के मुखियाओं का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में प्रस्तुत किया गया है कि वे अपने बच्चों को किस प्रकृति के विद्यालयों में पढ़ाना चाहेंगे। 76.00 प्रतिशत मुखियाओं का मानना है कि अपने बच्चों को गैर सरकारी अर्थात प्राइवेट, कान्वेण्ट आदि विद्यालयों में पढ़ाना चाहेंगे क्योंकि इन विद्यालयों में अध्ययन, अध्यापन का अच्छा वातावरणहोता है और बच्चों का शैक्षणिक विकास अच्छा होता है। 17.50 प्रतिशत मुखिया मानते हैं कि बच्चों को सरकारी विद्यालयों में पढ़ाना चाहिए क्योंकि वहाँ फीस कम लगती है शासकीय सुविधाओं–पुस्तक, छात्रवृत्ति, मिड डे मील आदि की व्यवस्था रहती है और परिवार पर आर्थिक बोझ नहीं पड़ता और बच्चे की पढ़ाई भी हो जाती है। हमीरपुर जनपद में वैसे तो मिशनरीज विद्यालयों की कमी है फिर भी जागरूक दलित मुखियाओं का मानना है बच्चों को मिशनरीज विद्यालयों में शिक्षा दिलानी चाहिए ऐसे मुखियाओं का प्रतिशतांक 06.50 है।

****

अध्याय—6

दलित समाज में आर्थिक एवं शैक्षणिक सह–सम्बन्ध की स्थिति

- भारतीय शिक्षा का ऐतिहासिक परिदृश्य
- स्वतन्त्र भारत में शिक्षा
- शिक्षा का उत्तरदायित्व
- भारतीय संविधान तथा शिक्षा
- राज्य के नीति निर्देशक तत्व
- शिक्षा और केन्द्र सरकार
- स्वतन्त्र भारत में केन्द्र में शिक्षा का प्रशासन
- बुन्देलखण्ड क्षेत्र

दलित समाज में आर्थिक एवं शैक्षणिक सह–सम्बन्ध की स्थिति

पूर्व अध्याय में दलित समाज में शैक्षणिक जागरूकता की स्थिति का विवेचन प्रस्तुत किया गया। प्रस्तुत अध्याय में दलित समाज में आर्थिक एवं शैक्षणिक सह सम्बन्धों की स्थिति की विवेचना की गयी है–

राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था और शिक्षा का दारिद्रय, भारतीय अर्थव्यवस्था का एक पिछड़ी हुई अर्थव्यवस्था का स्वरूप है, जहां उपयुक्त प्राकृतिक साधन तथा अप्रयुक्त मानव शक्ति समानान्तर रूप से आर्थिक ढ़ाँचे को कृशकाय बनाये हुये हैं। 19वीं शताब्दी की ब्रिटिश कालीन आर्थिक नीतियों के कारण अर्थव्यवस्था के पराभाव की प्रक्रिया शुरू होकर आर्थिक गतिहीनता में बदल गई। भारतीय अर्थव्यवस्था का प्रधान सम्बल कृषि है जिसकी गति धीमी है। औद्योगिक विकास विकृत रूप धारण किये हुये हैं, संचरनात्मक परिवर्तन के अभाव में अर्थ व्यवस्था के प्राथमिक, द्वितीयक व तृतीयक तीनों ही क्षेत्र कमोवेश पिछड़े हुये हैं। आज भारतीय अर्थव्यवस्था में औपनिवेशिक विसंगतियाँ विद्यमान हैं।

अर्थव्यवस्था की इस भूमिका से जब शिक्षा का सह सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं तो बहुत ही प्राकृतिक लगता है। यह सम्बन्ध व्युत्पन्न सम्बन्ध है। भारत में जनसंख्या का आकार विशाल है एवं यहां संघीय राजनीतिक संरचना है तथा देश अर्थव्यवस्था के केन्द्रीय व राज्य स्तरीय आयोजन को प्रतिबद्ध है। ऐसी स्थिति में शायद नियोजन प्रक्रिया में शिक्षा का विचार अतिरिक्त महत्व प्राप्त कर लेता है। कुछ अर्थों में मात्रात्मक व गुणात्मक दृष्टि से अपर्याप्त होने के बावजूद भी भारत में, संयुक्त एवं आधुनिक रूप से निर्मित शिक्षा का ढ़ाँचा विद्यमान है।

हमने संवैधानिक प्रक्रिया से प्रेरित होकर स्वतंत्र भारत में शिक्षा के प्रसार का सोपान बनाया है। लेकिन आश्चर्य की बात यह है कि अब भी हमारी शिक्षा व्यवस्था संविधान में दिये गये निर्देशक सिद्धान्तों के अनुरूप 14 वर्ष के सभी बच्चों को मुफ्त प्राथमिक शिक्षा प्रदान करने में असमर्थ रही है। उदाहरणार्थ, प्राथमिक शिक्षा में वर्ष 1951 में 2 करोड़ 23 लाख बच्चें को प्रवेश दिया गया। यह संख्या वर्ष 1979 में बढ़कर 9 करोड़ 15 लाख हो गई। इसके बावजूद भी प्राइमरी व मिडिल स्कूल में भर्ती होने वाले प्रत्येक 3 बच्चों के पीछे प्रवेश लेने वाला बच्चा इस सुविधा से वंचित रह जाता है। अभी तक जिन बच्चों को यह सुविधा नहीं मिली है वे उन आधे दर्जन राज्यों से हैं जहां पर्याप्त मात्रा में संसाधन उपलब्ध नहीं है वस्तुत भारत में उच्च शिक्षा का विवेचन भी हमारे विचार का बिन्दु होना चाहिये। आज देश में स्वायत्त उपनिकाय व उच्च शिक्षा के महाविद्यालय है, इस सम्बन्ध में हमारा दृष्टिकोण "मानव पूँजी निर्माण की धारणा" से सम्बन्धित रहा है, जो मानवीय विकास कार्यक्रम का अंतिम प्रक्रम है। आर्थिक दृष्टि से यदि लोगों की पूँजी को परिसम्पत्ति मान लिया जाये तो यह परिसम्पत्ति अपने कार्यकारी जीवन में उत्पादन में सहायक होती है। मानवीय संसाधन विकास के कार्यक्रम की चार मुख्य संभावनायें–

1. देशवासियों को जिम्मेदार नागरिक बनाकर अपनी भूमिका अदा करने को तैयार करना।
2. लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोण, अपने अधिकारों व दायित्वों के प्रति जागरूकता तथा विकास प्रक्रिया के प्रति चेतना पैदा करना।
3. उनमें नैतिक, सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों के प्रति आस्था पैदा करना।
4. लोगों के दृष्टिकोण में इस प्रकार का परिवर्तन लाना ताकि वे राष्ट्रीय विकास कार्यक्रमों में अपना योगदान दें।

भारतीय संदर्भ में यदि मानव पूँजी निर्माण की वकालत करें तो एक संभावित प्रश्न यह उठता है कि यहां लागत सुलभता कितनी है? यह प्रश्न प्राथमिक अवस्था में अधिक महत्वपूर्ण प्रतीत हो सकता है, लेकिन दीर्घकाल में इसका महत्व स्वतः ही कम हो जाता है क्योंकि जिन देशों ने इस मुख्य धारा में जाने की कोशिश की, वे इसकी विलाभदायकता से परिचित हुए। वैसे भी यदि व्यापक अर्थ में देखा जाये तो शिक्षा का आशय जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया से है। मानव–जीवन की प्रत्येक अवस्था में बौद्विक संसाधनों का विकास होता है। यह महत्वपूर्ण है कि जन–समुदाय को विकास से जो साधन उपलब्ध हैं उनमें शिक्षा बहुत ही कारगर है। शिक्षा सम्बन्धी आयोजन का लक्ष्य यह है कि शिक्षा का औपचारिक व अनौपचारिक पद्धतियों से जोड़कर मानव के सम्पूर्ण विकास को प्रधानता दी जाये।

भारत में आयोजन का उद्देश्य संस्थाओं की संख्या बढ़ना व सुविधायें पैदा करना न होकर उनसे प्राप्त होने वाले परिणाम से होना चाहिये। भारत जैसे विकासशील देश में जहाँ अभी आर्थिक विकास की संक्रमण की अवस्था है, मानव–पूँजी, भौतिक–पूंजी की अपेक्षा अधिक महत्वपूर्ण है। हमारे यहां जनसंख्या ज्यादा है तथा अधिकांश जनसंख्या अकुशल हैं। ऐसी परिस्थितियों में मानव निर्माण का महत्व और बढ़ जाता है, क्योंकि इसमें हम–

(1) भौतिक पूँजी का प्रयोग अधिक कुशलता से कर सकते हैं,

(2) इससे आधुनिक जानकारी प्राप्त होती है,

(3) उत्पादकता में वृद्धि होती है,

(4) अभिवृत्तियों का आधुनिकीकरण होता है

(5) कृषि उद्योग क्षेत्र में मानव–पूँजी के माध्यम से संवृद्धि के उदाहरण मिलते है।

चूंकि भारत में द्वितीय पंचवर्षीय योजना से महत्वाकांक्षी औद्योगिक व्यूह रचना आरम्भ की है। स्ट्रीमलिन का कहना है कि श्रमिकों की उत्पादकता में प्राथमिकता में वृद्धि होती है। उनका अनुमान है कि श्रमिकों की उत्पादकता में प्राथमिक शिक्षा से 40 गुणा, माध्यमिक शिक्षा से 100 गुणा व उच्चतर शिक्षा से 300 गुणा वृद्धि होती है। वे यह भी मानते हैं कि इसका विकास में प्रारम्भिक चरण में अधिक योगदान होता है, विशेषकर आधुनिक रूप देने और उद्योगों की गति तेज करने में। विवेचना से यह बात सामने आती है कि शिक्षा पर किये जाने वाले व्यय से, जो वस्तुतः निवेश है, मानव पूँजी के रूप में प्रतिफल सामने आता है। यह बात अलग है कि शिक्षा के किस स्तर से कितना प्रतिफल मिलता है। भारत में 1960 के एक अध्ययन के अनुसार शिक्षा व्यय माध्यमिक व उच्च शिक्षा पर। क्रमशः इस प्रकार शिक्षा का स्तर जैसे ऊँचा होता जाता है प्रतिफल कम होता जाता है। इसलिये इस बात पर बल दिया जाना चाहिये कि रोजगार उत्पादन की दृष्टि से शिक्षा नीति में संशोधन लाकर प्राथमिक शिक्षा पर अधिक बल दिया जाए।

माध्यमिक और उच्च शिक्षा में पिछले तीन दशकों में काफी सुविधायें बढ़ायी गई लेकिन शिक्षा सम्बन्धी राष्ट्रीय नीति में गुणात्मक सुधार और प्रणाली को पुनगर्ठित करने की परिकल्पना की, उसे पूरा करने की दिशा में काफी लम्बा सफर तय करना है। शैक्षणिक कार्यक्रमों के व्यावहारिक पहलुओं के एकीकरण और सभी विकासमान अभिकरणों के निकट सहयोग से लाभप्रद रोजगार पाने में अभी भी सुधार नहीं हुआ है, जबकि बढ़ती हुई जनसंख्या के लिये रोजगार में वृद्धि आवश्यक है। जहां तक उच्च शिक्षा का सम्बन्ध है इसके लिए सुविधाओं का अवांछिनीय विकास हुआ है। विशिष्ट रूप से कला, वाणिज्य और मानविकी में स्नातक परीक्षाओं को उत्तीर्ण करना अधिक सरल है जिसका परिणाम बढ़ती हुई शिक्षित बेरोजगारों के रूप में देखने को मिल रहा है।

आज हमारे यहां शिक्षित व्यक्ति को 'नो वैकेन्सी' का नोटिस बोर्ड हर जगह निराशा प्रदान करता है। भारत में उच्च शिक्षा का इतना अधिक प्रसार हुआ है कि गुणात्मक दृष्टि से शिक्षा का दारिद्रय उभरकर सामने आ गया है। शिक्षा के स्तर में पिछले दशक में भारी गिरावट आई है। रोजगार कार्यक्रमों में बढ़ोत्तरी के बावजूद बेरोजगारी दिन पर दिन बढ़ती जा रही है।

अभी तक शिक्षा आयोजन का विकास के लिए कोई ऐसी प्रणाली बनाने की शिक्षा में सफलता नहीं मिली हैं, जिससे अधिकतम लाभ उठाया जा सके। इसका प्रतिफल यह हुआ कि शैक्षणिक कार्यक्रमों में उच्च स्तर बनाये रखने, विद्वतापूर्ण कार्यों को प्रोत्साहन देने और ज्ञान के भण्डार से राष्ट्रीय महत्व के वैज्ञानिक और तकनीकी कौशल को विकसित करने में शिक्षा प्रणाली अपनी भूमिका ढंग से नहीं निभा पाई है। वर्तमान परिस्थितियों में भारत में आधुनिक आर्थिक विकास के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के दारिद्रय के उन्मूलन की आवश्यकता महसूस होती है। इसके लिए कारगर कदम उठाने की आवश्यकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था व शिक्षा के क्षेत्र में रचनात्मक प्रवेश, अनौपचारिक शिक्षा पर बल, प्राथमिक शिक्षा पर अनवरत बल, प्रगतिशील शिक्षण–शुल्क, प्रवेश की दोहरी नीति समाप्त करना, अर्थव्यवस्था को मानव पूँजी निर्माण के माध्यम से विकसित करने के लिए अपरिहार्य है।

शिक्षा का अर्थशास्त्र

शिक्षा एवं आर्थिक व्यवस्था आज का ज्वलन्त व विवादास्पद विषय है। वर्तमान परिस्थियितों में इस विषय का महत्व और भी बढ़ता जा रहा हैं। कुछ प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियों की रचनाओं में शिक्षा शास्त्रियों के समान रूचियों के बिखरे हुए संदर्भ यहाँ वहाँ दिखायी देते हैं। समकालीन परिस्थितियों में इस धारणा ने काफी महत्व प्राप्त किया है कि बिना एक दूसरे के विचारों को ठीक

से समझे एवं आधुनिकीकरण के संयुक्त प्रयास के बिना न तो अर्थशास्त्रियों के ही और न ही शिक्षा–शास्त्रियों के उद्देश्य प्राप्त किये जा सकते हैं। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

शिक्षा का अर्थशास्त्र आर्थिक अध्ययन की एक अभिनव शाखा है। यह बात कुछ स्पष्ट रूप से 1960 के दशक के शुरू में उभरनी शुरू हुई एवं पिछले तीन दशक में स्थिरता प्राप्त करके इसने शिक्षा एवं आर्थिक विकास, शिक्षा एवं विनियोग, शिक्षा एवं रोजगार की समस्या तथा शिक्षा एवं जनशक्ति विकास के प्राणाधार क्षेत्र खोल दिए। मार्क्सवादी विचारधारा ने इस संधारणा को गति दी।

यह सम्पूर्ण विचारधारा **शुल्ज, गैरी बेकर, एडवर्ड डेनिसन, लार्ड बैजी एवं अन्य दूसरे अर्थशास्त्रियों** द्वारा आर्थिक क्रियाओं, शिक्षा पर व्यय, स्वास्थ्य, प्रवास, पोषण, स्वच्छता तथा कुछ अन्य महत्वपूर्ण क्रियाऐं, जो कि पहले केवल उद्व्यय मानी जाती थीं, के दृष्टिकोण से विकसित की गई हैं। अब इन आर्थिक क्रियाओं को आर्थिक साध्यों की प्राप्ति का महत्वपूर्ण साधन माना जाता है। ये क्रियाऐं व्यक्तियों की आमदनी, वैयक्तिक आय विवरण, साधन आवंटन एवं लोक वित्त संचालन के लिए महत्वपूर्ण परिणामों से विकास की गति बढ़ाने वाली भी हो सकती हैं। मोटे तौर पर हम व्यक्तियों पर व्यय करके मानवीय योग्यता, बुद्धिमत्ता, तथा उत्पादकता को विकसित कर सकते हैं। इस प्रकार के व्यय को अब तुरन्त आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाने वाला केवल उपभोग व्यय नहीं माना जा सकता, लेकिन यह उत्पादन अभिकर्ता के रूप में मानव की कार्य कुशलता एवं क्षमता पर दीर्घकालीन अनुकूल प्रभाव डालते हैं, ठीक उसी तरह जैसे भौतिक पूँजी में विनियोग करने पर होता है। जिस सीमा तक मानवीय पूंजी में विनियोग भौतिक पूँजी की तरह समान धरातल पर स्थित है, ठीक वे ही माध्यम व तकनीक मानवीय पूंजी निर्माण के लिए प्रेरक होते हैं इस सबसे ही शिक्षा के अर्थशास्त्र की मेरूदण्ड का निर्माण होता है।

शैक्षिक स्थानों की लागत तथा वित्त पोषण के अतिरिक्त शिक्षा अर्थशास्त्र मूलभूत रूप से श्रम शक्ति की व्यावसायिक संरचना, नियोजकों की भर्ती एवं पदोन्नति नीतियों, अन्तर क्षेत्रीय एवं अन्तरर्राष्ट्रीय श्रम प्रवास, अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार का प्रारूप, वैयक्तिक आय के आकार वितरण, वर्तमान आय की बचत प्रवृति अर्थात आर्थिक विकास के सभी लक्षणों पर विचार करता है।

अधिकांशतः इसका मुख्य उद्देश्य स्पष्टीकरण एवं वर्णन है, लेकिन कभी–कभी यह सिफारिश भी करता है। लगभग सभी शिक्षण संस्थायें राज्य के अधिकार में हैं एवं राज्य सरकार द्वारा संचालित की जाती हैं।

शिक्षा अर्थशास्त्र को अन्वेषण के एक अलग क्षेत्र के रूप में परिभाषित करना मुश्किल होगा। उन परिस्थितियों में जब शिक्षा अपने एक या दूसरे स्वरूप में तार्किक रूप से एक महत्वपूर्ण विश्वसनीयता बन जाती है तो शिक्षा अर्थशास्त्र विभिन्न बिन्दुओं पर अति सूक्ष्म रूप से श्रम अर्थशास्त्र, विकास सिद्धान्त एवं विकास अर्थशास्त्र, लोक अर्थशास्त्र एवं कल्याणकारी अर्थशास्त्र में आच्छादित हो जाता है अन्यथा सामान्य विश्लेषण की भाँति, कुल मिलाकर इसमें मूलभूत विचार यह है कि आधुनिक अर्थव्यवस्था में शिक्षा अधिग्रहण से व्यक्ति को स्वयं पर विनियोग करने का अवसर मिलता है। शिक्षा के लिये निजी मांग के आर्थिक विश्लेषण एवं शैक्षिक सुविधाओं के सामूहिक प्रावधानों के लिए आर्थिक मानदण्डों का निर्माण का रास्ता खोलता है।

शिक्षा मानव के लिए एक तरह का विनियोग है। लोग चिकित्सा देखभाल द्वारा अन्यत्र अधिक सम्पन्न क्षेत्र में प्रवास करके, रोजगार अवसरों की सूचना प्राप्त करके, सापेक्षिक रूप से उच्च प्रशिक्षण वाली नौकरी का चुनाव करके एवं तदनुरूप भविष्य में सुधार लाकर स्वयं में जिस सीमा तक विनियोग करते है, उस सीमा तक अर्थशास्त्री एक ऐसे विस्तृत विषय में भागीदार होते हैं, जिसे भव्य रूप से 'मानव साधनों का अर्थशास्त्र' कहा गया है।

शिक्षा के विनियोग के पहलू के अतिरिक्त शिक्षा व्यवस्था को उद्योग माने जाने की विलक्षणतायें भी अपने आप में विशिष्ट आर्थिक व्यवहार के औचित्य को सिद्ध करती है, जिनमें मुख्यतः

(1) यह बहुल उद्देश्यों की खोज करती है, जिसमें वस्तुतः लाभ शामिल नहीं है

(2) यह असामान्य दीर्घ उत्पादन चक्र से दबी हुई है

(3) यह हस्त को मूल तकनीक से संचालित होती है, जो कि अधिकांशतः रीति रिवाजों एवं परम्पराओं द्वारा आरोपित है तथा इसकी अधिकांश पड़ते निर्गत बाजार कीमतों की अपेक्षा प्रशासनिक कीमतों पर खरीदी जाती हैं।

आर्थिक एवं शैक्षणिक सह–सम्बन्ध

दलित समाज के शैक्षणिक उन्नयन से आर्थिक संसाधनों और शिक्षा के सह सम्बन्धों की स्थिति के सन्दर्भ में दलित परिवार के मुखियाओं का दृष्टिकोण स्पष्ट करना परमावश्यक है जिसे विभिन्न बिन्दुओं के आधार पर स्पष्ट किया गया है–

तालिका संख्या–6.1

मुखियाओं द्वारा बच्चों की पढ़ाई में प्रतिमाह खर्च करने की स्थिति

क्रमांक	प्रतिमाह खर्च (रु0)	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	रु0 100–200	89	48.38
2.	रु0 200–400	65	35.32
3.	रु0 400–600	30	16.30
4.	रु0 600–800	00	00.00
5.	रु0 800–1000	00	00.00
6.	रु0 1000–1200	00	00.00
7.	रु0 1200 से ऊपर	00	00.00
	योग	**184**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या– 6.1 में दलित समाज में छात्रों पर प्रति माह उनके अभिभावकों द्वारा खर्च किए जाने की स्थिति का वर्गीकरण किया गया है। वर्तमान में शिक्षा पर व्यय होने वाली औसत राशि में वृद्धि हुई है। ऐसी स्थिति में दलित अभिभावकों द्वारा अपने बच्चों की पढ़ाई पर प्रतिमाह 100 से 200 रुपये प्रतिमाह की दर से औसत रूप से धनराशि खर्च की जाती है ऐसे मुखियाओं का प्रतिशतांक सर्वाधिक 48.38 है। जबकि 400 से 600 रुपये प्रतिमाह खर्च करने वाले अभिभावकों का प्रतिशतांक 16.30 है। 200 से 400 रुपये प्रतिमाह खर्च करने वाले मुखियाओं की संख्या 65 (35.32) है। 600 रुपये तथा इससे ऊपर प्रतिमाह खर्च करने वाले मुखियाओं का प्रतिशतांक शून्य है।

तालिका संख्या–5.5 में स्पष्ट है कि अकुशल श्रमिकों का प्रतिशतांक सर्वाधिक 50.00 है जिससे उनकी प्रतिमाह आय बहुत कम होती है। अध्ययन क्षेत्र के सर्वेक्षण से जो तथ्य उभर कर आए हैं उसके अनुसार 500 से 1000 रुपये प्रतिमाह कमाने वाले मुखियाओं का प्रतिशतांक सर्वाधिक 35.50 है तथा 1000 से 1500 रुपये प्रतिमाह कमाने वाले मुखियाओं का प्रतिशतांक 28.00 है (तालिका 5.6)। ऐसी स्थिति में प्रतिमाह आय कम होने के कारण दलित मुखिया उस स्थिति में नहीं होते कि वे अपनी अल्प आय का बहुत बड़ा भाग बच्चों की शिक्षा दीक्षा में खर्च कर सकें क्योंकि अपने परिवार की मूलभूत सुविधाओं को जुटाने में उन्हें अपनी आय का बड़ा भाग व्यय करना होता है जिससे उनकी रूचि अपने बच्चों को शिक्षित करने में ज्यादा नहीं होती है। यह स्थिति ग्रामीण क्षेत्रों में अधिक दिखाई देती है तथा शहरी क्षेत्रों में यह प्रवृत्ति कम पायी जाती है क्योंकि गाँव की तुलना में शहरों में रोजगार के अवसर और आय के संसाधन अधिक होते हैं जिससे दलित लोगों को आय बढ़ाने के अवसर उपलब्ध होते हैं और वे अधिक आय अर्जित करते हैं तथा अपने से भिन्न वर्ग के समाज के

लोगों को अपना 'आदर्श' मानकर अपने बच्चों को उस योग्य बनाने की इच्छा रखते हैं और शिक्षा दिलाने में रूचि रखते हैं।

इसके विपरीत ग्रामीण दलित समाज के लोगों का अपने परम्परागत व्यवसाय से जुड़े होने के कारण तथा व्यावसायिक, रोजगार परक संसाधन के चलते आय कम होती है जो आय होती भी है। वह उसकी मूलभूत सुविधाओं को ही पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं होती जिससे आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण बच्चों को शिक्षा दिलाने को कोई रूचि नहीं होती है।

अध्ययन से स्पष्ट होता है कि व्यक्ति की आय और शिक्षा के मध्य विशिष्ट सम्बन्ध है यदि वयक्ति की आय अधिक होती है तो उसे अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने के प्रति रूचि अधिक होती है। इसके विपरीत यदि आय कम है तो कमोवेश उसकी शिक्षा के प्रति रूचि कम होती है।

विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि मुखिया द्वारा पढ़ने वाले बच्चों से अपने व्यवसायों में सहयोग लेने वालों का प्रतिशतांक सर्वाधिक है इस तथ्य से यह स्पष्ट होता है कि मुखिया की रूचि अपने व्यवसाय में बच्चों से सहयोग प्राप्त करने में अधिक होती है क्योंकि प्रायः बच्चे अपने पिता का सहयोग प्रदान करने के उद्देश्य से विद्यालय से अनुपस्थित हो जाते हैं या फिर बीच में दी कक्षाएं छोड़ कर चले आते हैं। परिवार के मुखिया का दृष्टिकोण इस सम्बन्ध में स्पष्ट है कि उन्हें अपने व्यवसाय में सहयोग प्राप्त करने की आवश्यकता पड़ती है जिसे वे अपने बच्चों से प्राप्त करते हैं।

तालिका संख्या–6.2

बच्चों से व्यावसायिक सहयोग की स्थिति

क्रमांक	व्यावसायिक सहयोग की स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	हाँ	125	67.94
2.	नहीं	30	16.30
3.	कभी–कभी	29	15.76
	योग	**184**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 6.2 में दलित मुखियाओं द्वारा अपने व्यवसाय में बच्चों से सहयोग लेने की स्थिति का उल्लेख किया गया है जो मुखिया किसी न किसी व्यवसाय से संलग्न है और उनके बच्चे किसी न किसी स्तर की शिक्षा प्राप्त कर रहे हें तो क्या वे अपने व्यवसाय में अपने बच्चें का सहयोग प्राप्त करते हैं? इस सम्बन्ध में अध्ययन क्षेत्र के 125 (67.9) मुखियाओं ने स्वीकार किया कि उनके बच्चे अध्ययन करने के लिए विद्यालय तो जाते हैं साथ ही आवश्यकतानुसार प्रायः उनके व्यवसाय या कार्य में सहयोग करते हैं। 29(15.76) मुखिया ऐसे हैं जिनके बच्चे कभी–कभी उनके कामों में हाथ बटाते हैं तथा मजदूरी कमाने में सहयोग करते हैं जबकि 30 मुखिया अपने बच्चों से अपने व्यावसायिक कार्यों में किसी प्रकार का कोई सहयोग नहीं लेते हैं ये वे अभिभावक हैं जो किसी सरकारी अथवा गैर सरकारी अथवा ऐसे व्यवसाय से संलग्न हैं जिसमें किसी दूसरे के सहयोग की आवश्यकता कम महसूस होती है।

तालिका संख्या–6.3

बच्चों को छात्रवृत्ति प्राप्त होने की स्थिति

क्रमांक	छात्रवृत्ति प्राप्त होने की स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	हाँ	126	68.49
2.	नहीं	25	13.58
3.	कभी–कभी	33	17.93
	योग	**184**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत सरकार ने अपना संविधान लागू किया तथा समाज के अभावग्रस्त दबे कुचले तथा जातीय संस्तरण में निम्न स्थान पर रह रहे लोगों के बहुमुखी विकास के लिए संवैधानिक व्यवस्थाएं की। यह व्यवस्थाएं सामाजिक, शैक्षणिक, आर्थिक विकास से सम्बन्धित रही है। इसी व्यवस्थाओं के तहत समाज के दलित छात्र–छात्राओं को शैक्षणिक क्षेत्र में आगे बढ़ने के लिए छात्रवृत्ति की व्यवस्था की जाती है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र के हमीरपुर जनपद में इसी तरह की व्यवस्था है। दलित छात्र–छात्राओं को प्रतिवर्ष छात्रवृत्ति प्रदान की जाती है यह छात्रवृत्ति प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले छात्र–छात्राओं को प्रदान की जाती है।

तालिका संख्या 6.3 में अध्ययन क्षेत्र के परिवार के मुखियाओं द्वारा छात्र–छात्राओं को मिलने वाली छात्रवृत्ति के सम्बन्ध में दी गई जानकारी का विश्लेषण किया गया है। 68.49 प्रतिशत मुखियाओं ने स्वीकार किया कि उनके बच्चों को प्रतिवर्ष छात्रवृत्ति प्राप्त हो जाती है। 17.93 प्रतिशत ने माना कि उन्हें कभी–कभी छात्रवृत्ति प्राप्त होती है जबकि 13.58 प्रतिशत मुखियाओं ने माना कि

उनके बच्चों को कभी भी छात्रवृत्ति प्राप्त नहीं हुई है। जिन छात्रों को कभी कभी छात्रवृत्ति प्राप्त होती है वे असन्तुष्ट रहते हैं जबकि शासन द्वारा छात्रवृत्ति नियमित रूप से विद्यालयो को उपलब्ध करायी जाती है। छात्रों को कभी–कभी छात्रवृत्ति मिलना अथवा बिल्कुल ही छात्रवृत्ति न मिलने के पीछे अनेकानेक कारण परिलक्षित होते हैं।

प्राथमिक से लेकर माध्यमिक विद्यालयों तक अनेकानेक ऐसे प्रकरण प्रकाश में आए हैं जिसमें विद्यालयी प्रशासन तथा प्रबन्धन द्वारा छात्रों को दी जाने वाली छात्रवृत्ति में वित्तीय अनियमितता की, शासन स्तर पर ऐसे व्यक्तियों के प्रति प्रभावी कार्यवाही की शुरूआत तो की गयी किन्तु ऐसे प्रकरणों में अभी तक कोई प्रभावी निर्णय नहीं हो सके। जिसका सीधा प्रभाव छात्रों पर पड़ता है। छात्रवृत्ति से मिलने वाली धनराशि का उपयोग छात्र अपने शैक्षणिक उपयोग में लाते हैं। किन्तु छात्रवृत्ति न मिलने से उनकी शिक्षा में बाधा अथवा अवरोध उत्पन्न होता है। यही स्थिति उच्च शिक्षा संस्थानों में अभी भी उत्पन्न होती रहती है समय पर छात्रवृत्ति का बजट शासन से हो जाती है। संस्थानों में चूँकि छात्रसंघ अस्तित्व में बने हुए है जो समय पर छात्रवृत्ति का बजट उपलब्ध न होने की दशा में आन्दोलन प्रारम्भ कर देते हैं जिसका प्रभाव शासन पर पड़ता है। वर्ष 2003–04 में अनुसूचित जाति के छात्रों को दी जाने वाली छात्रवृत्ति का बजट शासन द्वारा उपलब्ध न कराए जाने से उन्हें छात्रवृत्ति प्राप्त नहीं हो सकी परिणामस्वरूप बुन्देलखण्ड क्षेत्र में अवस्थित अधिकांश महाविद्यालयों के छात्रसंघों द्वारा आन्दोलन हुए धरना, प्रदर्शन तथा अनशन प्रारम्भ किए गये हैं जिससे जिला प्रशासन द्वारा शासन से बजट आवंटित कराए जाने की प्रक्रिया प्रारम्भ की गयी है।

तालिका संख्या–**6.4**

छात्रवृत्ति न मिलने पर सम्पर्क करने की स्थिति

क्रमांक	सम्पर्क करने की स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	हाँ	83	45.11
2.	नहीं	101	54.89
	योग	**184**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या–6.4 में दलित छात्रों को छात्रवृत्ति न मिलने की स्थिति में उनके परिवार के मुखियाओं के सम्पर्क किए जाने की स्थिति का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। तालिका से स्पष्ट होता है कि 54.89 प्रतिशत दलित परिवारों के मुखिया छात्रवृत्ति न मिलने की स्थिति में किसी भी स्तर पर सम्पर्क नहीं करते हैं जबकि 45.11 प्रतिशत मुखिया विद्यालय स्तर पर ही सम्पर्क करके छात्रवृत्ति न प्राप्त होने की स्थिति का पता लगाते हैं।

परिवार के मुखियाओं का छात्रवृत्ति न मिलने की स्थिति का पता न लगाने के पीछे उनकी शैक्षणिक पिछड़ापन तथा जागरूकता का अभाव प्रभावी कारण है। क्योंकि दलित मुखियाओं में शैक्षणिक स्तर के विश्लेषण (तालिका संख्या–5.3) में स्पष्ट हो चुका है कि दलित परिवार के 61.00 मुखिया अशिक्षित हैं। अशिक्षा जागरूकता उत्पन्न करने में बाधक कारक हैं। यही कारण हे कि दलित मुखिया अपने और परिवार को मिलने वाली शासकीय सुविधाओं का लाभ प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं।

तालिका संख्या–6.5

छात्रवृत्ति प्रयोग करने की स्थिति

क्रमांक	प्रयोग करने के मद	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	पढ़ाई में	21	11.44
2.	कपड़े बनवाने में	47	25.54
3.	व्यक्तिगत खर्च में	40	21.73
4.	परिवार के खर्च में	66	35.86
5.	ट्यूशन/कोचिंग में	10	05.43
	योग	**184**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

दलित छात्र–छात्राओं को प्राथमिक से लेकर उच्च शिक्षा प्राप्त करने तक जो छात्रवृत्ति प्राप्त होती है उसे उपयोग करने में भी भिन्नता परिलक्षित होती है। दलित परिवारों के मुखियाओं ने अपने बच्चों को मिलने वाली छात्रवृत्ति के उपयोग के सम्बन्ध में जो तथ्य उदघाटित किए उन्हें तालिका संख्या 6.5 में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक छात्रवृत्ति का उपयोग छात्रों द्वारा पढ़ाई के स्थान पर परिवार के खर्च में किया जाता है ऐसे छात्रों का प्रतिशतांक 35.86 है जबकि ट्यूशन और कोचिंग में छात्रवृत्ति खर्च किए जाने वाले छात्रों का प्रतिशतांक सबसे कम 05.43 है। 25.54 प्रतिशत छात्र छात्रवृत्ति का उपयोग अपने कपड़े बनवाने में करते हैं। 21.73 प्रतिशत छात्र अपने व्यक्तिगत खर्च में छात्रवृत्ति का उपयोग करते हैं जबकि 11.44 प्रतिशत ही छात्रवृत्ति का उपयोग अपनी पढ़ाई के लिए करते हैं।

तथ्यों से स्पष्ट होता है कि छात्रवृत्ति की व्यवस्था शासन द्वारा जिस उद्देश्य से की जाती है उस उद्देश्य का प्रतिशतांक मात्र 11.44 है यह वह प्रतिशतांक है जो छात्रवृत्ति का उपयोग अपनी पढ़ाई के लिए करते हैं। वास्तव में छात्र छात्रवृत्ति के माध्यम से अपनी पढ़ाई को आगे बढ़ा सकते हैं किन्तु ऐसा नहीं हो पा रहा है क्योंकि परिवार की आय कम होने से परिवार के मुखिया द्वारा अपने बच्चों को मिलने वाली छात्रवृत्ति का उपयोग परिवार के अन्य खर्चों के रूप में कर लिया जाता है इसके अतिरिक्त जिन बच्चों पर परिवार का नियंत्रण कम होता है। वे छात्र छात्रवृत्ति का उपयोग अपने कपड़े बनवाने, व्यक्तिगत खर्चों के रूप में करते हैं, जागरूकता के अभाव और जिम्मेदारियों से बचने के कारण परिवार के मुखिया ऐसे छात्रों को किसी प्रकार से, इसलिए प्रेरित नहीं कर पाते कि वे मिलने वाली छात्रवृत्ति का उपयोग अपनी पढ़ाई आदि के लिए कर सकें। ऐसे ही छात्र जब छात्रवृत्ति से अपनी फीस आदि नहीं जमा कर पाते और इसके लिए अपने परिवार के मुखिया से अपनी पढ़ाई की फीस, किताबों कोचिंग अथवा ट्यूशन आदि के लिए धनराशि की माँग करते हैं किन्तु आय की कमी के कारण जब परिवार के मुखिया इस माँग को पूरा नहीं कर पाते या फिर समयानुसार नहीं कर पाते तो उनके बच्चों की शिक्षा में अवरोध उत्पन्न होता है और बच्चे बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं यही स्थिति दलित छात्रों के बीच में पढ़ाई छोड़ देने वाले आँकड़ों में वृद्धि करती हैं।

तालिका संख्या–**6.6**

दलित छात्रों को मिलने वाली सुविधाओं का ज्ञान

क्रमांक	सुविधाओं के ज्ञान की स्थिति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	हाँ	98	49.00
2.	नहीं	77	38.50
3.	कभी–कभी	25	12.50
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

संवैधानिक व्यवस्था के तहत दलित समाज के उन्नयन तथा समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के उद्देश्य से दलितों के लिए अनेकानेक कार्यक्रम तथा सुविधाओं का संचालन किया जाता है तथा वार्षिक बजट में इसके लिए भारी भरकम बजट की व्यवस्था भी की जाती हैं किन्तु उन सुविधाओं का लाभ दलितों को किस सीमा तक मिल पाता है यह विचारणीय बिन्दु है। तालिका संख्या 6.6 में दलित छात्रों को शासन द्वारा मिलने वाली सुविधाओं का ज्ञान उनके परिवार के मुखिया को कितना है इसका विश्लेषण किया गया है। दलित परिवारों के 98 (49.00) मुखियाओं ने माना कि उन्हें दलित छात्रों को मिलने वाली शासकीय सुविधाओं की जानकारी है जबकि 77 (8.50) मुखियाओं को किसी भी सुविधा का ज्ञान या जानकारी नहीं है। 25 (12.50) प्रतिशत मुखिया ऐसे हैं जिन्हें शासकीय सुविधाओं का ज्ञान कभी–कभी हो जाता है।

परिवार के मुखियाओं को सुविधाओं का ज्ञान न होने का सम्बन्ध उनकी अशिक्षा तथा आर्थिक संसाधनों की कमी कारण के रूप में आती है। अशिक्षित मुखियाओं का प्रतिशतांक अधिक होने से उन्हें समय–समय पर प्रचारित और

प्रसारित की जाने वाली सूचनाओं का ज्ञान नहीं हो पाता जिससे वे उन सुविधाओं का ज्ञान नहीं हो पाता जिससे वे उन सुविधाओं का लाभ नहीं ले पाते जो वास्तव में उनके लिए ही उपलब्ध करायी जा रही है।

निर्धनता के कारण दलित मुखिया अपने तथा परिवार के सदस्यों के लिए सूचना महत्वपूर्ण यंत्र जैसे समाचार पत्र–पत्रिकाएं, रेडियो, टेलीविजन आदि प्राथमिक यंत्रों की सुविधाएं नहीं जुटा पाते जिससे उन्हें शासकीय प्रावधानों की जानकारी प्राप्त नहीं हो पाती परिणामस्वरूप जो सुविधाएं वे प्राप्त कर सकते हैं प्राप्त नहीं कर पाते और अपने अधिकारों से वंचित रह जाते हैं।

तालिका संख्या–6.7

अभिभावकों में नशा की प्रवृत्ति की स्थिति

क्रमांक	नशा की प्रवृत्ति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	हाँ	131	65.50
2.	नहीं	69	34.50
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

पारिवारिक समस्याओं को बढ़ाने में कहीं न कहीं नशा करने की प्रवृत्ति एक कारण है जिसमें धन के खर्च के साथ ही अपने दायित्वों के प्रति उदासीन होने की प्रवृत्ति जन्म लेती है। नशे की प्रवृत्ति भी किसी न किसी रूप में दलित छात्रों की शिक्षा में अवरोध उत्पन्न करती है।

तालिका संख्या 6.7 में दलित परिवारों के मुखियाओं में नशे की प्रवृत्ति की स्थिति का वर्गीकरण किया गया है। तालिका से स्पष्ट होता है कि दलित

परिवार के मुखियाओं में नशा करने की प्रवृत्ति अधिक होती है। 65.50 प्रतिशत मुखिया किसी न किसी प्रकार के नशे के आदी हैं जिसमें वे अपनी आय का बड़ा हिस्सा व्यय करते हैं चूँकि उनकी आय कम होती है फिर भी वे अपनी आय का एक बड़ा भाग नशे के शौक को पूरा करने में करते हैं जिससे परिवार के अन्य खर्चों के साथ ही बच्चों की पढ़ाई में होने वाले खर्च को उपलब्ध करा पाने में वे असमर्थ हो जाते हैं जिससे उनकी शिक्षा में व्यवधान पड़ता है।

किसी प्रकार के नशा न करने वाले मुखियाओं का प्रतिशतांक 34.50 है ये वे मुखिया हैं जो मानवीय आवश्यकताओं को कड़े श्रम के साथ पूरा करते है तथा अपनी आय का उपयोग नशे की वस्तुओं में न करके पारिवारिक खर्चों एवं बच्चों की शिक्षा में करते हैं। जो मुखिया किसी न किसी नशे के आदी होते हैं उनका पारिवारिक जीवन कड़वाहट भरा तथा तनावपूर्ण होता है तथा विभिन्न प्रकार की आर्थिक समस्याओं से ग्रसित होते हैं ऐसे परिवार के बच्चे पढ़ना भी चाहते हैं तो भी उन्हें समय पर उनकी अध्ययन आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती तथा वे बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं ऐसे मुखिया अपने बच्चों को अपने व्यवसाय से जोड़ अधिक श्रम करवाते हैं तथा उस आय का उपयोग अधिकांशतः अपने नशे को पूरा करने में करते हैं।

सारिणी संख्या–6.8

दलित छात्रों में नशा की प्रवृत्ति की स्थिति

क्रमांक	नशा की प्रवृत्ति	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	हाँ	105	52.50
2.	नहीं	95	47.50
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में सामाजिक परिवर्तन तीव्र गति से घटित हो रहे हैं जहाँ तक छात्रों की स्थिति है वे भी इस परिवर्तन से उछूते नहीं हैं। तालिका संख्या 6.8 में दलित छात्रों में पायी जाने वाली नशे की प्रवृत्ति का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, दलित परिवारों के मुखियाओं ने स्वीकार किया है कि उनके बच्चों में किसी न किसी रूप में नशे की प्रवृत्ति पायी जाती है। 200 परिवारों के मुखियाओं में से 105 (52.50) ने माना कि उनके बच्चों में गुटका, बीड़ी, सिगरेट, शराब आदि नशे की वस्तुओं की सेवन की प्रवृत्ति है इसके विपरीत 47.50 प्रतिशत का मानना है कि उनके बच्चे किसी प्रकार की नशे की वस्तुओं का सेवन नहीं करते हैं।

जो दलित छात्र नशे की वस्तुओं का सेवन करते हैं वे उसके लिए धन परिवार से अथवा अपनी प्राप्त होने वाली छात्रवृत्ति या फिर स्वयं कुछ काम करके इकट्ठा करते हैं जिसका प्रयोग वे नशा करने में करते हैं। जिन छात्रों में नशे की प्रवृत्ति नहीं पायी जाती वे या तो पारिवारिक नियत्रंण के कारण ऐसा नहीं कर पाते या फिर उन्हें इसके लिए धन प्राप्त नहीं हो पाता।

तालिका संख्या–6.9

बच्चों को पढ़ाने के सम्बन्ध में दृष्टिकोण

क्रमांक	दृष्टिकोण	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	पढ़ाना चाहिए	69	34.50
2.	काम पर लगा देना चाहिए	82	41.00
3.	दोनों करना चाहिए	49	24.50
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 6.9 में दलित परिवारों के मुखियाओं का बच्चों को पढ़ाने के सम्बन्ध में दृष्टिकोण क्या है? का विश्लेषण किया गया है। अधिकांश मुखिया इस तथ्य पर जोर देते हैं कि बच्चों को काम पर लगा देना चाहिए ऐसे मुखियाओं का प्रतिशतांक सर्वाधिक 41.00 है जबकि 34.50 मुखियाओं का मानना है कि बच्चों को पढ़ाना चाहिए। 24.50 प्रतिशत मुखियाओं का मानना है बच्चों को पढ़ाई के साथ–साथ काम पर लगा देना चाहिए। जो अभिभावक बच्चों को पढ़ाने के पक्ष में हैं कमोवेश उसकी आर्थिक स्थिति तुलनात्मक रूप से दूसरे दलित परिवारों से अच्छी है। जो मुखिया बच्चों को काम पर लगा देने की बात करते हैं उनके समक्ष आर्थिक कठिनाई काम के निरन्तरता की अनियमितता पायी जाती है वे पढ़ाई के स्थान पर अपने बच्चों को काम पर लगा देने को अधिक महत्व देते हैं।

पढ़ाई और काम पर लगा देने का मिश्रित दृष्टिकोण रखने वाले मुखियाओं की स्थिति मध्य वाली है जो बच्चों के लिए पढ़ाई को थोड़ा बहुत आवश्यक मानते हैं।

मध्य स्थिति वाले बच्चे न तो ठीक ढंग से पढ़ाई कर पाते हैं और न ही काम। क्योंकि पढ़ाई के पश्चात काम करने से उनकी शारीरिक एवं मानसिक क्षमता में कमी आती है जिससे पढ़ाई के लिए जिस मानसिक अवस्था की स्थिति होनी चाहिए वह नहीं रह जाती जिससे उन्हें शैक्षणिक असफलताओं का शिकार होना पड़ता है और वे अपने अध्ययन को बीच में ही छोड़ देते हैं जिसके बाद अभिभावक उन्हें पुनः विद्यालय भेजने में कोई रूचि नहीं दिखाते और न ही उसके लिए किसी प्रकार का प्रयास ही करते हैं।

सारिणी संख्या–6.10

दलित परिवार के मुखिया की दृष्टिकोण में पढ़ाई में बाधक कारक

क्रमांक	पढ़ाई में बाधक कारक	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	धन की कमी	75	37.50
2.	शिक्षा सुविधाओं की कमी	19	09.50
3.	रूढ़िवादिता	14	07.00
4.	अशिक्षा	59	29.50
5.	माता पिता का रूचि न लेना	20	10.00
6.	व्यावसायिक शिक्षा की कमी	13	06.50
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

तालिका संख्या 6.10 में दलित परिवारों के मुखियाओं के दृष्टि में बच्चों की शिक्षा में बाधक कारकों का विश्लेषण किया गया है। मुखियाओं की दृष्टि में सर्वाधिक बाधक कारक धन की कमी है, धन की कमी को एक महत्वपूर्ण बाधक कारक मानने वाले मुखियाओं का प्रतिशतांक 37.50 है। दूसरा महत्वपूर्ण कारक अशिक्षा है, अशिक्षा को बाधक कारक मानने वाले मुखियाओं का प्रतिशतांक 29.50 है। माता–पिता का अपने बच्चों की शिक्षा में रूचि न लेने को एक बाधक कारक मानने वालों का प्रतिशतांक 10.00 है, जबकि शिक्षा सुविधाओं की कमी को बाधक कारक 9.50 प्रतिशत मुखिया मानते हैं। रूढ़िवादिता को बाधक कारक मानने वालों का प्रतिशतांक 7.00 है तथा व्यावसायिक शिक्षा की कमी को 6.50 प्रतिशत मुखिया कम प्रभावी कारक मानते हैं।

सर्वेक्षण में कारकों का जो क्रम प्राप्त हुआ है या जिन कारकों को दलितों की शिक्षा के लिए दलित परिवारों के मुखियाओं ने बाधक कारक माना है

कमोवेश इन्हीं कारकों को विभिन्न अध्ययनों में शिक्षा के अवरोधक के रूप में पाया गया है। धन की कमी शिक्षा के विकास में एक महत्वपूर्ण कारक है वर्तमान में शिक्षा प्राप्ति हेतु धन की अत्यधिक आवश्यकता होती है दलित परिवार आर्थिक कमी से निरन्तर अभावग्रस्त रहते हैं उन्हें अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को जुटाने की गंभीर समस्या बनी रहती है ऐसी स्थिति में शिक्षा के प्रति रूझान कम रहता है और वे अपने बच्चों को आर्थिक लाभ के व्यवसायों में संलग्न करने में रूचि रखते हैं।

व्यावसायिक शिक्षा की कमी को बाधक कारक मानने वाले मुखियाओं का प्रतिशतांक सबसे कम है। इन तथ्यों से कहीं न कहीं परिवार के मुखियाओं की अशिक्षा दृष्टिगत होती है जबकि व्यावसायिक शिक्षा कहीं न कहीं और किसी न किसी प्रकार से व्यक्ति को उसकी रोजी रोटी का आधार बनती है और उसे एक कुशल श्रमिक या कर्मचारी के रूप में प्रतिष्ठित करने का साधन होती है। व्यावसायिक शिक्षा की कमी प्रत्येक वर्ग और जाति में बेरोजगारी की स्थिति बढ़ाने में योग दे रही है। यदि कारण है कि दिनों दिन व्यावसायिक शिक्षा को बढ़ाने का पक्ष प्रबल होता जा रहा है।

तालिका संख्या–6.11

दलित परिवारों के मुखियाओं की दृष्टि में शिक्षा के लिए प्रेरित करने के तरीके

क्रमांक	प्रेरित करने के तरीके	आवृत्ति	प्रतिशतांक
1.	छात्रवृत्ति बढ़ाकर	56	28.00
2.	कपड़े देकर	25	12.50
3.	भोजन देकर	23	11.50
4.	रोजगार की गारण्टी देकर	53	26.50
5.	पूर्णतः शुल्क मुक्ति द्वारा	15	07.50
6.	शैक्षणिक भत्ता देकर	20	10.00
7.	पुस्तकें देकर	08	04.00
	योग	**200**	**100.00**

स्रोत–क्षेत्रीय सर्वेक्षण के आधार पर

दलितों के शैक्षणिक उन्नयन हेतु निरन्तर नये प्रयास किए जा रहे हैं किन्तु बुन्देलखण्ड क्षेत्र के हमीरपुर जनपद में इस दिशा में जो प्रगति होनी चाहिए वह नहीं हो पा रही है इसके कारणों को खोजने तथा नवीन तरीकों को खोजने की आवश्यकता है। तालिका संख्या 6.11 में दलित परिवारों के मुखियाओं की दृष्टि में दलित बच्चों को शिक्षा के लिए प्रेरित करने के तरीकों का विश्लेषण किया गया है।

मुखियाओं की दृष्टि में शिक्षा के प्रेरित करने का सबसे प्रभावी तरीका छात्रवृत्ति बढ़ाकर हो सकता है ऐसा मानने वालों का प्रतिशतांक 28.00 है। जबकि रोजगार की गारण्टी देकर शिक्षा के प्रति रूचि जाग्रत करने का तरीका

मानने वालों का प्रतिशतांक 26.50 है। कपड़े देकर तथा भोजन देकर रूचि उत्पन्न करने के तरीका मानने वालों का प्रतिशतांक क्रमशः 12.50 तथा 11.50 है। 10.00 प्रतिशत मुखियाओं का मानना है कि शैक्षणिक भत्ता देकर तथा 7.50 प्रतिशत मुखिया पूर्णतः शुल्क मुक्ति करके दलित बच्चों को शिक्षा के लिए प्रेरित करने का तरीका मानते हैं। शिक्षा में पुस्तकों का महत्वपूर्ण स्थान होता है वे आधार होती हैं किन्तु परिवार के मुखियाओं की दृष्टि में 4.00 प्रतिशत ही मानते है कि निःशुल्क पुस्तकें देकर दलित बच्चों को शिक्षा के लिए प्रेरित किया जा सकता है।

छात्रवृत्ति बढ़ाकर शिक्षा के लिए प्रेरित करने को प्रभावी तरीका मानने वालों के सर्वाधिक प्रतिशतांक होने से यह स्पष्ट होता है कि दलित अभिभावकों की रूचि छात्रवृत्ति पर अधिक होती है क्योंकि छात्रवृत्ति से प्राप्त होने वाले धन का उपयोग वे पढ़ाई में आने वाले व्यय के साथ ही अन्य व्ययों में भी करते हैं। जबकि दूसरा प्रभावी तरीका रोजगार की गारण्टी है यदि दलितों को शिक्षा के साथ ही रोजगार उपलब्ध कराया जाना सुनिश्चित कर दिया जाए तो दलितों में शिक्षा के प्रति रूझान में वृद्धि हो जाएगी।

****

अध्याय—7

निष्कर्ष

- भारत के साक्षरता स्तर में असमानताओं का क्षेत्रीय आयाम
- असमानता के पक्ष
- शैक्षणिक असमानताओं का क्षेत्रीय आयाम
- बुन्देलखण्ड क्षेत्र
- दलित समाज
- बुन्देलखण्ड में दलितों की शैक्षणिक स्थिति
- दलित समाज में शैक्षणिक जागरूकता
- आर्थिक एवं शैक्षणिक सह सम्बन्ध
- उपसंहार
- बुन्देलखण्ड के दलितों के शैक्षणिक उन्नयन हेतु सुझाव

भारत के साक्षरता स्तर में असमानताओं का क्षेत्रीय आयाम

पूर्व अध्याय में शिक्षा और आर्थिक से सह–सम्बन्ध की स्थिति का उल्लेख किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में दलितों की शैक्षणिक स्थिति का उल्लेख तथा उनके शैक्षणिक उन्नयन के लिए सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं। जिस समाज में शिक्षा का ढांचा पिरामिडनुमा हो और अनेक स्तरों में बंटा हुआ हो, उस समाज में साक्षरता शिक्षा का सबसे निचला स्तर (नींव) होती है। इसलिए कहा जा सकता है कि ऐसे समाज में शिक्षा न केवल विकास का महत्त्वपूर्ण आगत (इनपुट) होती है, बल्कि उस समाज की सम्पूर्ण विकास प्रक्रिया से वह बहुत गहरे सतर पर जुड़ी होती है। इस संदर्भ में राष्ट्रीय विकास में असंतुलन और असमानता को देखते हुए शिक्षा के भौगोलिक खाके का और उसमें क्षेत्रीय भिन्नता का सटीक विश्लेषण हम तब तक नहीं कर सकते, जब तक विकास–प्रक्रिया के साथ इस व्यवस्था की परंस्पर निर्भरता के दो–तरफा संबंध को हम न जान लें। भारत में एक छोर से दूसरे छोर तक शैक्षिक अवसर के प्रति लोगों की प्रतिक्रिया का स्वरूप और उसका स्तर सामाजिक–आर्थिक स्थितियों से काफी मेल खाता है और उसमें भी भौगोलिक दृष्टि से काफी भिन्नता है। इसका परिणाम यह हुआ है कि मानवपूंजी निर्माण तथा मानव संसाधन के विकास की दृष्टि से कुछ क्षेत्रों को कुछ अन्य क्षेत्रों की तुलना में अधिक लाभ हुआ है।

दुनिया के देशों के शैक्षिक विकास की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह भी रही है कि काफी लंबे समय तक इनमें क्षेत्रीय असमानता बनी रही है। पहला कारण तो शिक्षा में उन उपनिवेशवादी विद्रूपताओं का बरकरार रहना है जिनको

दूर नहीं किया गया है। दूसरी ओर विकास अस्थिर रहा है तथा इसके लिए अपनाई गई रणनीति की अपनी सीमाएं भी रही हैं। भयानक असमानता के लगातार बने रहने के कारण तीसरी दुनिया के तमाम देशों को सिर्फ साक्षरता का सामान्य स्तर ही सुधारने में परेशानियों का सामना नहीं करना पड़ रहा है बल्कि अपनी विकास नीति बनाते समय अंतर्क्षेत्रीय समानता के उद्देश्य को प्राथमिकता देने में भी इन देशों को मुश्किलें पेश आ रही हैं इस तरह अनेक विकासशील देशों में सामाजिक नियोजन के प्रमुख लक्ष्यों में 'समता के साथ संवृद्धि' को प्रमुख लक्ष्य माना जा रहा है। इसमें ध्यान देने की बात यह है कि 'समता' और 'संवृद्धि' की मांग के बीच कोई अंतर्विरोध नहीं है। बिना 'संवृद्धि' के समता का अर्थ 'स्थिर मलकुण्ड' के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा जिसमें परेशानी, अज्ञान, दकियानूसी विचार और अंधविश्वासों का समान बंटवारा ही मुमकिन होगा। लेकिन बिना समता के 'संवृद्धि' आने पर सामाजिक ढांचे का संतुलन गड़बड़ा जाता है। इसके चलते 'सवृद्धि' में अवरोध पैदा होता है। यदि सामाजिक स्तर पर दोनों की साथ–साथ चिंता की जाए तो दोनों के साथ एक साथ निपटा जा सकता है। दोनों एक–दूसरे की मदद कर सकते हैं।

असमानता पक्ष

अनेक नवस्वाधीन देशों की सामाजिक–आर्थिक संचरना में निहित असमानताओं और विकृतियों की जड़ें उनकी ऐतिहासिक प्रक्रिया और विशेषकर उनकी औपनिवेशिक विरासत में देखी जा सकती हैं। मानव सभ्यता के आरंभ से ही दो तरफा कार्यकारण संबंध के माध्यम से शिक्षा और विकास परस्पर घनिष्ठ रूप से जुड़े रहे हैं। विभिन्न समूहों के शैक्षिक स्तरों की असमानताएं उनके सामाजिक–आर्थिक विकास के स्तर संबंधी विभिन्नताओं के कारण और कार्य दोनों रही हैं। साक्षरता स्तरों के बारे में यह बात विशेष रूप से सत्य है जो

शैक्षिक विकास की एक अनिवार्य पूर्व–आवश्यकता है। जबकि आज के विकसित देशों में औद्योगिक क्रांति ने ऐसी परिस्थितियां उत्पन्न की है कि शिक्षित श्रमशक्ति की आवश्यकता ने वहां धीरे–धीरे और स्थिर गति से साक्षरता का सार्वजनीकरण कर दिया है, औपनिवेशिक साम्राज्यों में उसी से जुड़ी हुई अल्पविकास की प्रक्रिया आम जनता के लिए साक्षरता के स्तर की असमानताओं और निरक्षरता की निरंतरता का कारण बन गई।

शासन की आवश्यकताओं ने इन देशों के विकास को अवरुद्ध किया, कृषि में प्रौद्योगिकी विकास की राह में रोड़े अटकाए, आत्मनिर्भर वाले औद्योगिक क्षेत्र का उदय नहीं होने दिया और प्राथमिक से द्वितीयक क्षेत्र में श्रमशक्ति के अंतर्क्षेपक स्थानान्तरण में गंभीर बाधाएं उत्पन्न कर दीं, या अधिक से अधिक, अपविकास को प्रोत्साहन दिया। जबकि हस्तउद्योग पर आधारित द्वितीयक क्षेत्रक के बिखराव ने प्रौद्योगिक रूप से जुड़ी प्राथमिक गतिविधियों पर आवश्यकता से अधिक बोझ डाला, औपनिवेशिक प्रशासन की आवश्यकताएं एक विस्तारित तृतीयक क्षेत्रक के द्वारा पूरी की जाती रहीं जो श्रम से असंबद्ध था और श्रम के प्रति उसका दृष्टिकोण अपमानसूचक था। सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियां, जो औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप श्रम और शिक्षा में अंतर को कम करती थीं इस तरह तीसरी दुनिया में उदित नहीं होने दी गईं।

एक ही क्षेत्र में और अलग–अलग क्षेत्रों में असमानताओं के निम्न पक्ष इस संदर्भ में ध्यान दिए जाने योग्य हैं–

- अनुसूचित जातियों व अन्य के बीच;
- अनुसूचित जनजातियों व अन्य के बीच;
- पुरूषों व स्त्रियों के बीच;
- ग्रामीण व नगरीय क्षेत्रों के बीच;

अनुसूचित जातियों व अन्य के बीच असमानताओं का उदय ज्ञान तथा श्रमशक्ति के अलगाव के फलस्वरूप हुआ। 1971 की भारतीय जनगणना पर आधारित श्रमशक्ति के वितरण के एक अध्ययन से पता चला है कि श्रमशक्ति में अनुसूचित जातियों और जनजातियों की भागीदारी गैर–अनुसूचित जनसंख्या की तुलना में बहुत अधिक है अर्थात अनुसूचित जनजातियों के सम्बन्ध में 38.5 प्रतिशत, अनुसूचित जातियों के संबंध में 36 प्रतिशत, और गैर अनुसूचित जनसंख्या के सम्बंध में 31.6 प्रतिशत। 2001 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जातियों के लगभग 80 प्रतिशत लोग कृषि में लगे है और उनमें लगभग 52 प्रतिशत खेतिहर श्रमिक हैं। गैरअनुसूचित जनंसख्या की संगत भागीदारियां क्रमशः 65 प्रतिशत और 20 प्रतिशत है। यह सर्वविदित है कि अधिकतर खेतिहर श्रमिक अशिक्षित है, दुर्दशाग्रस्त हैं और निर्धनता–रेखा से नीचे जीवन–यापन कर रहे हैं। श्रमशक्ति के इस वितरण का एक महत्वपूर्ण पक्ष यह भी है कि संगठित कारखानेदारी के क्षेत्र में अनुसूचित जातियों के मजदूर केवल 3.5 प्रतिशत है जबकि गैर अनुसूचित जाति के मजदूर लगभग 7 प्रतिशत है। संगठित क्षेत्र में निम्न शैक्षिक स्तर के कारण वे प्रायः अर्धकुशल श्रमिकों के रूप में काम करते हैं।

अनुसूचित जातियों तथा अन्य के बीच साक्षरता की असमानता 1991 की जनगणना के आंकड़ों से भी स्पष्ट हो जाती है। साक्षरता दरों का एक तुलनात्मक अध्ययन उन जनपदों को लेकर किया जा चुका है जिनके गांवों में अनुसूचित जातियां गांव की कुल संख्या का 5 प्रतिशत या अधिक है। देश के कुल जनपदों में से 286 इस श्रेणी में आते हैं और उनको खासतौर से अनुसूचित जाति वाले जनपदों का नाम दिया गया है। यह एक रोचक तथ्य है कि 131 जनपदों में अनुसूचित जातियों की साक्षरता दर 12 प्रतिशत से भी कम थी

जबकि एक भी जनपद ऐसा नहीं था जिसमें गैर अनुसूचित जनसंख्या की साक्षरता की दर 12 प्रतिशत से कम हो।

अनुसूचित जनजातियों और अन्य लोगों के बीच असमानता का कारण कुछ आदिवासी समुदायों के पहाड़ी, जंगली या बंजर भूभागों में निवास तथा शेष समाज से उनका निरंतर अलगाव रहा है। शैक्षिक विकास का निम्न स्तर, क्षेत्रीय दबाव और तनाव जो आज भी हैं, आदिवासी और संलग्न गैर–आदिवासी समुदायों के विकास स्तर की भिन्नता के कारण उत्पन्न हुए, इन तनावों को ऐसी असमानताएं समाप्त करके ही दूर किया जा सकता है। पुरूषों और स्त्रियों के शैक्षिक विकास की असमानताओं का कारण औपनिवेशिक काल के सतही आधुनिकीकरण के कुछ लक्षणों का जारी रहना है। स्त्रियों को शैक्षणिक अवसरों से वंचित रखने की प्रवृत्ति में इसे स्पष्ट रूपसे देखा जा सकता है। शिक्षा के क्षेत्र में स्त्रियों की सापेक्ष वंचना, इसके अन्य लक्षणों को भी रेखांकित करती हैं। इसलिए यह और भी महत्वपूर्ण हो जाती हैं। अनुसूचित जातियां निश्चित ही वंचित रहीं मगर उनमें भी स्त्रियां पुरूषों से अधिक वंचित रहीं। राजनीतितंत्र की दकियानूस पुरूष–श्रेष्ठतावादी प्रवृत्तियों की पुष्ट करने की प्रतिगामी नीतियों के अंग के रूप में शैक्षिक संस्थाओं के दरवाजे स्त्रियों के लिये बंद रखे गए। स्त्री साक्षरता के तुलनात्मक रूप से निम्न स्तर का जारी रहना स्पष्ट है।

ग्रामीण–नगरीय असमानताओं का जारी रहना स्थानीय संगठन की देन है। शैक्षिक विकास को न कंवल गुणात्मक बल्कि परिमाणात्मक रूप से भी प्रभावित करने वाली औपनिवेशिक प्रक्रिया स्थानीय अर्थतंत्र में जड़ जमाए बैठी थी। औपनिवेशिक काल में उत्पन्न और पुष्ट होने वाली स्थानिक विकृतियों को दूर करके ही आज के विकास कार्यक्रमों की कमजोरियों तथा सीमाओं को सही ढंग से समझा जा सकता है। स्थानीय योजना की प्रक्रिया स्थानीय अर्थतंत्र से अच्छी तरह जुड़ी होती है। वह नगरीकरण को गुणात्मक और परिणामात्मक दोनों

दृष्टियों से प्रभावित करती रही है। शिक्षा के क्षेत्र में ऐसी वर्चस्वकारी भूमिका निभाने की उनकी क्षमता पहले तो ऐसे शैक्षिक अवसर उत्पन्न करके प्रभावित की गई जो उत्पादन के आधुनिक साधनों के उपयोग का आधार बनें। इसके अलावा अर्थतंत्र के उत्पादक क्षेत्रों में भांति–भांति के रोजगार के अवसर उत्पन्न करके इसे प्रभावित किया गया।

क्षेत्रीय असंतुलनों और अंतर्क्षेत्रीय असमानताओं की निरंतरता को हम एक सीमित औद्योगिक आधार और ऐसे तृतीयक क्षेत्रक के विस्तार में प्रतिबंधित होते देखते हैं और यह अधिकांशतः अनुत्पादक हैं। एक तरफ श्रमशक्ति के ऊर्ध्व अंतरण तथा दूसरी तरफ क्षैतिज गतिशीलता का संबंध विकास प्रक्रिया के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होता है। परंपरागत अर्थतंत्र पर आधुनिक उद्योग का बाहर से प्रस्थापन लगभग पूरी तरह कुछ बड़े नगरों तक ही सीमित रहा।

सामाजिक व्यवस्था को आपस में बांधने वाले सामाजिक–आर्थिक उत्पीड़न के तानेबाने के धागे एक–दूसरे से जुड़े हैं जब हम अपेक्षाकृत विकसित क्षेत्रों की ऊँची जाति व पुरूष और नगरीय लोगों से अपेक्षकृत कम विकसित क्षेत्रों की अनुसूचित जाति, स्त्री और ग्रामीण लोगों की तरफ बढ़ते हैं तब असमानता की खाई अधिकाधिक बढ़ती चली जाती हैं।

शैक्षणिक असमानताओं का क्षेत्रीय आयाम

साक्षरता की अंतर्क्षेत्रीय असमानताओं का विश्लेषण या तो सामान्य स्तर की भिन्नताओं की शब्दावली में किया जा सकता है या फिर अंतर्क्षेत्रीय असमानताओं के किसी चुने हुए मापक के परिणाम के शब्दों में। उदाहरण के लिए, विभिन्न क्षेत्रों के बीच ग्रामीण स्त्रियों या ग्रामीण पुरूषों की शैक्षणिक स्थिति की भिन्नताएं, ग्रामीण स्त्रियों या ग्रामीण पुरूषों की साक्षरता दर की अंतर्क्षेत्रीय असमानताओं पर निःसंदेह प्रकाश डालेंगी लेकिन ग्रामीण समुदायों में पुरूष और

स्त्री साक्षरताओं के बीच अंतर्क्षेत्रीय असमानताओं की प्रकृति या परिणाम के बारे में कोई जानकारी नहीं देंगी।

विकास की विभिन्न अवस्थाओं में साक्षरता दर की वृद्धि से एक ही क्षेत्र में और अंतर्क्षेत्रीय असमानताएं कम नहीं हो जातीं। किसी शिक्षा के क्षेत्र की असमानताओं की पहचान, मापांकन और व्याख्या के इन पक्षों पर न तो समाज विज्ञानियों ने ध्यान दिया है और न शैक्षिक योजनाकार/सहसंबंधों से जूझते रहे हैं। यहां उसके क्षेत्रीय आयामों को दृष्टिगत नहीं रखा गया। यह इस कारण से और ज्यादा दुर्भाग्यपूर्ण है कि असमानता की समस्याएं अंतर्निर्भताओं की क्षेत्रीय उपव्यवस्था में निहित रही हैं और इसलिए उनके किसी भी संतोषजनक विश्लेषण का कार्य और उनको कम करने की कार्यवाहियों को क्षेत्रीय चौखट में ही प्रभावशाली ढंग से हाथ में लिया जा सकता है।

अभी हाल ही में इस दिशा में कुछ उखड़े–उखड़े प्रयास किए गए हैं। शिक्षा में क्षेत्रीय असमानताओं का स्वरूप और प्रतिमान के मापांकन का व्यवस्थित प्रयास अध्ययनों की एक श्रृंखला में किया गया है जिन्हें अंतर्राष्ट्रीय शैक्षिक योजना संस्थान ने कराया है। शिक्षा की अंतर्क्षेत्रीय असमानताओं और सामाजिक–आर्थिक विकास के पारस्परिक संबंधों को विशिष्ट अथवा एक ही क्षेत्र के भीतर के मामले के अध्ययन की सहायता से स्पष्ट किया गया है। इनमें वर्तमान कारणों को पहचानने के लिए नई विधियों का उपयोग किया गया है। स्त्री–पुरूष निरक्षरता के एक विश्वव्यापी तुलनात्मक अध्ययन से पता चला है कि दोनों में (यानी स्त्री और पुरूष) साक्षरता की असमानताओं का परिणाम कुछ मामलों में बहुत अधिक है और यह लक्षण अभी बना रहेगा।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में (उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत) आने वाले जनपदों–जालौन, झाँसी, ललितपुर, महोबा, बाँदा, चित्रकूट, हमीरपुर की कुल जनसंख्या 8232847 है। इसमें नगरीय जनसंख्या 1843511 तथा ग्रामीण जनसंख्या 5389336 है। सम्पूर्ण प्रदेश में बुन्देलखण्ड क्षेत्र की जनसंख्या का प्रतिनिधित्व 4.9 प्रतिशत है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सर्वाधिक जनसंख्या वाला जनपद झाँसी है तथा सबसे कम जनसंख्या वाला जनपद महोबा है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के जनपदों में सबसे कम लिंगानुपात का अन्तर ललितपुर जनपद 1000 : 882 हैं। सर्वाधिक लिंगानुपात अन्तर वाला जनपद जालौन 1000 : 849 है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में सर्वाधिक अनुसूचित जाति की जनसंख्या वाला जनपद झाँसी है इस जनपद में अनुसूचित जातियों की जनसंख्या 489763 है तथा सबसे कम जनसंख्या (अनुसूचित जाति) महोबा जनपद की 182614 है। बुन्देलखण्ड की कुल जनसंख्या में अनुसूचित जाति की जनसंख्या का प्रतिशतांक 21.6 है। जबकि उत्तर प्रदेश की कुल जनसंख्या का 21.1 प्रतिशत अनुसूचित जातियों की जनसंख्या का है। प्रदेश की अनुसूचित जाति की जनसंख्या में बुन्देलखण्ड की अनुसूचित जाति का महत्वपूर्ण प्रतिशतांक हैं। उत्तर प्रदेश में 66 जातियाँ अनुसूचित जातियों की श्रेणी में रखी गयी हैं।

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार सबसे कम अनुसूचित जातियों का लिंगानुपात का अन्तर ललितपुर जनपद का 1000 : 892 है। इस जनपद में 1000 पुरूषों पर 838 महिलाओं का अनुपात है। तथा सबसे अधिक लिंगानुपात का अन्तर हमीरपुर जनपद का 1000 : 838 है। इस जनपद में 1000 पुरूषों पर 838 महिलाओं का अनुपात है। इससे यह प्रतीत होता है कि इस भू–भाग की अनुसूचित जातियों में भी कन्या जन्म के प्रति अरूचि है।

यद्यपि दलित जातियों ने शैक्षणिक दृष्टि से सम्पूर्ण देश में प्रगति की है फिर भी उनकों समाज में उच्च्य जातियों के समकक्ष सामाजिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थान अभी भी प्राप्त नहीं है इन समुदायों के सदस्य इस आधार पर हीन भावना से

ग्रस्त हैं कि उत्पत्ति क्रम में उनका स्थान सबसे निम्न है एवं इसी निम्न उत्पत्ति के कारण उच्च जाति के सदस्य उन्हें समाज में समान दर्जा देने को अन्तर्मन से तैयार नहीं हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि उच्च व्यावसायिक स्तर प्राप्त कर लेने के बावजूद दलित जातियों के सदस्यों के साथ अभी भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूपसे अस्पृश्यता एवं अपमानजनक व्यवहार किया जाता है। उच्च जातियों के सदस्य प्रायः यह महसूस करते हैं कि दलित जातियों के सदस्य योग्य एवं असमर्थ हैं एवं बुद्धि एवं ज्ञान में पिछड़े हुए हैं लेकिन आरक्षण के कारण उच्च पद प्राप्त कर लेने में सफल रहे हैं। यह निष्कर्ष या धारणा कमोवेश देश के सभी प्रान्तों में दलित जातियों के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के प्रति इस प्रकार के सवर्ण रूझान को दर्शाता हैं।

अध्ययन क्षेत्र जनपद हमीरपुर की जनसंख्या 2001 के अनुसार 1043724 है इस जनपद की ग्रामीण जनसंख्या नगरीय जनसंख्या की तुलना में अधिक है इसकी ग्रामीण जनसंख्या 869916 तथा नगरीय जनसंख्या 173808 है। इस जनपद में अनुसूचित जाति की जनसंख्या 237902 है। इनमें से 200889 अनुसूचित जाति के लोग ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 37013 लोग नगरीय क्षेत्रों में निवास करते हैं इस जनपद में भी ग्रामीण भारतीय विशेषताओं की प्रधानता परिलक्षित होती हैं। हमीरपुर जनपद की साक्षरता दर 2001 की जनगणना क़े अनुसार 58.10 है जिसमें पुरूष साक्षरता दर 72.76 तथा महिला साक्षरता दर 40.65 हैं इस जनपद में 314 ग्राम पंचायतें तथा 61 न्याय पंचायतें हैं जिनके अन्तर्गत 647 ग्राम आते हैं इनमें 511 आबाद ग्राम था 136 गैर आबाद ग्राम हैं।

शिक्षा के क्षेत्र में इस जनपद की प्रगति उतनी तीव्र नहीं हो सकी जितनी होनी चाहिए। वर्तमान में इस जनपद में उच्च शिक्षा हेतु महाविद्यालयों की स्थापनाएं हुई हैं जिनमें पुरूष वर्ग के लिए 04 तथा महिला वर्ग के लिए 02 महाविद्यालय हैं तकनीकी शिक्षा के लिए मात्र 02 आई0टी0आई0 संचालित हैं। उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों की संख्या 53 हैं बालिका माध्यमिक विद्यालयों की

संख्या 03 जूनियर बेसिक स्कूल 821 परिषदीय जूनियर बेसिक स्कूलों की संख्या 701 है तथा सीनियर बेसिक स्कूल (परिषदीय) 255 है।

दलित समाज

भारतीय समाज का बुनियादी ढांचा लोकतांत्रिक नहीं रहा है यह जन्मजात असमानता पर आधारित अनेक जातियों एवं उपजातियों में बंटा हुआ है। इस असमानता के क्रम में सबसे नीचे हरिजन अथवा दलित हैं। हरिजन शब्द हीनता का द्योतक है जबकि दलित शब्द में इस प्रकार की भावना का समावेश प्रायः नहीं दिखाई पड़ता। इसमें आत्म–सम्मान के साथ जीने और अपने अधिकारों को पाने की प्रबल भावना दिखाई पड़ती है। दलित शब्द का प्रयोग केवल अछूतों के लिए किया गया था इसमें आदिवासी तथा जरायमपेशा लोग शामिल नहीं थे इसके तहत कुछ ही जातियाँ शामिल हो सकी इससे इनकी जनसंख्या में कमी देखी गयी। पिछड़े वर्ग के प्रतिनिधियों की मान्यता थी कि दलित वर्ग नामक श्रेणी में उस शब्द के सीमित अर्थ के अनुसार केवल अछूतों को ही शामिल न किया जाए अपितु शैक्षणिक एवं आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों को भी शामिल किया जाए लेकिन यह संभव नहीं हो सका किन्तु राजनीतिक इच्छा–शक्ति के चलते ऐसे भविष्य में होना संभव भी हो सकता है। यदि इस दृष्टिकोण को स्वीकार कर लिया जाता तो दलित वर्ग के लोगों की संख्या में वृद्धि हो जाती। लेकिन उन्हें अछूतों अथवा सवर्ण हिन्दुओं से समर्थन नहीं मिला। अछूत भी यह नहीं चाहते रहें है कि उनकी श्रेणी में किसी ऐसे वर्ग को शामिल किया जाए जो वास्तव में अछूत न हो। यह जातिवाद की समस्या सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक रूप से विकराल हैं जब तक भारत में जाति प्रथा विद्यमान है तब तक हिन्दुओं में अन्तर्जातीय विवाह और वाहय लोगों से शायद ही समागम हो सके। यदि हिन्दू पृथ्वी के अन्य क्षेत्रों में भी जाएं तो भारत जैसी जात–पात की समस्या उत्पन्न होने की संभावनाएं बढ़ जायेगी।

जाति व्यवस्था भारतीय समाज पर एक कलंक है जा नागरिकों में असमानता एवं भेदभाव पैदा करती हैं। निम्न एवं अस्पृश्य जातियों के लोग भय की स्थिति में अभी भी जीवन जी रहे हैं इन जातियों के सदस्य यदि सामाजिक अयोग्यताओं धार्मिक भेदभाव और राजनीतिक दमन के विरूद्ध आवाज उठाते हैं तो उसे सामाजिक व्यवस्था का तथाकथित उल्लंघन समझा जाता है।

आज भी ग्रामीण भू–भाग में अस्पृश्य जाति के लोगों को निम्न स्तर का नागरिक माना जाता है। आज धर्म निरपेक्षतावाद लोकतंत्र और लोगों में समाजवादी एवं वैज्ञानिक विचारों के प्रसारित होने के बावजूद भी जातिवाद एक जीवन पद्धति बना हुआ है।

बुन्देलखण्ड में दलितों की शैक्षणिक स्थिति

भारतीय संविधान की धारा 46 के अनुसार राज्य, जनता के निर्बल वर्गों के विशेषतया अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के शिक्षा तथा अर्थ सम्बन्धी हितों की सावधानी से उन्नति करेगा तथा सामाजिक अन्याय तथा सब प्रकार के शोषण से उनका संरक्षण करेगा।

इसी संवैधानिक व्यवस्था के तहत राज्यों में दलितों के शैक्षणिक तथा आर्थिक हितों के उन्नयन के लिए व्यवस्थाएं सामान्य रूप से की गयी। राज्यों ने जनपद स्तर से गांवों तथा शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना करके दलित वर्गों के शैक्षणिक विकास की सुविधाएं उपलब्ध करायी। जनपद हमीरपुर में भी शैक्षणिक विकास हेतु शिक्षण संस्थाओं की स्थापना की गयी। जिससे अन्तर्गत प्राथमिक माध्यमिक, उच्च शिक्षा संस्थाओं के साथ आई.टी.आई. संस्थान संचालित हैं जिनमें विभिन्न वर्गो, जातियों के छात्र शिक्षा गृहण कर रहे हैं।

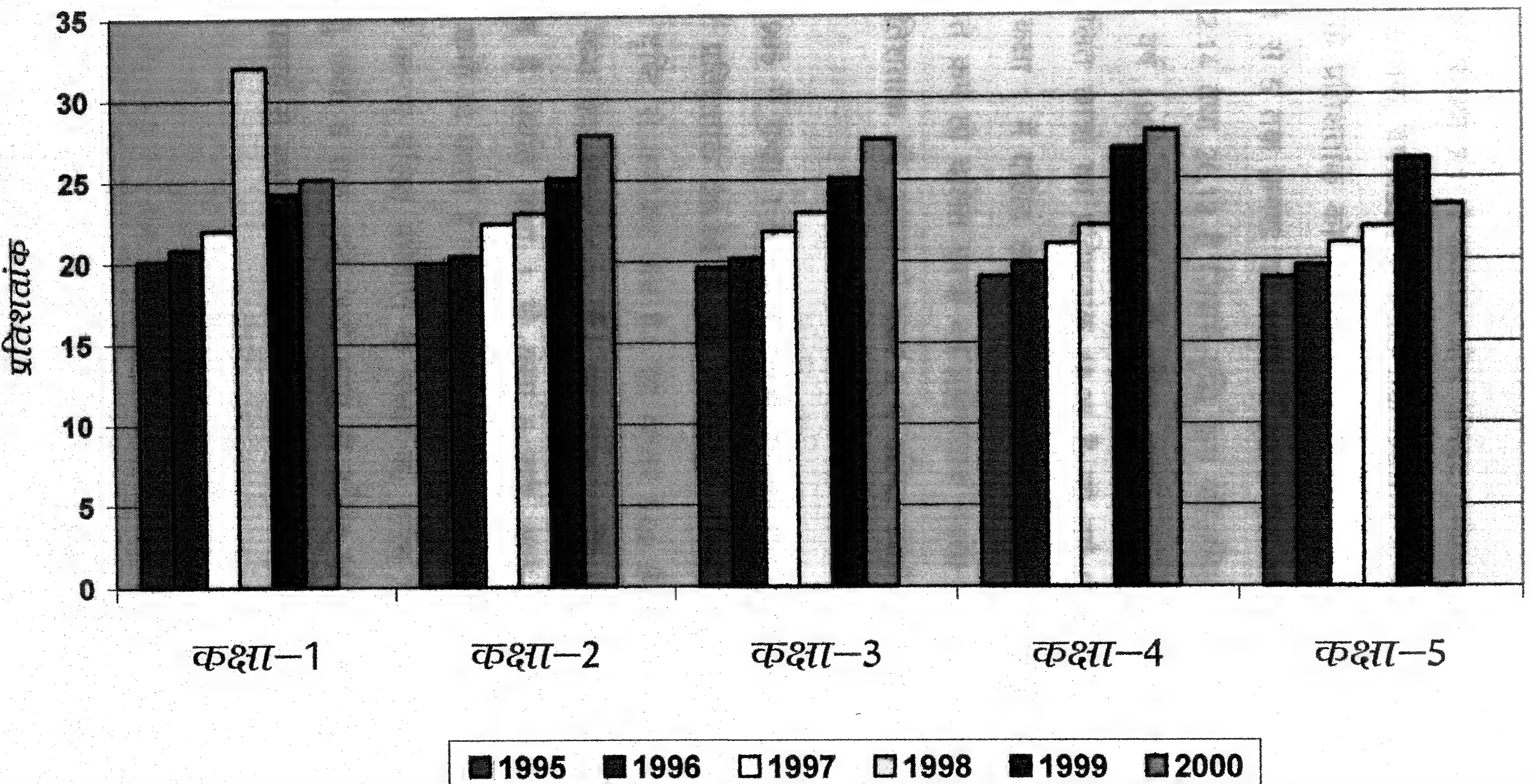
विगत 1995 से 2000 तक विभिन्न स्तर के शिक्षा संस्थानों में दलित छात्रों की स्थिति का विश्लेषण निम्नवत है–

तालिका संख्या–7.1

प्राथमिक स्तर पर विभिन्न वर्षो में कक्षानुसार कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक

कक्षा	वर्षानुसार कुल छात्रों में दलित छात्रों का विभिन्न कक्षाओं में प्रतिशतांक						वर्ष 1995 से वर्ष 2000 के मध्य अन्तर
	1995	1996	1997	1998	1999	2000	
1	20.14	20.83	21.99	32.01	24.26	25.16	5.02
2.	19.98	20.41	22.34	23.00	25.13	27.77	7.79
3.	19.63	20.01	21.83	22.99	25.10	27.48	7.85
4.	19.04	19.93	21.03	22.14	26.89	27.89	8.85
5.	18.93	19.64	21.00	22.00	26.13	23.33	4.40

तालिका–7.1


वर्षानुसार कुल छात्रों में दलित छात्रों का विभिन्न कक्षाओं में प्रतिशतांक
प्रतिशतांक
35
30
25
20
15
10
5
0
कक्षा–1
कक्षा–2
कक्षा–3
कक्षा–4
कक्षा–5
1995
1996
1997
1998
1999
2000

तालिका संख्या 7.1 में अध्ययन क्षेत्र जनपद हमीरपुर के प्राथमिक विद्यालयों में कक्षा 1 से 5 तक, वर्ष 1995 से 2000 तक अध्ययन करने वाले कुछ छात्रों में से दलित छात्रों के प्रतिशतांक को निष्कर्षतः दर्शाया गया है। तालिका से स्पष्ट होता है कि कक्षा 1 से 5 तक क्रमशः वर्ष 1995 से 2000 तक का प्रतिशतांक 20.14, 20. 41, 21.83, 22.14 तथा 26.13 है जिसमें वृद्धि क्रम परिलक्षित होता है।

किन्तु वर्ष 1995 में कक्षा 1 में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 20.14 है तथा कक्षा 5 में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 18.93 है जो वर्ष 2000 में 23.33 है किन्तु वर्ष 2000 में कक्षा 1 में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 25.16 है, निष्कर्षतः कक्षाओं के वर्षानुसार बढ़ते क्रम तो दलित छात्रों का प्रतिशतांक बढ़ता है किन्तु एक ही वर्ष में कक्षा 1 के प्रतिशतांक की तुलना में कक्षा 5 में दलित छात्रों का प्रतिशतांक कम हो जाता है।

वर्ष 1995 में कक्षा 1 में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 20.14 रहा तथा वर्ष 2000 में यह प्रतिशतांक 25.16 है जो अपेक्षाकृत दलितों की बढ़ती जनसंख्या सुविधाओं की दृष्टि से कमोवेश कम है। यह अन्तर 5.02 है। कक्षा 5 में वर्ष 1995 से 2000 के मध्य का अन्तर 4.40 है। यह अन्तर वृद्धि के रूप में कक्षा 1 की तुलना में कम है अर्थात कक्षा 1 से कक्षा 5 तक आते–आते दलित छात्रों के प्रतिशतांक में कमी हो जाती है।

इसका कारण दलित परिवारों के बच्चों को प्रारंभ में तो प्रवेश करा दिया जाता है किन्तु कक्षा 5 तक आते–आते बहुत से दलित परिवारों के मुखिया अपने बच्चों को विद्यालयों से बाहर कर लेते हैं।

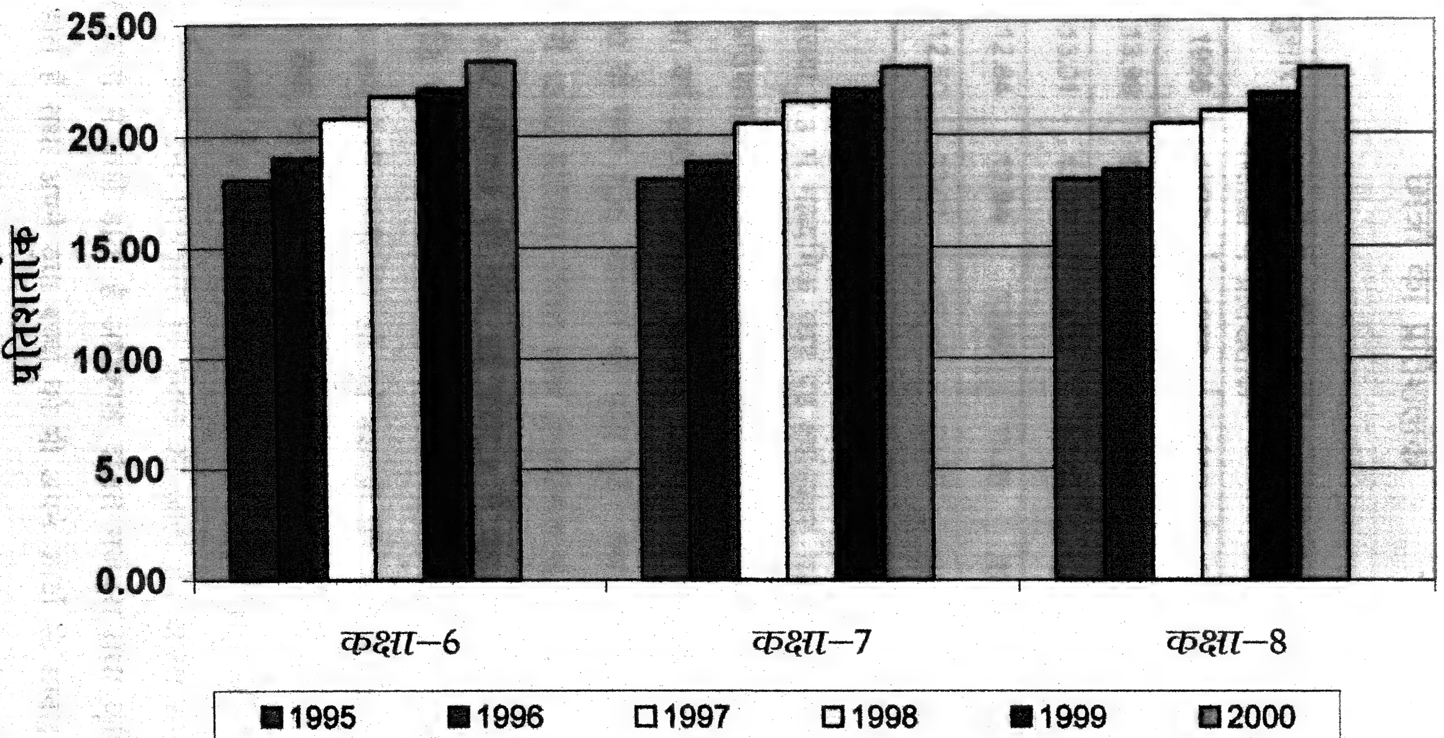
तालिका संख्या–7.2

पूर्व माध्यमिक स्तर पर विभिन्न वर्षों में कक्षानुसार कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक

कक्षा	वर्षानुसार कुल छात्रों में दलित छात्रों का विभिन्न कक्षाओं में प्रतिशतांक						वर्ष 1995 से वर्ष 2000 के मध्य अन्तर
	1995	1996	1997	1998	1999	2000	
6.	18.04	19.01	20.78	21.78	22.11	23.33	5.29
7.	18.04	18.82	20.50	21.50	22.01	23.00	4.96
8.	18.00	18.41	20.43	21.00	21.78	22.89	4.89

तालिका संख्या 7.2 में हमीरपुर जनपद में पूर्व माध्यमिक कक्षाओं में अध्ययन करने वाले कुल छात्रों में दलित छात्रों के प्रतिशतांक को वर्षानुसार, कक्षावार दर्शाया गया है। वर्ष 1995 में कक्षा 6 में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 18.04 था जो वर्ष 2000 तक कक्षा 8 में बढ़कर 22.89 हो गया, वर्ष 1995 में कक्षा 6 में जहां दलित छात्रों का प्रतिशतांक 18.04 था उसी वर्ष कक्षा 8 में यह प्रतिशतांक 18.00 रहा, वर्ष 1995 से 2000 के मध्य कक्षा 6 में अन्तर 5.29, कक्षा 7 में 4.96 तथा कक्षा 8 में 4.89 रहा अर्थात कक्षावार क्रम में दलित छात्रों के प्रतिशतांक में कमी परिलक्षित होती है अर्थात पूर्व माध्यमिक स्तर में भी दलित छात्रों में पढ़ाई बीच में छोड़ने की प्रवृत्ति दिखाई देती है।

तालिका संख्या–7.2


वर्षानुसार कुल छात्रों में दलित छात्रों का विभिन्न कक्षाओं में प्रतिशतांक
प्रतिशतांक
25.00
20.00
15.00
10.00
5.00
0.00
कक्षा–6
कक्षा–7
कक्षा–8
1995
1996
1997
1998
1999
2000

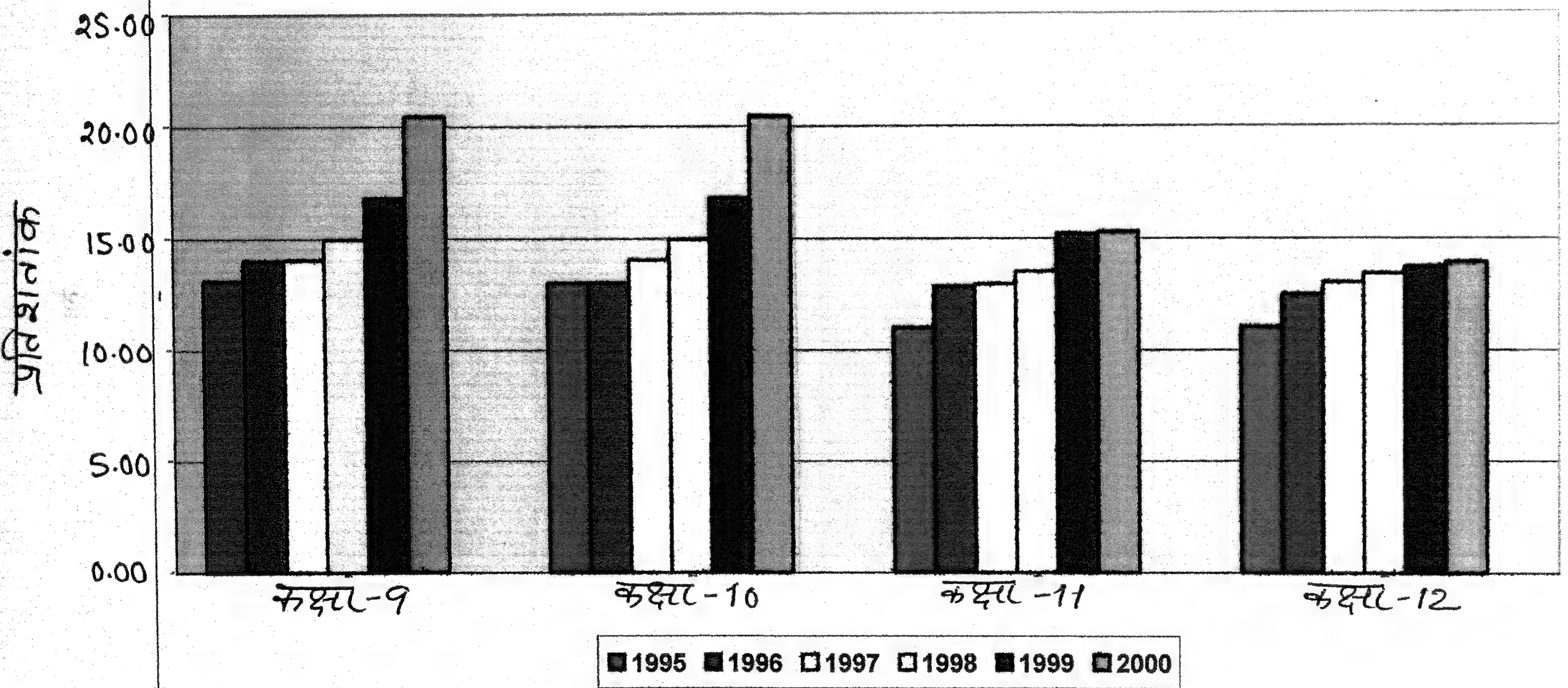
तालिका संख्या–7.3

माध्यमिक स्तर पर विभिन्न वर्षों में कक्षानुसार कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक

कक्षा	वर्षानुसार कुल छात्रों में दलित छात्रों का विभिन्न कक्षाओं में प्रतिशतांक						वर्ष 1995 से वर्ष 2000 के मध्य अन्तर
	1995	1996	1997	1998	1999	2000	
9	13.10	13.99	14.02	14.95	16.82	20.45	7.35
10	13.00	13.01	13.98	14.07	17.99	10.69	5.69
11	11.05	12.84	12.94	13.50	15.21	15.30	4.25
12	11.00	12.50	13.01	13.40	13.72	13.92	2.92

तालिका संख्या 7.3 में माध्यमिक स्तर पर वर्षानुसार, कक्षावार कुल छात्रों में दलित छात्रों के प्रतिशतांक को प्रस्तुत किया गया है। वर्ष 1995 में कक्षा 9 में 13.10 प्रतिशत तथा वर्ष 2000 में 20.45 प्रतिशत दलित छात्र अध्ययनरत थे, कक्षा 9 में 1995 से 2000 के मध्य 7.35 प्रतिशत की वृद्धि हुई। कक्षा 12 में वर्ष 1995 में 11.00 तथा 2000 में 13.92 प्रतिशत दलित छात्र अध्ययनरत थे। कक्षा 12 में 1995 से 2000 के मध्य 2.92 प्रतिशत की वृद्धि हुई कक्षा 9 में जहां यह वृद्धि 7.35 थी कक्षा 12 में यह वृद्धि मात्र 2.92 प्रतिशत रह गयी। निष्कर्षतः यह वृद्धि कक्षा 9 से 12 तक आते–आते कम होती जाती ह। जो पूर्व कक्षाओं की भांति ही प्रतीत होती है। माध्यमिक स्तर तक आते–आते दलित छात्रों की पढ़ाई बीच में ही छूट जाने की स्थिति दृष्टिगत होती है। जबकि इन कक्षाओं में भी दलित छात्रों की फीस में दपूर्णतः छूट होती है तथा उन्हें छात्रवृत्ति भी प्रदान की जाती है। दलित समाजों में चूंकि आय के संसाधनों में कमी होती है अधिकांश दलित मजदूरी तथा कृषि जैसे कार्यों से सम्बद्ध होते हैं तथा अपने युवा बच्चों को भी अपने कार्यों से सम्बद्ध करके

तालिका संख्या—7.3



वर्षानुसार कुल छात्रों में दलित छात्रों का विभिन्न कक्षाओं में प्रतिशतांक
प्रतिशतांक
25.00
20.00
15.00
10.00
5.00
0.00
कक्षा-9
कक्षा-10
कक्षा-11
कक्षा-12
1995 1996 1997 1998 1999 2000

आय वृद्धि करते हैं दलित समाजों में कम उम्र में विवाह सम्पन्न करने की परम्परा अभी भी व्याप्त है शासकीय नियमों के प्रतिपादन के बावजूद आज भी दलित कम उम्र में ही अपने बच्चों के विवाह आदि सम्पन्न कर देते हैं। जिससे बच्चों में पढ़ाई के प्रति रूचि नहीं रह जाती और वे गृहस्थ जीवन से जुड़ी जिम्मेदारी के मकड़जाल में उलझ जाते हैं।

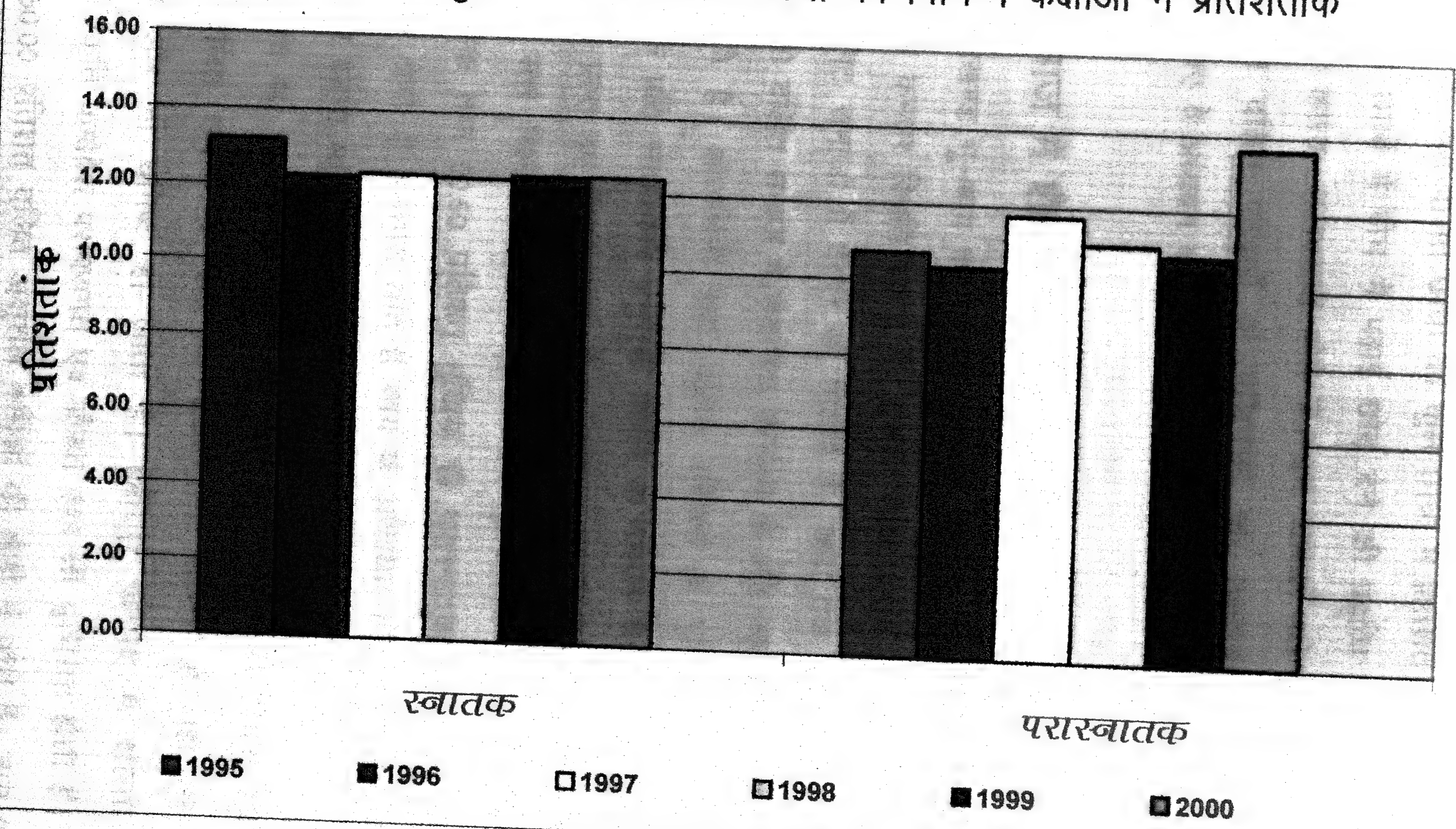
तालिका संख्या–7.4

स्नातक तथा परास्नातक स्तर पर विभिन्न वर्षों में कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक

कक्षा	वर्षानुसार कुल छात्रों में दलित छात्रों का विभिन्न कक्षाओं में प्रतिशतांक						वर्ष 1995 से वर्ष 2000 के मध्य अन्तर
	1995	1996	1997	1998	1999	2000	
स्नातक	13.20	12.25	12.32	12.27	12.38	12.40	0.8
परास्नातक	10.74	10.35	11.74	11.04	10.80	13.66	2.92

तालिका संख्या–7.4 में स्नातक तथा परास्नातक स्तर पर दलित छात्रों की शैक्षणिक स्थिति को प्रस्तुत किया गया है। वर्ष 1995 से वर्ष 2000 के मध्य स्नातक स्तर पर दलित छात्रों के प्रतिशतांक में 0.8 प्रतिशत की वृद्धि हुई जब परास्नातक स्तर पर यह वृद्धि 2.92 प्रतिशत की हुई। वर्ष 1995 में स्नातक स्तर पर कुल छात्रों में दलित छात्रों का प्रतिशतांक 13.20 तथा परास्नातक पर 10.74 था जबकि वर्ष 2000 में स्नातक स्तर पर 12.40 प्रतिशत तथा परास्नातक स्तर पर 13.66 प्रतिशत दलित छात्र अध्ययनरत थे। उच्च शिक्षा के लिए शासन स्तर पर दलित छात्रों को अनेकानेक सुविधाएं उपलब्ध करायी जाती हैं किन्तु उच्च शिक्षा संस्थानों में दलित छात्रों की संख्या में वृद्धि कमोवेश उतनी नहीं हो रही जितनी होनी चाहिए। इस स्तर पर वे ही दलित अपने बच्चों को शिक्षा दिलाने में रूचि रखते हैं जो स्वयं शैक्षणिक रूप से सक्षम होते है। उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी होती है इस जनपद में परास्नातक स्तर पर विज्ञान तथा कृषि संकाय होने से अन्य जनपदों के छात्र प्रवेश प्राप्त कर लेते हैं जिससे प्रतिशत के रूप में दलितों का अंश अधिक हो जाता है।

तालिका संख्या—7.4


वर्षानुसार कुल छात्रों में दलित छात्रों का विभिन्न कक्षाओं में प्रतिशतांक
प्रतिशतांक
16.00
14.00
12.00
10.00
8.00
6.00
4.00
2.00
0.00
स्नातक
परास्नातक
1995
1996
1997
1998
1999
2000

प्राथमिक, पूर्व माध्यमिक, माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा संस्थानों में वर्ष 1995 से वर्ष 2000 के मध्य दलित छात्रों का कुल छात्रों में प्रतिशत देखने से स्पष्ट होता है कि दलित छात्रों में बीच में पढ़ाई छोड़ देने की प्रवृत्ति पायी जाती है इसके लिए विभिन्न कारक उत्तरदायी होते हैं। इन कारकों को ज्ञात करने के लिए शोधार्थिनी ने दलित परिवारों के मुखियाओं का साक्षात्कार करके जो तथ्य उद्घाटित किए वे अध्ययन क उद्देश्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण थे।

दलित समाज में शैक्षणिक जागरूकता

बुन्देलखण्ड भू–भाग का जनपद हमीरपुर विभिन्न आयामों से अन्य जनपदों की स्थिति से कमतर स्थिति रखता है। इसका स्पष्ट प्रभाव यहां के अन्य समाजों की भांति दलित समाजों में देखने को मिलता है। जहां तक शैक्षणिक जागरूकता का प्रश्न है तो दलित समाज में शैक्षणिक उन्नयन के प्रति वह जागरूकता अभी भी नहीं आ सकी है। शोधार्थिनी द्वारा दलित परिवारों के मुखियाओं से शैक्षणिक जागरूकता के प्रति साक्षात्कार अनुसूची प्रविधि के माध्यम से लिए गए साक्षात्कार से जो निष्कर्ष प्राप्त हुए उससे स्पष्ट होता है कि स्वयं दलित परिवार के मुखियाओं का शैक्षणिक स्तर चिन्तनीय है। 61.00 प्रतिशत मुखिया अशिक्षित हैं और 1.00 प्रतिशत स्नातक तथा 00.50 प्रतिशत मुखिया ही परास्नातक हैं। 15.50 प्रतिशत मुखिया साक्षर श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं स्वयं के अशिक्षित होने का प्रभाव परिवार के सदस्यों पर पड़ना स्वाभाविक ही है।

व्यवसाय की प्रवृत्ति का शिक्षा के मध्य सह सम्बन्ध की स्थिति होती है जहां तक दलित समाज के शैक्षणिक स्थिति का सम्बन्ध है वहां पर यह सह–सम्बन्ध और भी घनिष्ट हो जाता है। हमीरपुर जनपद में दलितों की व्यावसायिक प्रकृति कमोवेश परम्परागत एवं औसत स्तर की दृष्टिगत होती हैं। इस जनपद के 50.00 प्रतिशत दलित अकुशल श्रमिकों की श्रेणी में आते हैं। मात्र 0.50

प्रतिशत दलित सरकारी या गैर सरकारी संस्थानों में कार्यरत हैं। ये वे दलित हैं जिन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त करक शासन द्वारा प्रदत्त सुविधाओं और संसाधनों का लाभ अर्जित करके सेवा संवर्ग को प्राप्त किया है। इस वर्ग के लोगों में शिक्षा के प्रति रूचि स्पष्ट झलकती है।

दलित परिवार की महिलाओं की शैक्षणिक स्थिति अत्यन्त निराशाजनक है। 68.97 प्रतिशत महिलाएं (मुखिया की पत्नी) अशिक्षित हैं तथा एक भी महिला परास्नातक स्तर की शिक्षा प्राप्त नहीं की हैं। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि दलित परिवारों में पूर्व में शिक्षा विशेषकर महिला शिक्षा के प्रति कोई विशेष रूचि नहीं रहीं जिसका प्रभाव वर्तमान में अनेक परिवारों में देखने को मिलता है। "पढ़ी लिखी लड़की रोशनी घर की" जैसा स्लोगन दलित परिवारों के लिए उपेक्षित सा प्रतीत होता है।

शिक्षा अर्जित करने के लिए किए जा रहे नित नए प्रयासों का प्रभाव दलित परिवारों पर अब भी उतना नही पड़ रहा है जितना पड़ना चाहिए। दलित परिवारों के 8.00 प्रतिशत मुखियाओं ने स्वीकार किया कि उनके बच्चे स्कूल नहीं जाते हैं। 16 प्रतिशत मुखियाओं ने स्वीकार किया कि उनके बच्चे कभी–कभी स्कूल जाते हैं। जिन परिवारों के बच्चे स्कूल नहीं जाते हैं या फिर कभी–कभी स्कूल जाते हैं उनके संरक्षक उन पर स्कूल जाने या नियमित रूप से स्कूल जाने के लिए कोई प्रभावी दबाव नहीं डालते हैं 35.86 प्रतिशत परिवार के मुखिया ही अपने बच्चों की पढ़ाई की स्थिति जानने के लिए कभी भी विद्यालय नहीं जाते, मात्र 10.37 प्रतिशत मुखिया ही अपने बच्चों की पढ़ाई की स्थिति जानने के लिए स्कूल जाकर शिक्षकों से अपने बच्चे की पढ़ाई की स्थिति जानने का प्रयास करते हैं। जहां तक परिवार की मुखिया की पत्नी या माँ का अपने बच्चों की पढ़ाई के प्रति दृष्टिकोण का प्रश्न है तो अशिक्षित माताओं का प्रतिशतांक अधिक होने का स्पष्ट प्रभाव यहाँ परिलक्षित होता है 62.11 प्रतिशत दलित माताएं अपने बच्चों की पढ़ाई के प्रति कोई रूचि

नहीं रखती क्योंकि वे अपनी जीविका से सम्बन्धित कार्यों में इतनी व्यस्त होती हैं कि बच्चों की ओर ध्यान देने का समय ही नहीं मिलता।

परिवार के मुखिया और माँ का अपने बच्चों की पढ़ाई की ओर ध्यान न दे पाने का यह प्रभाव होता है कि 82.02 प्रतिशत दलित छात्र अपनी पढ़ाई बीच में ही छोड़ देते हैं चाहे वह प्राथमिक स्तर, पूर्व माध्यमिक स्तर, माध्यमिक स्तर या फिर उच्च शिक्षा स्तर की ही क्यों न हो। 58.72 प्रतिशत दलित छात्र प्राथमिक स्तर के बाद अपनी पढ़ाई छोड़ देते हैं उनके परिवार के संरक्षक उन्हें पुनः विद्यालय भेजने में कोई रूचि नहीं लेते हैं उन्हें तथा उनके बच्चों को भी यही विश्वास होता है कि अधिक शिक्षा प्राप्त कर लेने से कोई रोजगार मिल जाने की गारण्टी नहीं है, और वे अपनी रोजी–रोटी की जुगत में लग जाते हैं। 38.72 प्रतिशत मुखियाअें की मान्यता है कि 'पढ़ाई से रोटी नहीं मिलेगी' इस कारण उनके बच्चों ने बीच में पढ़ाई छोड़ दी। 32.91 मुखियाओं की सन्तानों ने फेल हो जाने के कारण पढ़ाई छोड़ दी जिन्हे पुनः प्रवेश दिलाने में अभिभावकों की कोई रूचि नहीं रही। 33.00 प्रतिशत मुखिया आज भी प्राथमिक स्तर की शिक्षा को अपने बच्चों के लिए पर्याप्त मानते हैं। 00.50 प्रतिशत मुखिया ही डिग्री स्तर से भिन्न शिक्षा अपने बच्चों को दिलाने में रूचि रखते हैं।

'लड़का लड़की एक समान' की धारणा को दृष्टिगत रखते हुए यदि दलित परिवारों में शिक्षा की दृष्टि से इस समानता की अवधारणा का विवेचन किया जाये तो यह स्पष्ट तथा पक्षपातपूर्ण दिखाई देता है। 65.50 प्रतिशत मुखिया आज भी पुत्र को ही शिक्षित कराने का दृष्टिकोण रखते हैं 9.50 प्रतिशत मुखिया दोनों को समान शिक्षा दिलाने की विचारधारा के पक्षधर हैं। पुत्री की शैक्षणिक प्रगति के बाधक कारक के रूप में उनके समाज में पायी जाने वाली परम्पराएं और अन्ध विश्वास प्रभावी हैं।

दलित परिवार के मुखियाओं की मान्यता है कि शासकीय विद्यालयों की तुलना में गैर सरकारी विद्यालयों में शिक्षा का स्तर अच्छा होता है। वे अपने बच्चों

को इन्हीं विद्यालयों में पढ़ाने की इच्छा रखते हैं। ऐसे मुखियाओं का प्रतिशतांक 76.00 है।

संदर्भित विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि बुन्देलखण्ड भू–भाग के जनपद हमीरपुर के दलित परिवारां में शैक्षणिक जागरूकता का अभाव है यहां के दलित अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों में इतने व्यस्त होते हैं कि उन्हें शैक्षणिक विकास की दिशा में सोचने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता। साक्षरता का प्रतिशतांक कम होना भी शैक्षणिक विकास के अवरोध का एक अहम कारक है।

आर्थिक एवं शैक्षणिक सह–सम्बन्ध

अर्थ व्यवस्था से जब शिक्षा का सह–सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं तो यह बहुत ही प्राकृतिक लगता है। यह सम्बन्ध व्युत्पन्न सम्बन्ध है। भारत में जनसंख्या का आकार बड़ा है एवं यहां लोकतांत्रिक राजनीतिक संरचना है तथा देश अर्थव्यवस्था के केन्द्रीय व राज्य स्तरीय आयोजन को प्रतिबद्ध है। ऐसी स्थिति में शायद नियोजन प्रक्रिया में शिक्षा का विचार अतिरिक्त महत्व प्राप्त कर लेता है कुछ अर्थों में मात्रात्मक एवं गुणात्मक दृष्टि से अपर्याप्त होने के बावजूद भारत में संयुक्त एवं आधुनिक रूप से निर्मित शिक्षा का ढाँचा विद्यमान है।

दलित समाज में शिक्षा के उन्नयन से आर्थिक संसाधनों और शिक्षा के सह–सम्बन्ध के ऑकलन से जो निष्कर्ष प्राप्त हुए उनसे स्पष्ट होता है कि दलित परिवारों की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ नहीं हैं सर्वाधिक परिवारों के मुखियाओं की मासिक आय रु0 500 से 1000 तक है ऐसे मुखियाओं का प्रतिशतांक 35.50 है, 3500 रु0 प्रतिमाह आय वाले दलित मुखियाओं का प्रतिशतांक 0.50 है अर्थात दलित परिवारों की आर्थिक स्थिति चिन्तनीय है और वे कमोवेश येन–केन प्रकारेण अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति कर पाते हैं। अधिकांश दलित परिवारों के मुखिया अकुशल श्रमिक हैं तथा उनके व्यवसाय की प्रकृति अंशकालिक है जिससे

उनकी मासिक आय कम होना स्वाभाविक है। 48.38 प्रतिशत मुखिया अपने बच्चों की पढ़ाई पर 100 से 200 रुपये प्रतिमाह खर्च करते हैं। 400 से 600 रुपये प्रतिमाह खर्च करने वाले मुखियाओं का प्रतिशतांक 16.30 है। 600 रुपये से ऊपर खर्च करने वालों का प्रतिशतांक 00.00 है। दलित परिवारों की कम आय होने के कारण जहां वे अपने बच्चों की पढ़ाई पर कम खर्च करने की स्थिति में होते हैं वहीं वे अपने व्यावसायिक कार्यों में अपने बच्चों को भी सम्बद्ध कर लेते हैं भले ही यह सम्बद्धता आंशिक ही होती है। 67.94 प्रतिशत मुखिया अपने व्यवसाय में अपने बच्चों का सहयोग प्राप्त करते हैं। इस प्रकार के सहयोग से उन्हें शारीरिक आर्थिक एवं मानसिक लाभ तो प्राप्त होता है किन्तु बच्चों की शिक्षा पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है साथ ही बच्चे का रूझान शिक्षा से अलग हटकर धन कमाने की ओर हो जाता है। जिन परिवारों के बच्चे विद्यालय जाते हैं उन्हें शासन द्वारा छात्रवृत्ति प्राप्त करने की सुविधा प्राप्त होती है। 13.58 प्रतिशत मुखियाओं ने बताया कि उनके बच्चों को छात्रवृत्ति प्राप्त नहीं होती जबकि 17.93 प्रतिशत ने माना की कभी–कभी उनके बच्चों को छात्रवृत्ति प्राप्त होती है। जिन छात्रों को छात्रवृत्ति प्राप्त नहीं होती उनके अभिभावक छात्रवृत्ति न मिलने की शिकायत करने में कोई रूचि नहीं रखते ऐसे अभिभावकों का प्रतिशतांक 54.89 हैं। 45.11 प्रतिशत अभिभावक ही छात्रवृत्ति न मिलने की शिकायत करते हैं। जिनके अभिभावक विद्यालय में छात्रवृत्ति न मिलने की शिकायत लेकर नहीं जाते उनके बच्चे ही अपने स्तर पर इसकी शिकायत करते हैं।

जिन छात्रों को छात्रवृत्ति प्राप्त होती हैं उनमें से अधिकांश उसे अपने परिवार के खर्च में व्यय करते हैं। पढ़ाई में छात्रवृत्ति को खर्च करने वालों का प्रतिशतांक 11.44 है। इससे भिन्न ज्यादातर छात्र छात्रवृत्ति का उपयोग व्यक्तिगत खर्चों, कपड़े बनवाने आदि में खर्च करते हैं। ऐसी स्थिति में छात्रवृत्ति का उद्देश्य ही समाप्त हो जाता है। यदि छात्र, छात्रवृत्ति का उपयोग अपनी पढ़ाई में खर्च करें तो उनके शैक्षणिक विकास को गति मिल सकती है।

शासन द्वारा दलित समाज के विकास के लिए अनेकानेक सुविधाएं एवं योजनाएं संचालित की जाती हैं किन्तु योजनाओं का ज्ञान न हो पाने की दशा में उन्हें वह लाभ प्राप्त नहीं हो पाता जो उन्हें प्राप्त होना चाहिए। दलित परिवार के 38.50 प्रतिशत मुखियाओं को उन्हें तथा उनके बच्चों को शिक्षा हेतु मिलने वाली सुविधाओं का ज्ञान नहीं है। जिन्हें इनका ज्ञान होता भी है यदि उनका लाभ उन्हें प्राप्त नहीं हो पाता तो वे इसके लिए किसी प्रकार का प्रयास नहीं करते है शायद उनके पास इसके लिए समय ही नहीं होता क्योंकि वे अपने व्यवसाय में संलिप्त रहते हैं।

चूँकि दलित ऐसे व्यावसायिक कार्यों में संलिप्त होते हैं जो शारीरिक श्रम से सम्बन्धित होते हैं, उन्हें दिनभर अधिक शारीरिक श्रम करना पड़ता है अपनी थकान को मिटाने के लिए उनमें नशे की प्रवृत्ति पायी जाती है यह प्रवृत्ति धूम्रपान के रूप में या फिर मद्यपान के रूप में होती है दिन में कई बार वे गुटके, तम्बाकू या पान का सेवन करते हैं। 65.50प्रतिशत अभिभावक नशे के आदी होते हैं जिनमें उनकी आय का एक भाग नशे के पदार्थों को क्रय करने में खर्च होता है, जो खर्च वह अपने बच्चों की पढ़ाई में कर सकते हैं वह नहीं कर पाते या फिर उनमें इस प्रकार की इच्छा शक्ति (Will power) जाग्रत नहीं हो पाती। अधिक नशे के सेवन से उनमें सकारात्मक या रचनात्मक सोच में ह्रास होता जाता है। कभी–कभी उन्हें मजदूरी न मिल पाने के कारण उन्हें अपनी इस आदत को पूरा करने के लिए उधार पैसे लेने की आवश्यकता पड़ जाती है।

जब अपने अभिभावक को बच्चे नशा करते देखते हैं या फिर स्वयं अभिभावक जब बच्चों से नशे की वस्तुओं को बाजार या घर में रखे किसी स्थान से लाने के लिए कहते हैं और यह कई बार होता है तो बच्चे भी कभी–कभी स्वाद लेने के उद्देश्य से नशे की वस्तुओं का सेवन करने लगते हैं और उनका यह प्रयास कालान्तर में आदत बन जाती है।

52.50 प्रतिशत अभिभावकों ने स्वीकार किया कि उनके बच्चे किसी न किसी प्रकार के नशे के पदार्थों का सेवन करते हैं। परिणाम यह होता है कि जो खर्च छात्रों का अपने शैक्षणिक कार्यों को पूरा करने के लिए दिया जाता है उसे वे नशा करने में खर्च कर देते हैं जिससे शैक्षणिक कार्य या आवश्यकताएं बाधित होती हैं और उनकी शिक्षा प्रभावित हो जाती है ऐसे छात्रों में पारिवारिक नियंत्रण की कमी पायी जाती हैं और वाह्य परिवेश में उनका ऐसा मित्र मण्डल तैयार हो जाता है जो इस प्रकार के कार्यों को करने के लिए प्रोत्साहित करता है।

दलित अभिभावकों में बच्चों को पढ़ाने की रूचि का अभाव दिखाई देता है। 41.00 प्रतिशत अभिभावकों का दृष्टिकोण है कि बच्चों को शिक्षा दिलाने के स्थान पर काम पर लगा देना चाहिए क्योंकि काम करने से आय प्राप्त होगी जिससे मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होगी। 34.50 प्रतिशत अभिभावकों की मान्यता है कि बदलते परिवेश में बच्चों को शिक्षा दिलानी चाहिए किन्तु यह मत सैद्धान्तिक दृष्टि से सबल और व्यावहारिक दृष्टि से निर्बल प्रतीत होता है।

दलितों में शिक्षा की कमी अथवा शिक्षा के मार्ग में बाधक कारकों में धन की कमी एक अहम कारक है, 37.50 प्रतिशत अभिभावक इसे महत्वपूर्ण कारक मानते हैं जबकि 29.50 प्रतिशत अभिभावक अशिक्षा को बाधक कारक के रूप में चिंहित करते हैं। रूढ़िवादिता, माता–पिता की शिक्षा के प्रति अरूचि, व्यावसायिक शिक्षा की कमी, शिक्षा सुविधाओं की कमी दलित शिक्षा के मार्ग में बाधक कारक हैं।

दलित परिवारों के मुखियाओं की दृष्टि में छात्रवृत्ति की दर बढ़ाकर दलित बच्चों को शिक्षा के लिए प्रेरित किया जा सकता है, ऐसे अभिभावकों का प्रतिशतांक 28.00 है। 26.50 अभिभावकों के अनुसार रोजगार की गारण्टी देकर दलित शिक्षा के प्रतिशतांक को बढ़ाया जा सकता है।

निष्कर्षतः शिक्षा और अर्थ के मध्य सहसम्बन्ध की स्थिति स्पष्ट है यदि आर्थिक संसाधनों में वृति हो जाती है तो शिक्षा के उन्नयन में प्रगति हो सकती है।

निष्कर्ष

अध्ययन से 'दलित समाज में' शैक्षणिक स्थिति से सम्बन्धित निम्न निष्कर्ष प्राप्त हुए है जे अध्ययन के लिए बनायी गयी उपकल्पनाओं को सत्यापित करते हैं–

1. बुन्देलखण्ड के हमीरपुर जनपद में दलित समाज में शैक्षणिक स्थिति अभी भी सन्तोषजनक नहीं है दलित छात्रों द्वारा बीच में ही पढ़ाई छोड़ देने की प्रवृत्ति पायी जाती है परिणाम उच्च शिक्षा संस्थानों में दलित छात्रों की संख्या कम पायी जाती है।
2. बुन्देलखण्ड भू–भाग में अवस्थित जनपद हमीरपुर के दलित परिवारों के मुखियाओं में शिक्षा के प्रति जागरूकता का अभाव पाया जाता है जिसका प्रभाव उनके बच्चों के शैक्षणिक पर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।
3. दलित परिवारों के माता–पिता का अशिक्षित होने का प्रभाव उनके बच्चों के शैक्षणिक विकास को अवरूद्ध करता है।
4. दलित परिवारों में व्याप्त निर्धनता दलितों के शैक्षणिक विकास में अहम कारक हैं कम आय होने और आर्थिक संसाधनों की कमी के कारण दलितों की शैक्षणिक विकास में अरूचि होती है शिक्षा के स्थान पर वे आय अर्जित करने में अधिक रूचि रखते हैं।
5. दलित परिवारों में अभी भी लड़कियों की तुलना में लड़कों की शिक्षा पर अधिक रूचि होती है अर्थात स्त्रियों की शिक्षा पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है।
6. दलित परिवारों में पायी जाने वाली परम्पराएं, रूढ़ियाँ और मान्यताएं शैक्षणिक विकास को बाधित करती हैं।
7. दलितों को प्रदान की जाने वाली सुविधाओं का प्रचार प्रसार कम होने से दलित उन योजनाओं से अनभिज्ञ रहते हैं जिसका उन्हें लाभ उस

सीमा तक प्राप्त नहीं हो पाता जितना होना चाहिए तथा जागरूकता की कमी अभी भी दलित समाजों में परिलक्षित होती है।

बुन्देलखण्ड के दलितों के शैक्षणिक उन्नयन हेतु सुझाव

बुन्देलखण्ड क्षेत्र की प्रगति स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात अभी उतनी नहीं हो पायी जितनी होनी चाहिए इसका प्रभाव यहां के दलितों के शैक्षणिक विकास में भी दिखाई देता है बुन्देलखण्ड में दलितों के शैक्षणिक विकास हेतु निम्न सुझाव प्रस्तावित हैं–

1. बुन्देलखण्ड भू–भाग में दलितों के विरूद्ध जातिगत भावना का प्रभाव ग्रामीण अंचलों में अभी व्याप्त है दलितों को जातिगत हीनता से उबारने हेतु प्रभावशाली कार्यक्रमों का व्यावहारिक प्रचार–प्रसार करके अन्य जातियों के समान जीवन यापन करने हेतु प्रेरित किया जाना चाहिए।
2. दलितों को आर्थिक रूप से सुदृढ़ बनाने हेतु संचालित की जा रही ऋण योजनाओं का यथार्थ लाभ देते हुए उनके द्वारा किए जाने वाले व्यावसायिक कार्यों पर शासकीय निगरानी करनी चाहिए जिससे नमें व्यावसायिक स्थिरता की मानसिकता पनप सके। यदि वे आर्थिक रूप से सुदृढ़ होंगे तो शिक्षा के प्रति रूचि बढ़ेगी।
3. दलितों में अपने बच्चों को अपने रोजगार से सम्बद्ध करने की प्रवृत्ति पायी जाती है जिससे उनकी शिक्षा बाधित होती है। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिए दलितों को रोजगार की गारण्टी दी जानी चाहिए, तथा बीच में पढ़ाई छोड़ देने वाले दलित बच्चों को पुनः विद्यालय लाने हेतु कार्यक्रमों का व्यावहारिक संचालन सुनिश्चित किया जाना चाहिए।
4. दलितों के बच्चों के कक्षाओं में आगे बढ़ने हेतु कक्षावार प्रोत्साहन राशि निश्चित की जानी चाहिए।

5. दलितों में व्याप्त बालिका शिक्षा के प्रति कमी को दूर करने हेतु दलित बालिका को एक निश्चित स्तर की शिक्षा प्राप्त कर लेने पर रोजगार गारण्टी की योजना प्रारम्भ की जानी चाहिए तथा जिन दलित परिवारों की लड़कियां उच्च स्तर तक की शिक्षा प्राप्त कर रही हों उन परिवारों को प्रोत्साहन राशि की व्यवस्था की जानी चाहिए।

6. दलितों में शिक्षा के प्रति जागरूकता बढ़ाने हेतु ग्रामीण परिवेश के कार्यक्रमों का विधिवत् तथा व्यावहारिक कार्यक्रमों का संचालन किया जाना चाहिए।

7. दलित छात्रों को मध्याह्न भोजन (मिड डे मील) योजना की भांति ड्रस तथा बस्तों की सुविधा वास्तविक रूप में प्रदान की जानी चाहिए।

8. ग्राम पंचायत स्तर पर एक सोशल वर्क इस्पेक्टर स्तर के अधिकारी की नियुक्ति की जानी चाहिए जो दलितों के मध्य शैक्षणिक जागरूकता बढ़ाने का कार्य करें तथा उसके कार्यों के मूल्यांकन के आधार पर उसकी कार्यावधि में विस्तार किया जाना चाहिए।

9. दलितों को तकनीकी शिक्षा प्रदान करने हेतु ब्लाक स्तर पर तकनीकी शिक्षा संस्थानों की सुविधा उपलब्ध करायी जानी चाहिए।

10. छात्रवृत्ति की उपलब्धता समयानुसार होनी चाहिए तथा उसके उपभोग का प्रमाण छात्र से प्राप्त किया जाना चाहिए।

****

सन्दर्भ—ग्रंथ

संदर्भ ग्रन्थ

पुस्तकें :

1. अटल, योगेश, 1971, लोकल कम्युनिटीज एंड नेशनल पॉलिटिक्स, देहली, नेशनल पब्लिशिंग
2. अब्बासायूलू, वाई.बी., 1978, शिड्यूल्ड कास्ट इलिट, हैदराबाद, उस्मानिया यूनिवर्सिटी
3. अम्बेडकर, बी.आर., 1943, रानाडे, गांधी एंड जिन्ना, बॉम्बे, ठक्कर एंड कं.लि.
4. 1946, हू वर द शूद्रा'ज ? हाऊ दे केम टू बी. फोर्थ वर्ण इन इंडो–आर्यन सोसायटी? बॉम्बे, ठक्कर एण्ड कं0लि0
5. 1990, अछूत कौंन और कैसे? भदन्त आनन्द कौसल्यायन (अनु.), लखनऊ, कल्चरल पब्लिशर्स
6. 1991 हिदुत्व का दर्शन, मोहनदास नैमिसराय (अनु.), अलीगढ़, आनन्द साहित्य सदन
7. अनिरूद्ध प्रसाद 1991, आरक्षण : सामाजिक न्याय एवं राजनैतिक संतुलन, जयपुर, रावत पब्लिकेशन्स।
8. आहूजा, राम 1975, पॉलिटिकल इलिट्स एंड मॉडर्नाइजेशन : द बिहार पॉलिटिक्स, मेरठ, मीनाक्षी प्रकाशन।
9. इंग्लिस, जूलियस, 1963 सतपथ ब्राह्मण पार्ट–1, देहली, मोतीलाल बनारसीदास।
10. एल्डर, जे. डबलू., 1970 राजपुर–चंज ऑफ द जजमानी सिस्टम ऑफ एन उत्तर प्रदेश विलेज, एन के ईश्वरन (एडी), चेंज एंड कन्टीनिटी इन इण्डिया'ज विलेज, लंदन, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस

11. कपाड़िया, के.एम., 1958, मैरिज एंड फैमिली इन इंडिया, बॉम्बे, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

12. 1974, महात्मा ज्योतिराव फूले–फादर ऑफ इंडियन सोशियल रिवॉल्यूशन, बॉम्बे, पापुलर प्रकाशन।

13. 1990, बी.आर. अम्बेडकर –बिल्डर्स ऑफ मॉडर्न इंडिया, न्यू देहली, मिनिस्ट्री ऑफ इनफॉरमेशन एंड ब्राडकास्टिंग, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया।

14. कोठारी, रजनी, 1970, कास्ट इन इंडियन पॉलिटिक्स, न्यू देहली, ओरियेंट लांगमैन।

15. कोलाब्रिस्का, एम., 1912 सरकुलेशन ऑफ इलिट्स इन फ्रांस, लुसाने, प्राइमरी रियुनाइस

16. कोहन, बी.एस., 1955, द चेंजिंग स्टेटस ऑफ ए डिप्रेस्ड कास्ट–विलेज इंडिया, शिकागो, द यूनविर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस।

17. खान, मुमताज अली, 1980, शिड्यूल्ड कास्ट एंड देअर स्टेटस इन इंडिया, न्यू देहली, उत्पल पब्लिशिंग हाउस।

18. गुप्ता, नीलम, 1994, हरिजन से दलित, नई दिल्ली, वाणी प्रकाशन।

19. धुयें, जी.एच., 1950, कास्ट एंड क्लास इन इंडिया, बॉम्बे, पापुलर बुक डिपो।

20. 1961, कास्ट, क्लास एंड ऑक्यूपेशन, बॉम्बे, पापुलर प्रकाशन।

21. झा, एम.एस., 1972, पॉलिटिकल इलिट इन बिहार, बॉम्बे, बोरा एंड कं. पब्लिशर्स प्रा.लि.।

22. देशपांडे, बसन्त, 1973, टूवार्ड्स सोशियल इन्टीग्रेशन्स–प्रॉबलम ऑफ इडजस्टमैंट ऑफ शिड्यूल्ड कास्ट इलिट, पुणे, सुभधा सारस्वत।

23. पाठक, पी.डी. 2003, भारतीय शिक्षा और उसकी समस्याएं साहित्य रत्नालय कानपुर।

24. पाण्डेय, डा जयनारायण (1998) भारत का संविधान सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी इलाहाबाद।

25. प्रभु, पी.एन., 1963, हिन्दू सोशियल ऑर्गनाइजेशन, बॉम्बे, पापुलर प्रकाशन।

26. परेटो, वी., 1935 द माइंड एंड सोसयाटी, वॉ–चतुर्थ, लंदन, जोनाथन केप।

27. प्रेम प्रकाश, 1993, अम्बेडकर, पॉलिटिक्स एंड शिड्यूल्ड कास्ट, न्यू देहली, आशीष पब्लिशिंग हाउस।

28. वर्थवाल, चन्द्र प्रकाश पांडे, रामनिवास, 1974, आधुनिक राजनीतिक विश्लेषण, लखनऊ, उत्तर प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।

29. ब्रिग, जी.डब्ल्यू., 1920 द चमार, लंदन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

30. बेली, एफ.जी., 1957, कास्ट एंड इकॉनामिक फ्रंटीयर–ए विलेज ऑफ हाइलैंड ओरिशा, मैनचेस्टर, मैनचेस्टर प्रेस।

31. मजूमदार, डी.एन., 1958 रेसेज एंड कल्चर्स ऑफ बॉम्बे, पापुलर प्रकाशन।

32. मलिक, सुनीला, 1979, सोशियल इन्टीग्रेशन ऑफ शिड्यूल्ड कास्ट, न्यू देहली, अभिनव पब्लिकेशन्स।

33. मिल्स, सी. राइ, 1966, द पावर इलिट, न्यूयार्क, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

34. मिलिलैण्ड, आर. 1970, द स्टेट इन केपिटिलिस्ट सोसायटी, लंदन, विदरफील्ड एंड निकल्सन।

35. मिश्रा, बी.बी., 1961 द इंडियन मिडिल क्लास, लंदन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस।

36. मेहता, एस.आर., 1972, इमरजिंग पैटर्न ऑफ रूरल लीडरशिप, न्यू देहली, विले ईस्टर्न।

37. मैकाइवर एंड पेज, 1962, सोसायटी इन इन्ट्रोडक्टरी एनालिसिस, लंदन, मैकमिलन।

38. मैण्डलेबोम, डी.जी., 1970, सोसायटी इन इंडिया–चेंच एण्ड कन्टीनिटी, केलिफोर्निया, यूनिवर्सिटी ऑफ केलिफोर्निया प्रेस।

39. मोस्का, जी., 1939, द रूलिंग क्लास, न्यूयार्क, मैक्यू हिल बुक कं.।

40. राम, जगजीवन, 1980, कास्ट चेलेंज इन इंडिया, दिल्ली, विजन बुक्स प्रा.लि.।

41. वर्मा, एम.बी., 1969, हरिजन सेवक संघ का इतिहास (1932–1968), दिल्ली, हरिजन सेवक संघ।

42. विद्यार्थी, एल.पी. मिश्रा, एन., 1977, हरिजन टूडे. न्यू देहली, प्रेन्टिक हाल ऑफ इंडिया प्रा.लि.।

43. बेवर, मैक्स, 1947, द रिलिजन ऑफ इंडिया, लंदन, एलेन एंड अनविन।

44. सिंह, आर.पी., 1989, दलित के विधानमण्डलीय अभिजन, दिल्ली, मित्तल पब्लिकेशन्स।

45. सिंह, आर. जी. (1994) सामाजिक न्यास एवं दलित संघर्ष, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।

46. शांताकुमारी, आर. 1983, शिड्यूल्ड कास्ट एंड वेलफेयर मीजर्स, न्यू देहली, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी।

47. शेल्वानाथन, एस., 1989, स्टेटस ऑफ शिड्यूल्ड कास्ट, न्यू देहली, आशीष पब्लिशिंग हाउस।

48. पूरण मल, 1995, राजस्थान में दलितों पर बढ़ते अत्याचार : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण, डा. अम्बेडकर सामाजिक विज्ञान शोध पत्रिका।

49. चाण्डी के.टी. (1991), सोशियल जस्टिस एण्ड रिक्वायरमेण्ट, लीगल न्यूज एण्ड न्यूज,

50. गांधी, एम.के. (1962), इन सर्च ऑफ दी सुप्रीम, नवजीवन पब्लिशिंग हाउस अहमदाबाद।

51. लिमिये, मधु (1990) डा अम्बेडकर–एम चिन्तन, सरदार बल्लभ भाई पटेल एजूकेशन सोसायटी, नई दिल्ली।

52. बेनेट, डब्ल्यू. एस. (1960), 'अंडर इनवेस्टमेंट इन कालेज एजुकेशन', अमेरिकन इकनामिक रिव्यू

53. भटमारी, पी.एन. (1978) : 'पापुलेशन एजुकेशन एंड इंप्लायमेंट।

54. चौधरी, डी.पी. (1974) 'रूरल एजुकेशन एंड एग्रीकलचरल डेवलपमेंट

55. कोलक्लाफ, सी. (1982) : द इंपैक्ट ऑफ प्राइमरी स्कूलिंग आन इकनामिक डेवलपमेंट : ए रिव्यू आफ द एविडेंस, वर्ल्ड उेवलपमेंट।

56. मार्टिन, सी.जे. (1982) : 'एजुकेशन एंड कंजपशन एन मारागोली (केनिया) : हाउस होल्ड्स एजुकेशनल स्ट्रैटेडीज, कंपरेटिव एजुकेशन

57. मेंडिस, जी. (1981) : 'एजुकेशन इन प्रोसेस आफ विलेज डवलपमेंट'

58. नैश, एम. (1965) : 'द रोल ऑफ विलेज स्कूल्स इन द प्रोसेस आफ इकनामिक मॉटुर्नाइजेशन' 'सोशल एंड एजुकेशनल स्टडीज',।

59. पारी,ा, यू. (1982) : 'एजुकेशन एंड रूरल डवलपमेंट इन एशिया' नई दिल्ली आक्सफोर्ड एंड आई.बी.एस.।

60. स्पैडी, डब्ल्यू. जी. (1967) : 'एजुकेशनल मोबिलिटी एंड एक्ससे : ग्रोथ एंड पैराडाक्सेज', 'अमेरिकलन जर्नल ऑफ सोशियालोजी,

61. वर्ल्ड बैंक (1980 :ए) : 'हयूमन रिसोर्स डेवलपमेंट एंड इकनामिक ग्रोथ', एंड पैराडाक्ससेज', अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशियालोजी

62. वर्ल्ड बैंक (1980 ए) : 'हयूमन रिसोर्स डवलपमेंट एंड इकनामिक ग्रोथ, स्टाफ पेपर्स, वर्ल्ड बैंक।

63. वर्ल्ड बैंक (1980 बी) : 'एजुकेशन सेक्टर पालिसी पेपर',

64. अहमद, एं. (1982) : 'इंटर–रीजनल इन इक्विटी इन लिटरेसी लेवेल्स आफ ट्राइबल्स एंड कास्टसेगमेंट्स आफ पापुलेशन इन इंडिया।

65. डीसूजा, एस. विक्टर (1982) : अरबनाइजेशन एंड द रूरल–अरबन डिफरंसेज इन लिटरेसी, पेपर प्रेजेंटेड एट द कानफरेंस आफ इंडियन एसोसिएशन फॉर पापुलेशन स्टडीज, नई दिल्ली।

66. गोसाल, जी.एस. (1968) : लिटरेसी इन इंडिया : एन इंटरप्रिटेटिव स्टडी, रूरल सोशियालोजी, वाल्यूम 29

67. नेशलन कौंसिल ऑफ एजुकेशनल रिसच्र एंड ट्रेनिंग (1980) : फोर्थ आल इंडिया एजुकेशनल सर्वे एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली।

68. सेन, ए.के. (1973) : 'ऑन इकनामिक इनइक्वालिटी', आक्सफोर्ड, आक्सफोर्उ यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

69. यूनेस्को (1978) : 'एस्टिमेंट्स ऑफ प्रोजेक्संस आफ इल्लिटरेसी; डिविजन आफ स्टैटिस्टिक्स आफ एजुकेशन, यूनेस्को, पेरिस।

70. बिलियम्सन, डब्ल्यू. (1977) : पैटर्न्स आफ एजुकेशनल इनइक्वालिटी इन वेस्ट जर्मनी;

अप्रकाशित थीसिस

1. अब्बासायूलू, वाई.बी., ए. सोशियालॉजीकल स्टडी ऑफ द शिड्यूल्ड कास्ट लेजिस्लेचर्स ऑफ आंध्र प्रदेश, हैदराबाद, उस्मानिया यूनिवर्सिटी (अनपब्लिशड एम.लिट. थीसिस, 1974)
2. गोयल, एस.के. 1973–74, ए स्टडी ऑफ शिड्यूल्ड कास्ट स्टूडेन्ट्स ऑफ कालेज इन ईस्टर्न यू.पी.; रिसर्च प्रोजेक्ट स्पान्सर्ड बाई आई. सी.एस.एस.आर., न्यू देहली, डिपार्टमेंट ऑफ सोशियालॉजी, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी।

रिपोर्ट्स / सेंशंस हैण्डबुक

1. रिपोर्ट ऑफ द कमिश्नर फॉर शिड्यूल्ड कास्ट्स एंड शिड्यूल्ड ट्राइब्स–1955, न्यू देहली, मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन्स, गवर्नमैंट ऑफ इंडिया, 1956।
2. रिपोर्ट ऑफ द कमेटी ऑन अनटचेबल्टी इकॉनामिक एंड एजूकेशनल डवलपमैंट ऑफ द शिड्यूल्ड कास्ट्स एंड कनैक्टेड डॉक्यूमैंट्स, न्यू देहली, लोकसभा सेक्रेटिरेट, 1969।
3. रिपोर्ट ऑफ द कमिश्नर फॉर शिड्यूल्ड कास्ट्स / शिड्यूल्ड ट्राइब्स 1990, न्यू देहली, मैनेजर ऑफ पब्लिकेशन्स, गवर्नमैट ऑफ इंडिया, 1991।
4. सेशंस ऑफ इंडिया रिपोर्ट, 2001

5. गजेटियर जनपद हमीरपुर, राजकीय प्रकाशन इलाहाबाद।

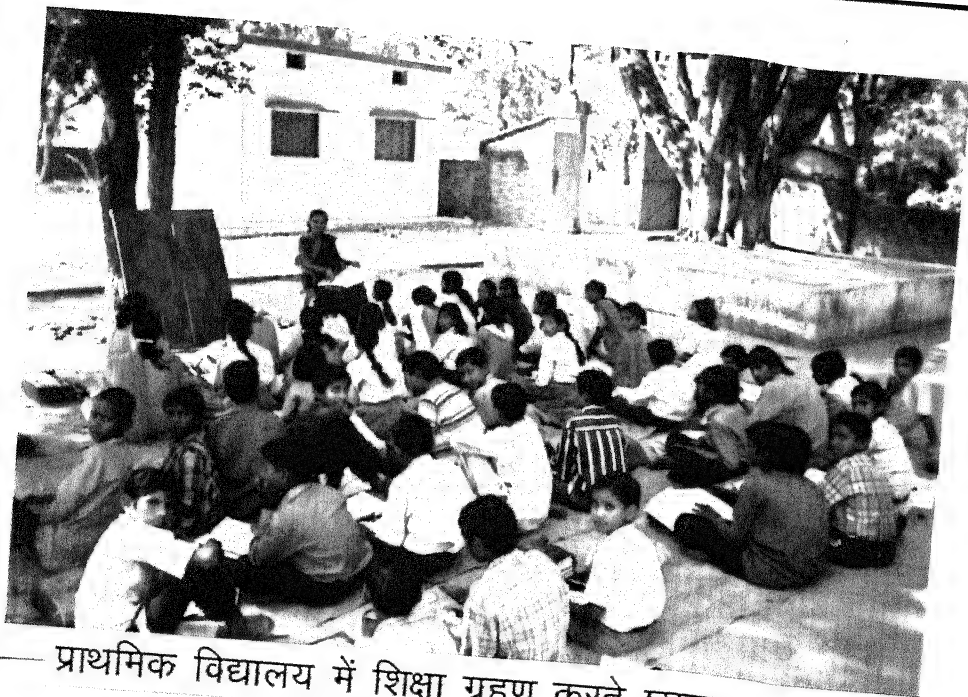
समाचार–पत्र/पत्रिकाएँ

1. जनसत्ता, नई दिल्ली।
2. टाइम्स ऑफ इंडिया, न्यू देहली।
3. दैनिक आज, कानपुर।
4. दैनिक अमर उजाला, कानपुर।
5. दैनिक जागरण, कानपुर।
6. इंडिया टुडे, नई दिल्ली

मासिक

1. दक्षिण ऐशिया टुडे, लखनऊ
2. दम दलित नई दिल्ली।
3. समाज कल्याण, नई दिल्ली।
4. आउटलुक, नई दिल्ली।

फोटोग्राफी



— प्राथमिक विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करते छात्र–छात्राएं —



– अवकाश के क्षणों में विद्यालय की सफाई करते छात्र–छात्राएं –



– मिड डे मील में दोपहर का भोजन करते हुए छात्र–छात्राएं –



—अवकाश के क्षणों में विद्यालय में खेलते हुए छात्र–छात्राएं —



—मध्याह्न अवकाश के पश्चात कक्षाओं में जाते छात्र–छात्राएं—



विद्यालय से अवकाश के पश्चात खेतों में जानवरों के साथ छात्र–छात्राएं



पूर्व माध्यमिक विद्यालय में शिक्षा ग्रहण करते छात्र–छात्राएं



सुमेरपुर स्थित श्री गायत्री विद्यामन्दिर इन्टर कॉलेज



मुख्यालय हमीरपुर स्थित राजकीय स्नाकोत्तर महाविद्यालय

गोपनीय

" बुन्देलखण्ड क्षेत्र में दलित समाज की शैक्षणिक स्थिति का एक समाजशास्त्रीय अध्ययन "

शोध निर्देशक
डा0 स्वामी प्रसाद
समाजशास्त्र विभाग

शोध–केन्द
राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय
हमीरपुर

शोधार्थिनी
अम्बेश कुमारी

साक्षात्कार अनुसूची

1. वैयत्तिक पृष्ठभूमि

1.1 नाम ....1.2 उम्र..

1.3 जाति ....1.4 लिंग...1.5 धर्म.............................

1.6 वैवाहिक स्थिति –
- क – अविवाहित
- ख – विवाहित
- ग – पुनर्विवाहित
- घ – विधवा / विधुर
- ड़ – तलाक शुदा / परित्यक्त

1.7 शिक्षा –
- क – अशिक्षित
- ख – साक्षर / प्राथमिक
- ग – पूर्व माध्यमिक
- घ – हाईस्कूल
- ड़ – इण्टर
- च – स्नातक
- छ – परास्नातक

1.8. व्यवसाय –
- क – अकुशल श्रमिक
- ख – कुशल श्रमिक
- ग – कृषक

घ – दुकानदार
ड़ – व्यापार
च – क्लर्क/कार्यालय सहायक
छ – अधिकारी(सरकारी/गैर सरकारी)

1.9. आय –
क – रू0 500 प्रति माह
ख – 500 – 1000
ग – 1000–1500
घ – 1500–2000
ड़ – 2000–2500
च – 2500–3000
छ – 3000–3500
ज – 3500 से ऊपर

1.10 आपके व्यवसाय की प्रकृति – क– पूर्ण कालिक/अंशकालिक

1.11. आपके परिवार की प्रकृति कैसी है – ख– संयुक्त/एकाकी

1.12 आप किस स्थान के निवासी हैं – ....

1.13 यदि आप विवाहित हैं तो आपकी पत्नी की शैक्षणिक स्थिति क्या हैं –
क – अशिक्षित
ख – साक्षर/प्राथमिक
ग – पूर्व माध्यमिक
घ – हाईस्कूल
ड़ं – इण्टर
च – स्नातक
छ – परास्नातक

1.14 क्या आपकी पत्नी भी किसी व्यवसाय से जुडी हैं –
क – हॉ
ख – नही

1.15 यदि हॉ , तो किस व्यवसाय से –
क – अकुशल श्रमिक
ख – कुशल श्रमिक
ग – कृषक
घ – दुकानदार

		ड़ं –	व्यापार
		च –	क्लर्क / कार्यालय सहायक
		छ –	अधिकारी(सरकारी / गैर सरकारी)
1.16	आपके कितने बच्चे है –	क –	पुत्र ....
		ख –	पुत्री ....
1.17	क्या आपके परिवार में कोई अन्य सदस्य किसी सेवा मे है –	क –	हॉ
		ख –	नहीं
1.18	यदि हॉ तो किस सेवा में ?–	क –	स्वरोजगार
		ख –	गैर सरकारी सेवा
		ग –	सरकारी सेवा

2. शैक्षणिक जागरूकता की स्थिति

2.1	आप जहाँ निवास करते हैं वहा पर शिक्षा केन्द्रो की सुविधा है	क –	हाँ
		ख –	नही
2.2	यदि हाँ तो किस स्तर तक है	क –	प्राथमिक
		ख –	पूर्व माध्यमिक
		ग –	माध्यमिक
		घ –	इण्टर
		ड़ –	स्नातक
		च –	परास्नातक
2.3	यदि हाँ तो वह कितनी दूरी पर स्थित है		....
2.4	क्या आपके बच्चे स्कूल जाते हैं –	क –	हॉ
		ख –	नही
		ग –	कभी–2
2.5	यदि नहीं तो क्यों –	क.	पढ़ाई से कोई लाभ नहीं
		ख.	काम के लिए हाथ चाहिए
		ग.	बच्चे का मन नहीं लगता
		घ.	विद्यालय में पढ़ाई नहीं होती

		ङ	फीस अधिक है
		च.	फीस के पैसे नहीं है
		छ.	विद्यालय दूर है।
2.6	यदि हाँ तो क्यों –	क.	पढ़ाई आवश्यक है
		ख.	ज्ञान होता है
		ग.	नौकरी मिल सकती हैं
		घ.	समाज में सम्मान प्राप्त होता है
2.7	आप अपने बच्चों की पढाई का ध्याम घर में रखते है –	क.	हाँ
		ख.	नही
		ग.	कभी–2
2.9	यदि हाँ तो कब–कब	क.	प्रतिदिन
		ख.	कभी–2
		ग.	कभी नहीं
2.10	यदि नहीं तो क्यों –	क.	समय नहीं मिलता
		ख.	विद्यालय वाले जाने
		ग.	पढ़ाई के स्तर में अन्तर है ।
2.11	क्या आप अपने बच्चों की पढ़ाई के स्तर के बारे में जानने के लिए विद्यालय जाते हैं –	क –	हाँ
		ख –	नहीं
		ग –	कभी–2

2.12 अपने बच्चों के शैक्षणिक स्थिति स्पष्ट कीजिए –

क्र. सं.	पुत्र/पुत्री	आयु	शिक्षा	शिक्षा की स्थिति	वैवाहिक स्थिति

2.13 क्या आपके बच्चों ने बीच में पढ़ाई छोड दी है – क. हाँ

		ख.	नही
2.14	यदि हॉ तो किस स्तर पर –	क.	प्राथमिक के बाद
		ख.	जूनियर के बाद
		ग.	हाईस्कूल के बाद
		घ.	इण्टर के बाद
		ड़	डिग्री के बाद
		च.	अन्य के बाद
2.15	पढाई क्यों छोडी –	क.	फेल होने के कारण
		ख.	पढ़ाई से रोटी नहीं मिलेगी।
		ग.	काम मिल जाने के कारण
		घ.	फीस और खर्च के पैसे नहीं ।
		ड़	अन्य कारणों से (बिगड़ने के कारण)
2.16	आपके जिन बच्चों ने पढाई छोड दी उसके कारण की प्रकृति कैसी हैं –	क –	स्वैच्छिक
		ख –	माता–पिता की इच्छा के कारण
		ग –	अन्य भाई बहनों को देखकर
		घ –	मित्रों को देखकर
2.17	यदि बच्चों ने पढ़ाई छोड़ दी तो क्या आपने उन्हें पुनः विद्यालय भेजने का प्रयास किया –	क –	हाँ
		ख –	नही
2.18	यदि नहीं ,तो क्यों –	क –	बच्चे की पढ़ाई में रूचि नहीं थी
		ख –	बच्चे को काम पर लगा दिया
		ग –	पढ़ाई से कोई लाभ नहीं है
		घ –	विद्यालय में पढ़ाई ठीक से नहीं होती
2.19	क्या आपकी पत्नी चाहती हैं कि बच्चे खूब पढ़ाई करें –	क –	हाँ
		ख –	नहीं
2.20	यदि हाँ तो वे क्या सहयोग करती है –	क –	बच्चों की पढ़ाई पर ध्यान देती हैं
		ख –	आर्थिक सहयोग करती है
		ग –	प्रेरित करती है
2.21	यदि नहीं तो क्यों –	क –	स्वयं अशिक्षित है

ख – पढ़ाई के खर्च की समस्या है
ग – बच्चे रूचि नहीं लेते है
घ – पढ़ाई से कोई लाभ नहीं है

2.22 आपके बच्चों की पढाई पर कौन ज्यादा ध्यान देता है ।

क. पति
ख. पत्नी
ग. अन्य (भाई–बहन)

2.23 जो बच्चे विद्यालय जाते है क्या उनसे आप आने काम (व्यवसायिक) में सहारा लेते है –

क. हॉ
ख. नही
ग. कभी–कभी

2.24 क्या आप चाहते है कि आपके बच्चे पढ़ लिखकर समाज में सम्मान पाऐं –

क. हाँ
ख. नही
ग. ऐसा संभव नहीं है ।

2.25 आपकी दृष्टि में पुत्र और पुत्री में से किसे अधिक पढाना चाहिए –

क – पुत्र को
ख – पुत्री को
ग – दोनो को
घ – किसी को नही

2.26 आप अपने बच्चे को किस स्तर तक पढ़ाना चाहेगें –

क. प्राथमिक
ख. जूनियर
ग. हाईस्कूल
घ. इण्टरमीडिएट
ङ. स्नातक स्तर तक
च. परास्नातक स्तर

2.27 क्या आप अपने बच्चे की पढ़ाई से सन्तुष्ट है –

क. हाँ
ख. नही
ग. कुछ नही कह सकते

2.28 क्या आप मानते है कि पढाई वर्तमान मे बहुत जरूरी है –

क. हाँ

ख नही

ग. कुछ नहीं कह सकते

2.29 आपकी दृष्टि मे बच्चो को किन विद्यालयों मे पढाना चाहिए –

क – सरकारी में

ख – प्राइवेट में

ग – मिशनरीज द्वारा संचालित विद्यालयों में

3. आर्थिक एवं शैक्षणिक सह सम्बन्ध

3.1 आप अपने बच्चो की पढाई पर प्रतिमाह कितना धन खर्च करते है –

क. 100-200

ख. 200-400

ग 400-600

घ. 600-800

ड़ 800-1000

च. 1000-1200

छ. 1200 से ऊपर

3.2 क्या आप इस बात से सहमत है कि बच्चों कि पढाई पर धन खर्च करना चाहिए –

क. हाँ

ख. नही

ग. कुछ नहीं कह सकता ।

3.3 क्या आपके बच्चों को किसी प्रकार की छात्रवृति प्राप्त हुई है –

क – हाँ

ख – नही

ग – कभी–कभी

3.4 यदि हाँ तो उस धन का प्रयोग आप या आपके बच्चे ने किस रूप में किया है –

क – पढ़ाई में

ख – कपड़े बनवाने में

ग – व्यक्तिगत खर्च में

घ – परिवार के खर्च में

ड़. – ट्यूशन/कोंचिग में

3.5 क्या आप मानते है कि छात्रवृति का प्रयोग अध्ययन के लिए किया जाना चाहिए –

क – हाँ
ख – नही
ग – कभी–कभी

3.6 आप अपने बच्चों कि शिक्षा मे किसे बाधक मानते है –

क – धन की कमी
ख – शिक्षा सुविधाओं की कमी
ग – रूढिवादिता
घ – अशिक्षा
ड़ं – माता पिता का रूचि न लेना
च – व्यावसायिक शिक्षा की कमी

3.7 आपकी दृष्टि मे दलित बच्चों को अच्छी शिक्षा के के लिए किस प्रकार से प्रेरित किया जा सकता है –

क – छात्रवृति बढाकर
ख – कपड़े देकर
ग – भोजन देकर
घ – रोजगार की गांरटी देकर
ड़ – पूर्णत : शुल्क मुक्ति द्वारा
च – शैक्षणिक भत्ता देकर
छ – पुस्तकें देकर

3.8 दलित छात्रों को मिलने वाली सुविधाओं से क्या आप परिचित हैं –

क – हॉ
ख – नही
ग – कुछ से

3.9 क्या आप कोई नशा करते हैं –

क – हाँ
ख – नही

3.10 यदि हाँ तो कब–कब

क. प्रतिदिन
ख. सप्ताह में एक बार
ग. कभी–कभी

3.11 क्या आप के बच्चे भी किसी प्रकार का नशा करते हैं –

क. हाँ
ख. नही

3.12	यदि हाँ तो क्या–2	क.	गुटका
		ख.	बीडी ,सिगरेट ,पान
		ग.	शराब
		घ.	अन्य
3.13	यदि आपकी पत्नी भी काम करती है तो क्या वह भी बच्चो की पढाई पर अपनी आय का कुछ भाग खर्च करती है –	क.	हाँ
		ख.	नही
		ग.	कभी–2
3.14	आपकी दृष्टि मे बच्चों को पढाना चाहिए या काम मे लगा देना चाहिए –	क.	पढाना चाहिए
		ख.	काम पर लगा देना चाहिए
		ग.	दोनो करना चाहिए।
3.15	आपके बच्चे पढाई के साथ–साथ कोई काम भी करते है –	क.	हाँ
		ख.	नही
		ग.	आवश्यकता पडने पर
3.16	यदि आपके बच्चे को छात्रवृति कभी नहीं मिल पाती तो क्या आप विद्यालय जाकर सम्पर्क करते हैं –	क.	हाँ
		ख.	नहीं

